हिन्दी काव्य

की

अन्तश्चेतना

लेखक—
प्रो० राजा राम रस्तोगी
पटना विश्वविद्यालय

प्रकाशक:—
केदार नाथ राम नाथ,
शिक्षा साहित्य प्रकाशक,
मेरठ।

१९५४]

प्रकाशक -
केदार नाथ राम नाथ,
निकट तहसील, मेरठ ।

प्रथम संस्करण १९५४
मूल्य पांच रुपया

मुद्रक—
शान्ति प्रसाद
विन्डसर प्रेस, मेरठ ।

प्राक्कथन

'हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना' काव्य के गत्यात्मक जीवन के क्रमिक विकास की विवेचनात्मक रूप-रेखा है। इस पुस्तक मे युग-जीवन की सतह पर फैले हुए विविध रङ्ग और रेखाओ की सूक्ष्म परख एव सतुलित विचार-शैली के व्यास मे विषय का सुन्दर मौलिक ढग से स्पष्टीकरण हुआ है। काव्य साहित्य का इतिहास ही नही, अपितु काव्य-चेतना के जो अनेक नये मोड और घुमाव है प्राय उन सबका आलोचनात्मक अध्ययन लेखक ने इस कृति मे विद्वता के साथ प्रस्तुत किया है। इसमे हिन्दी काव्य-धारा की अमूल्य सामग्री और उसका विश्लेषण उपलब्ध होता है। कला और काव्य के मूल्य एव मान की स्थापनाओ तथा परम्परागत नैतिक सस्कार और आदर्शो की विशाल पृष्ठ-भूमि पर विषय का विवेचन करके लेखक ने व्यापक तल्लीनता का परिचय दिया है और हिन्दी काव्य-चेतना का मथन करके उसका सार विवेचको और विद्यार्थियो के लिए सुलभ कर दिया है। लेखक ने सर्वप्रथम 'हिन्दी के आदि कवि और काव्य' के सम्बन्ध मे जिज्ञासा उत्पन्न कर प्राचीन और नवीन मान्यताओ के आधार पर तत्सम्बन्धी समस्याओ के समाधान का सफल प्रयत्न किया है। निर्गुणिया सतो के अध्ययन मे 'उपनिषद्' और 'योग-दर्शन' आदि ग्रन्थो के साक्ष्यो का उल्लेख, सगुण सतवादी सतो की आलोचना मे प्राचीन धर्म-ग्रन्थो और वार्ताओ आदि के प्रमाण तथा रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद आदि प्रमुख वादो के आलोचनात्मक अध्ययन मे अन्यान्य कृतियो के उद्धरण देकर लेखक ने अपने विचार को क्रमबद्ध और विकसित ही नही किया है अपितु प्रचलित विचार-धाराओ का मूल्याकन करके पाठको के लिए एक नया प्रकाश दिया है। 'हिन्दी काव्य मे विरह' शीर्षक अध्याय मे लेखक ने जिस मार्मिक रोचक और तर्कपूर्ण शैली मे विषय का प्रतिपादन किया है वह उसके गभीर अध्ययन और तुलनात्मक समीक्षा का फल है। "भक्ति-युग मे विरह की तीव्रता नायक एव नायिका की सत्यानुभूति एव सत्य-प्रेम पर आश्रित है, किन्तु रीति-युग के कवियो का विरह वाह्य एव स्थूल दृष्टि से रोचक है, जिसमे गाम्भीर्य नही। एक मे हृदय की अनन्त धारा का प्रवाह है, दूसरे मे कल्पना द्वारा मानसिक विरह का वर्णन। एक आध्यात्मिक शृगार की रगभूमि मे अनन्त को स्पर्श करने के लिए उत्सुक है, दूसरा भौतिक शृगार के दलदल मे वासना की परितृप्ति के लिए प्रयत्नशील है। एक आह की आधी मे चिरन्तन सत्य का दर्शन है, दूसरा विरह की ज्वाला मे उद्दाम वासना का उद्दीपन है।" इस प्रकार विषय का मौलिक चिन्तन

एव गम्भीरता के साथ उसका विश्लेषण लेखक की आलोचनात्मक प्रतिभा और साहित्यिक सामर्थ्य का सूचक है। 'काव्य मे नारी' शीर्षक अध्याय मे प्राचीन क ल से लेकर अर्वाचीन काल तक भारतीय साहित्य मे नारी के प्रति जो विचार पुरुष साहित्यकारो द्वारा व्यक्त किये गये है उनका विश्लेषण और ममाधान लेखक ने बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली ढग से किया है। हिन्दी काव्य का नया स्वर' वास्तव मे नई चेतनाओ का स्वरूप प्रदर्शित करने वाला अत्यन्त आकर्षक अध्याय है। इसमे लेखक ने प्रयोगवाद या प्रपद्यवाद नामक नव प्रचलित वाद का मूल्याकन बहुत ही सहृदयता क साथ किया है और व्यापक अर्थ मे सूरदास और तुलसीदास जी को भी प्रयोगवादी सिद्ध किया है जो रोचक और आकर्षक है। नई प्रयोगवादी कविताओ मे लेखक ने प्रचुर काव्यात्मक सरसता पाई है और प्रमाण स्वरूप 'तार-सप्तक' और 'दूसरा-सप्तक' के कतिपय चुने हुए उत्कृष्ट प्रभावपूर्ण मर्म-स्पर्शी गीत उद्धृत किए है।

पुस्तक का विषय जितना गम्भीर एव चिन्तन-प्रधान है उसका प्रतिपादन भी उतना ही पाडित्यपूर्ण हुआ है। लेखक की शैली स्पष्ट और भावयुक्त है। मेरा दृढ विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियो और विवेचको के लिए उपादेय और अमूल्य सिद्ध होगी। हिन्दी काव्य की प्राय सम्पूर्ण सामग्री इस कृति मे उपलब्ध होती है। मै निश्चयपूर्वक कह मकता हू कि जिज्ञासुओ के लिए यह पुस्तक अपने क्षेत्र मे बेजोड है। लेखक का समन्वयवादी दृष्टिकोण सर्वथा स्तुत्य है। मै इस प्रशसनीय तथा सफल प्रयास के लिए लेखक को बधाई देते हुए साहित्य-प्रॉगण मे उज्ज्वल भविष्य की कोटि-कोटि कल्याण-कामनाओ के साथ अभिनन्दित करता हूँ।

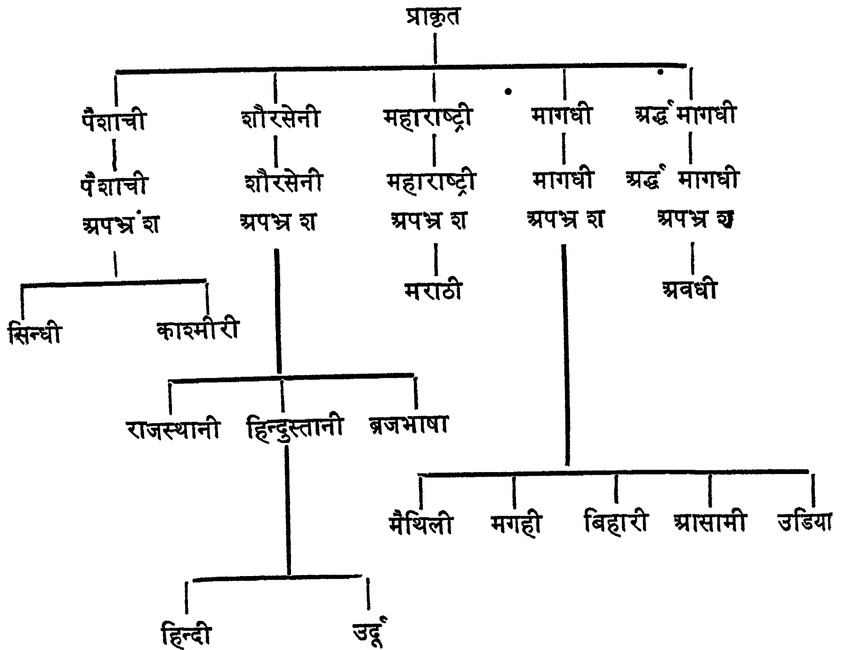
विश्वनाथ प्रसाद
एम ए. (हि स.), पी०एच०डी० (लन्दन)
अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय,
पटना।

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ

ऐतिहासिकता भारतीय साहित्य का एक मात्र निर्बल बिन्दु है (History is the one weak spot of Sanskrit literature) । उसे ही सत्य का अन्तिम बिन्दु क्या कोई विवेकशील साहित्यकार स्वीकार कर सकता है ! मेरा विश्वास है कि अब तक उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री मे वह आदिम प्रश्न जो प्रत्येक साहित्य के इतिहास लेखक को परीशान करता है, उपेक्षित रहा है । प्रमाणिक सामग्री के अभाव मे यह ठीक है कि एक पूर्ण तिथिक्रम (Chronology) बनाना कठिन ही नही, असभव ही है परन्तु यदि ऐतिहासिक पृष्ठाधार प्रमाण के रूप मे न मिल सके तो क्या भाषाधार पर इस विषय का विश्लेषण करना अनुपयुक्त होगा ? भाषा का प्राचीन स्वरूप नीचे दी गई अनुक्रमणिका से स्पष्ट होगा —

सस्कृत—(*i*) वैदिक सस्कृत
(*ii*) ब्राह्मणीय सस्कृत
(*iii*) औपनिषदिक सस्कृत
(*iv*) लौकिक सस्कृत



इस तालिका को ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि शौरसेनी अपभ्र श के प्राचीनतम जो रूप उपलब्ध काव्य-साहित्य मे हो, उनसे हिन्दी के स्वरूप का पता चल सकता है । बौद्ध सिद्धो ने तथा जैनाचार्यों ने अपभ्र श भाषा को अपनी विचारावलियो

से मडित किया है और आज अपभ्र श भाषा के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने इसी कारण 'अपभ्र श' को 'अपभ्र श' याने गिरी हुई भाषा कभी नही कहा, वे उसे प्राचीन हिन्दी का स्वरूप मानते रहे। तत्कालीन उपलब्ध साहित्य 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन', 'कुमारपाल प्रतिबोध' तथा 'प्रबन्ध–चिन्तामणि' आदि दो एक पुस्तको के आधार पर उन्होने उदाहरण प्रस्तुत कर यह बात सिद्ध की थी। ७ वी शताब्दी मे अपभ्र श का साहित्य अवश्य वर्त्तमान था और राजशेखर, रुद्रट और भोज ने अपभ्र श की चर्चा की है। हेमचन्द्र का व्याकरण वास्तव मे मेरे विचार से पुरानी हिन्दी का व्याकरण है जिसका अनुमान प्रसिद्ध जर्मन भाषा शास्त्री पिशेल ने भी किया था और स्वीकार किया कि अपभ्रंश का बहुत विपुल साहित्य इस देश मे वर्तमान था········ ···दुख है कि अपभ्र श का विपुल साहित्य खो गया है।'[1] किन्तु जैन ग्रन्थ भडार मे आज सहस्रो अपभ्र श की पुस्तके वर्त्तमान है जिनका उल्लेख प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है, जिनमे मुख्य है सन्देश रासक, वज्र स्वामी चरित्र, अतरग सन्धि, चौरग सन्धि, सुलसाख्यान, चच्चरी, भावनासार, परमात्म प्रकाश, आराधना, मयणरहो सन्धि, नमयासुन्दरि सन्धि, भविष्यत्त-कहा, पउम चरिउ। मुनि जिन विजय जी के ही अथक परिश्रम से महत्व पूर्ण अपभ्र श ग्रन्थो का पता चला है जिसमे पुप्फयन्त या पुष्पदन्त का तिसट्ठी लक्खण–महापुराण और स्वयभू पउम चरिउ, हरिवश पुराण आदि पुस्तकें प्राप्त हुई है अपभ्र श साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने वालो मे मुख्य है सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि जिन विजय जी, आदिनाथ उपाध्याय, डा० हीरालाल, डा० परशुराम वैद्य, पं० लाल चन्द्र गॉधी, डा० जगदीशचन्द्र जैन आदि। अपभ्र श साहित्य के इन मनीषियो पर ही इस गम्भीर प्रश्न का समाधान अवलम्बित है। गुलेरी जी के समय मे अधिक अपभ्र श ग्रन्थ प्रकाश मे ही नही आये थे, नही तो मेरा अनुमान हे वे इस जटिल समस्या का समाधान करते फिर भी इसका समाधान आज के साहित्यिको को चुनौती-सा दे रहा है और इसका समाधान होना ही चाहिए।

शैली के आधार पर भी इस विषय का विश्लेषण हो सकता है, यद्यपि इसे अन्तिम तथ्य के रूप मे स्वीकार करना कठिन है। प्राचीन अपभ्र श ग्रन्थो मे दोहा-शैली मिलती है। 'बौद्ध गान ओ दोहा' मे तो स्पष्ट दोहा शैली ही है। पुष्पदन्त कवि ने जिस अलकार ग्रन्थ का निर्माण किया था वह भी तो दोहा में ही है। कतिपय ग्रन्थों को देखकर यह धारणा बनाई जा सकती है कि अपभ्र श काल की अभिव्यक्ति की मुख्य शैली दोहा थी। राजस्थानी साहित्य मे भी प्राचीनतम ग्रन्थ और आदि-काव्य 'ढोला मारूरा दूहा' ही है। द्विवेदी जी ने लिखा भी है—इस पुस्तक को हेमचन्द्र के

१ हिन्दी साहित्य का आदि काल—पृष्ट 3

व्याकरण मे प्राप्त दोहो और बिहारी सतसई के बीच की कडी समझा जा सकता है। ··· ···· · 'ढोला मारू के दोहो के सम्पादको[1] ने ठीक ही कहा है कि "हिन्दी भाषा के आदि काल की ओर दृष्टि डालने पर पता लगता है कि हिन्दी के वर्त्तमान स्वरूप के निर्माण के पूर्व गाथा और दोहा साहित्य का उत्तर भारत की प्राय सभी देशी भाषाओ मे प्रचार था। उस समय की हिन्दी और राजस्थानी मे इतना रूप-भेद नही हो गया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थी तो अत्युक्ति न होगी।" इस सम्बन्ध मे अनेक भाषाविद् और अपभ्र श भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी ने अपने सग्रह मे महत्वपूर्ण विचार प्रगट किये है। उनके विचार से अपभ्र श वस्तुत पुरानी हिन्दी ही है और इसका सर्वोत्तम कवि माना है स्वयभू को जिसकी रामायण की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। "स्वयभू की रामायण हिन्दी का सबसे पुराना और सबसे उत्तम काव्य है।"[2] काव्य की दृष्टि से ही कदाचित् उन्होने दूसरा स्थान पुष्पदन्त कवि को दिया है। द्विवेदी जी का मत है कि "पुष्पदन्त हिन्दी के पुराने इतिहासकारो के निकट परिचित थे। शिव सिंह सेगर जी ने भी टाड के राजस्थान के आधार पर लिखा था। सवत् सात सौ सत्तर विक्रमीय मे राजा मान अवन्तीपुरी का बडा पडित अलकार विद्या मे अद्वितीय था। उसके पास पुष्पमाट ने प्रथम सस्कृत ग्रन्थ पढ पीछे भाषा मे दोहा बनाये। हमको भाषा की जड यही कवि मालूम होता है।"

आदि-काव्य और कवि की समस्या घूम फिर कर एक ही विन्दु पर आ जाती है। जिस प्रकार राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे 'ढोला मारूरा दूहा' आदि-काव्य माना जाता है और उसका रचयिता आदि कवि उसी प्रकार हिन्दी के किस काव्य और कवि को आदि कवि और काव्यकार की उपाधि से विभूषित किया जाय ? यह सचमुच बडे आश्चर्य की बात है कि राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे आदि-काव्य का नामोल्लेख है किन्तु कवि का नही और हिन्दी साहित्य के इतिहास मे कवि का नामोल्लेख है काव्य का नही। यह कैसी विचित्रता है ? दुख की बात है कि विषय और तज्जन्य समस्या धूमिल पट पर ही आकर्षण पैदा करती है परन्तु गम्भीर अन्वेषक की कर्मठता पर क्या प्रश्नवाचक चिह्न नही लगाती ? मेरे विचार से और राहुल जी ने जो प्राचीन हिन्दी के कवियो की शताब्दी के अनुसार तालिका बनाई है उसे देखने पर मालूम पडता है कि आठवी शती के सरहपा ही हिन्दी के आदि-कवि कहे जा सकते है यद्यपि पुष्पदन्त का नाम 'टाड' ने दिया है।

आठवी शती—सरहपा, सबरपा, स्वयभू, भूसुकपा

---

१ श्रीराम सिंह, श्री सूर्य करण पारीक, श्री नरोत्तम स्वामी

२ हिन्दी काव्य-धारा

नवीं शतीः—
लुइपा
विरुपा
डोबिपा
दारिकपा
गुण्डरीपा
गोरक्षपा
टेण्टरणपा
महीपा
भादेपा
धार्मपा

दशवीं शतीः—
देवसेन
तिलोपा
पुष्पदन्त
शान्तिपा
योगीन्द्र
रामसिह
धनपाल

ग्यारहवीं शतीः—
एक अज्ञात कवि
अब्दुर्रहमान
बब्बर
कनकामरमुनि
जिनदत्त सूरि

बारहवीं शतीः—
हेमचन्द्र
हरिभद्र
अज्ञात कवि
आम भट्ट
शालि भद्र
विद्याधर
सोमप्रभ
जिनपद्म
विनयचन्द्र
चद

तेरहवीं शतीः—
लक्खरग
जज्जल
अज्ञात
अपदेव सूरि
हरिब्रह्म
दो अज्ञात कवि
राजशेखर सूरि

जनश्रुति और परम्परा मे एक बल होता है उसमे सच्चाई का आशिक स्वरूप अवश्य रहता है। राहुल जी की खोज से वस्तुत एक रिक्त स्थान की पूर्ति हुई है और हमे यह कदाचित् स्वीकार करना चाहिये कि हिन्दी भाषा का आदि कवि स्वयभू था और उसकी रचना रामायरग थी। किन्तु उपलब्ध सामग्री को ध्यान मे रखते हुए और तालिका पर दृष्टि डालने पर यह बात साफ विदित होती है कि हिन्दी का प्राचीन और आदि-कवि सरहपा था। राष्ट्र भाषा परिषद के वार्षिक कार्य विवरण मे 'विहार की साहित्यिक झलक-झाकी' मे पुरानी परम्परा के ये शब्द वस्तुत प्रकाश डाल रहे है समस्या पर—'हिन्दी के रूप निर्माण का श्रीगणेश, आज के लगभग तेरह सौ वर्ष पहले, (७ वी शती मे) बिहार मे ही हुआ था। उस समय भारत मे 'हर्ष-वर्द्धन' का शासन था और सस्कृत के साथ अपभ्र श, प्राकृत, पाली आदि भाषाओ की प्रधानता थी। सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड गद्य लेखक महाकवि—'वाणभट्ट' बिहार

निवासी ही थे। उसी वाणभट्ट की मित्र-मडली मे 'सरहपा' नामक बौद्ध सिद्ध भी थे। उसी 'सरहपा' की लिखी मगही भाषा की सोलह पुस्तको के अनूदित रूप 'भोटिया' भाषा मे प्राप्त हो चुके है। इन पुस्तको की रचनाओ मे हिन्दी का आदिम रूप पाया जाता है। कवि 'सरहपा' का नाम राहुल भद्र और सरोज भद्र भी था। कवि 'सरहपा' के बाद भी, अपभ्र श और मगही भाषा मे नाथ कवियो की रचनाए मिलती है, वे सभी कवि 'नालन्द विश्वविद्यालय' से सबद्ध थे। उनकी रचनाओ का समय ८४० से लेकर १०७० तक है। उन नाथ कवियो की रचनाओ मे अनेक शब्द ऐसे मिलते है, जो आज भी हिन्दी मे प्रचलित है।

बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् और राहुल जी की गवेषणा के आधार पर यह निस्सकोच स्वीकार किया जा सकता है कि प्राचीन हिन्दी का आदि-कवि सरहपा था और उसके काव्य मिले तो है परन्तु अभी नामोल्लेख नही हो पाया है।

अध्याय २

हिन्दी काव्य में वीर और राष्ट्रीय भावना

अन्तरिक्ष की ओर मे झाँकती हुई उषा के कपोलो की लालिमा से जिस प्रकार दिवस के जीवन का विकास होता है, उसीप्रकार ससार के साहित्य का मुख-मण्डल सघर्ष और युद्ध की लाल लपटो से दीपित है। जिस प्रकार नीले गगन मे बिखरी शत-शत अरुण रश्मियो के सस्पर्श से कवि की कल्पना जागृत हो सतरगी हो जाती है, उसी प्रकार विश्व साहित्य के प्रागण में वीरता और प्रेम की आँख मिचौनी से जीवन रगीन हो चिनगारियाँ निसृत करता है। ज्ञान-सूर्य का आलोक फूट कर जैसे कालिमा को मिटाता हुआ एक अभिनव प्रकाश से मानव-जीवन को सार्थक बनाता है, वैसे ही बर्बरावस्था के धु ध से सभ्यता एव सस्कृति की सुनहली रेखाये निकलकर साहित्य-क्षितिज पर ज्योति-पु ज-रूप मे प्रकट होती है। भटकते हुए मानव-मन मे जब ज्ञान का बीज पल्लवित होता है तब उसका हृदय-कमल ससार के जड-चेतन पदार्थों के साथ अपना सामजस्य करता हुआ एक अनिर्वचनीय आनन्द मे खिल जाता है, किन्तु ज्ञानाभाव से मानव दु ख-सागर मे कभी २ निमज्जित हो या तो वैराग्य भावना दृढ करता है या वीर भावना। किसी विस्मय विमुग्ध वेला मे मानव अपनी प्रियतमा के मुखारविद की रूपराशि को निरखता हुआ चकित था किन्तु इसी तन्मयता के बीच जब प्राकृत या अप्राकृत व्यवधान उपस्थित हुए होंगे तो अडचनो के कूल मे टकराकर मानव की आकाक्षाये चीत्कार करने लगी होगी और मानव दुर्द्धर्ष बन गया होगा। प्रेम की इसी सरल सुषमा को रुद्ध पाकर कदाचित् मानव वीरता का पुजारी बना, पौरुष की अर्चना की एव जीवन मे निजस्विता की गति भरी। किन्तु, आश्चर्य है कि हमारी भारतीय वीर-भावना मे निज के स्वार्थ का उतना ध्यान नही जितना लोकरक्षा और समाज सेवा का भाव है। प्रेम के इसी उन्मन रूप की कसमसाहट ने मानव जीवन को उद्दीप्त किया और सभवत साहित्य-जीवन की कहानी प्रेम और सघर्ष के दो कूलो को स्पर्श करती हुई आगे बढी है। वास्तव मे हमारी वीरता मे यमुना की कालिमा कम गगा की पवित्रता ही अधिक है।

विश्व-साहित्य के प्रारम्भिक विकास पर एक विहगम दृष्टि डालने से यह भासित होता है कि ससार की साहित्यिक ज्योति चाहे वह लैटिन मे हो या ग्रीक मे, चाहे अरबी मे हो चाहे फारसी मे, चाहे सस्कृत मे हो या ब्रज खडी हिन्दी मे, सर्वत्र वीरता का ही वैभव निखरा दिखाई पडता है। स्पेन्सर' की "दी फेयरी क्वीन" मे जो वीरता प्रतिध्वनित हो रही है, वही 'ट्रोजन युद्ध' मे, वही देवासुर सग्राम' मे। बाल्मीकीय 'रामायण' मे यदि सीता-हरण के कारण राम-रावण युद्ध मे वीरता प्रदर्शित की गई हे, तो वेद व्यास रचित 'महाभारत' मे द्रौपदी की लज्जा की रक्षा के लिए सग्राम की सार्थकता मे वीरता चरितार्थ हुई है। होमर के जगत-प्रसिद्ध काव्य "इलियड" मे यदि स्पार्टा नरेश मेनीलास की अनिद्य सुन्दरी हेलेन के अपहरण के कारण "ट्रोजन युद्ध" की भयावनी लडाई मे वीरता का वर्णन है, तो दाते की "डिवाइन कामेडी" मे कवि के भग्न हृदय का वीरता पूवक आत्म-त्याग स्पष्ट है। 'वीट्रिस' के प्रेम मे पागल होने पर पर भी कवि ने अपने जीवन की मशाल और प्रेरक शक्ति को यह मालूम होने नही दिया कि इटली का प्रख्यात कवि उसके चरणो का उपासक है और उसके प्रेम मे अपनी आहुति दे रहा है। तात्पर्य कि विश्व-साहित्य का प्रारम्भ युद्ध और वीरता के शाश्वत पथ पर सयोग-वियोग के झुरमुट मे अग्रसर हुआ है। अत न केवल हिन्दी साहित्य का उषाकाल वीरता के घोर कर्कशनाद से गूज रहा है अपितु विश्व-साहित्य के इतिहास के मूल मे वीरता की कहानी सन्निहित है। हा, यह अवश्य है कि विभिन्न देशो की विभिन्न परिस्थितियो ने साहित्य की वीर-भावना को अपने २ तौर पर प्रभावित किया है।

सघर्ष की अपनी एक परिस्थिति होती है और उसका लेखाजोखा, मूल्याकन परमावश्यक है। प्रेम एव सघर्ष के मूल मे न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य की व्याप्ति है इसलिये इसकी विवेचना करना आवश्यक है। रावण की दानवी एव आसुरी वृत्ति के विनाश के लिये राम ने लका मे जो क्रान्ति का भैरवगान निनादित किया था, वृन्दावन बिहारी भगवान् कृष्ण ने कस के अत्याचार और नृशसता के विरोध मे जो क्रान्ति का बीज-वपन किया था तथा शिशुपाल आदि की अभद्र गालियो को सुदर्शन चक्र की लौह धार मे जिसने समाप्त किया था, उस सघर्ष से अन्याय-अनौचित्य के फूल नही खिले अपितु न्याय का. औचित्य का तथा सौजन्य आदि उदात्त भावो का पथ न्यस्त हुआ था। दलितो के पुनरुद्धार के लिये, पीडितो के त्राण के लिये, दीनो की कराह को मिटाने के लिये जो सघर्ष होता है उसमे जन-मन की वाणी होती है, आत्मा का बल होता है तथा न्याय की शान्ति मिलती है, परन्तु जिस सघर्ष में अन्यायी की नृशसता का शूल है, स्वार्थ का कलुषित मेल है, अधिकार एव अपहरण की अमानवीय अभिलाषा है, उसमे आत्मोन्नति के सभी मार्ग बन्द हो जाते है और विनाश की ध्वसकारी लीला आश्रय पाती है। एक मे निर्माण की योजना है, दूसरे में विनाश की लीला। एक मे जीवन की सरस सलिला है, दूसरे मे विषाक्त कटुता।

मघर्ष का नीति की दृष्टि से सभवत यही महत्व है। स्वस्थ सघर्ष जीवन की प्रगति है, अस्वस्थ सघर्ष अगति का परिचायक हे। तात्पर्य कि सघर्ष जीवन की प्रगति का मूल बिन्दु है।

भारतवर्ष मे राष्ट्र और राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक बदलता रहा है। झझावात के भीषण थपेडो से आहत होकर कभी राष्ट्र का स्वरूप प्रादेशिक हो गया है और कभी तूफानो के बीच भी राष्ट्र की भौगोलिक मीमाएँ अक्षुण्ण रही है। इस सकोच और विस्तार की अनेक कडियाँ है। राष्ट्र की परिवर्त्तनशील भूमि पर राष्ट्रीयता के नये नये कलेवर बदले है तथा वीर-भावना को समय समय पर नया रूप, नवीन अभिव्यन्जना मिली है।

प्रागैतिहासिक युग मे भारत एक राष्ट्र के रूप मे अवस्थित था और इस राष्ट्र के अभ्युत्थान के मूल मे आध्यात्मिक गुरुता का विवेकपूर्ण बल था। इस कारण उस युग की वीर-भावना मे समाज-कल्याण और बन्धुत्व के बीज थे। राजनैतिक और सास्कृतिक उन्नति के लिये जन-जन मे एक नैतिक तेज था और नरेशो मे आदर्श प्रस्तुन करने की अदम्य अभिलाषा थी। डा० सुधीन्द्र ने लिखा है "भूमि, भूमिवासी 'जन' और जन-सस्कृति तीनो के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजनैतिक एकता और जन-सस्कृति अर्थात् सास्कृतिक एकता तीनो के समुच्चय का नाम राष्ट्र है। 'राष्ट्र' मे भौगोलिक, राजनैतिक और सास्कृतिक इकाइयाँ पु जीभूत है।" इस दृष्टिकोण से भी प्रागैतिहासिक युग की काव्य-धारा मे भारत की भूमि, जन एव सस्कृति के अभ्युत्थान-गीत गाये गये है। 'जम्बू दीपे भरत खण्डे आर्यावर्त्ते' एव 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' आदि मे भारत एक राष्ट्र-रूप मे ध्वनित है। यही नही धार्मिक पुस्तको मे, वेदो मे तथा ब्राह्मणी ग्रन्थो मे भारत एक राष्ट्र के रूप मे वर्णित है —

गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु॥

इस श्लोक द्वारा भारत की सम्पूर्ण नदियो के जल की पवित्रता और राष्ट्र की अविच्छिन्न एकता को स्वीकार कर धर्मवेत्ताओ की मुक्त कठ से प्रशसा करनी चाहिये। प्राचीनतम साहित्य मे भारत के इसी स्वरूप का चित्रण है फलत उस समय के वर्णित युद्ध मे भारत राष्ट्र को रक्षित करने की चेष्टा दीख पडती है। इस आदर्श राष्ट्रीय भावना ने चक्रवर्त्ती राजाओ को प्रेरणा दी और वे शक्ति के प्रतीक जनता के पूजक बने। इन नरेशो मे भारतराष्ट्र की सामूहिक सुरक्षा एव उत्थान की व्यापक लालसा उद्दीप्त थी। राम से लेकर हर्ष तक भारत की कल्पना एक राष्ट्र के रूप मे रही।

इस काल की अपनी एक सस्कृति थी और अपना एक समाज था । इस समाज एव सस्कृति की रक्षा ही राजा का प्रधान कर्तव्य था, किन्तु मुस्लिम आक्रमणो के प्रारम्भ होते ही समग्र भारत अपनी राष्ट्रीय एकता तथा गौरव को खोकर अनेक राज्यो मे बिखर गया। एक भारत, एक राष्ट्र और एक देश की कल्पना स्वार्थो की घनीभूत लिप्सा मे भस्मीभूत हो गई। भारत की राष्ट्रीय भावना, जिसमे सम्पूर्ण देश की सास्कृतिक एकता गूजती थी मुस्लिम काल मे आकर प्रादेशिक एव प्रान्तीय हो गई। फलस्वरूप भारतवर्ष मे आसमुद्र पृथ्वी पर राज्य करने वाले चक्रवर्त्ती नरेशो का अभाव होने लगा और भारत के भाग्याकाश मे असख्य छोटे-छोटे नरेश तारो के समान टिमटिमाने के लिये व्याकुल होने लगे। आपस की टकराहट और सघर्ष ने सामाजिक जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया। प्राचीन आदर्श एव मान्यताओ पर कुठाराघात होते देख कर भी भारतीय नरेशो की आखे न खुली और देश की राष्ट्रीय एकता एव सास्कृतिक महत्ता आक्रमणकारियो द्वारा खड-खड की गई तथा उसे जड से कुरेदने मे कोई कोर कसर उठा न रक्खी गई। युगो तक भारत इस दुर्घटना का शिकार बना रहा किन्तु समय समय पर उस खडित राष्ट्र की एकता को पुन स्थापित करने का प्रयास किया गया। तात्पर्य कि भारत की राष्ट्रीय एकता की परम्परा आदि काल से चली आई है यद्यपि इसकी धारा कभी कभी क्षीण भी हुई किन्तु आज पुन अपने पथ पर विकासोन्मुख है। परिणाम स्वरूप हमारे प्राचीन साहित्य मे भारत की राष्ट्रीय एकता के प्रशस्त गीतो एव उसकी सुरक्षा के लिये वीर-गीतो की रचना हुई किन्तु यह भावना कभी क्षीण और कभी प्रबल हुई है।

हिन्दी साहित्य के आदि काल मे भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त अस्थिर थी, ईर्ष्या, द्वेष एव कलह ने सहस्रबाहु के समान सारे भारत को आच्छादित कर रखा था। हिन्दू गण-राज्य की इकाइयाँ नष्ट हो गई थी। राष्ट्र राज्य का रूप धारण कर चुका था। इस कारण जब भारत पर विदेशी आक्रमण हुए तो वे आक्रमण समग्र भारत पर आक्रमण नही समझे गये। वे आक्रमण केवल राज्य पर आक्रमण माने गये। फलत भारत की शक्ति क्रमश क्षीण होती गई। विदेशी आक्रमणकारियो ने भारत की इस दुर्बलता एव दुरवस्था से पूरा लाभ उठाया और क्रमश सारे भारत-वर्ष मे फैल गये। मुहम्मद गोरी ने जब सर्वप्रथम महाराज पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तो किसी नरेश ने यह नही समझा कि वह राष्ट्र की भौगोलिक सीमा और सास्कृतिक एकता पर आक्रमण है। खतरे का मुकाबला करने की वे क्या सोचते, महाराज पृथ्वीराज के आवाहान करने पर भी भारत के नरेश विलास-वैभव मे डूबे रहे और उनके कान पर जूँ तक न रेंगी। परिणाम यह हुआ कि भारत गुलामी की जजीरो मे जकड गया और स्वाधीनता के सुख-स्वप्न, वैभव विलुप्त हो गये। किन्तु कतिपय नरेशो ने अपनी प्राचीन महत्ता, सबल स्वाधीन जीवन की स्वस्थ मुस्कान एव

अपने धर्म, सस्कृति, आचार-विचार और स्वातन्त्र्य-प्रेम को नही छोडा । पादाक्रान्त होने पर भी वे आर्य-धर्म और आर्य-सस्कृति तथा हिन्दू जाति के सरक्षक बने रहे। तात्पर्य कि स्वाधीनता के घर मे बाहर निकल कर जब भारत पराधीनता के चगुल मे फँस गया तभी मे वह अपने घर वापस आने की चेष्टा करता रहा और उस युग की स्वाधीन वायु मे साँस लेने वाले चारण कवियो ने अपनी रचनाओ द्वारा वीर नरेशो के मन मे प्रोत्साहन और सदुद्देश्य की प्राप्ति की लालसा उत्पन्न की।

राजनीतिक परतन्त्रता के उस अभिशापमय युग मे हिन्दी काव्य की वीर-भावना एक राष्ट्र पर अवलम्बित न थी अपितु उसकी प्रेरणा का उद्गम स्थल 'राज्य' की भक्ति थी। उस युग मे राजा समाज का केन्द्र-बिन्दु और राज्य का प्राण होता था। जो कवि राजा के प्रशस्ति-गीत गाता था वही सम्मान और आदर का अधिकारी होता था। इस कारण राजाओं के पराक्रम वर्णन, कन्यापहरण मे वीरता का वर्णन तथा रणक्षेत्र मे वीरो को उत्साहित करने के लिये ही कवि वीर-काव्य की रचना करते थे। जहा राजनीतिक कारणो से युद्ध होता था वहा भी कवि एक षोडशी की कल्पना कर युद्ध की घोषणा करते थे। शहाबुद्दीन के यहा से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहा आना युद्ध का कारण बताया गया है। हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढाई का भी ऐसा ही कारण कल्पित किया गया है। शौर्य के समुद्र मे श्रृगार की लहरी, वासना के मधुलेप मे प्रेम की रसधारा थी। अत हिन्दी के वीरगाथा काल मे जातीय विद्वेष एव व्यक्तीयता की प्रधानता दिखाई पडती है।

हिन्दी के आदिकाल का उपलब्ध साहित्य बहुत न्यून है। इस साहित्य को 'रासो' की सज्ञा से अभिहित किया गया है और इनके रचयिताओ को भाट कहा गया है। 'नरपति' का 'खुमान रासो" 'शार्ङ्गधर' का "हम्मीर रासो" 'नाल्ह' का 'बीसलदेव रासो" 'चन्द' का पृथ्वीराज रासो" 'मधुकर' का "जयमयक जस चन्द्रिका", 'भट्ट केदार' का "जयचन्द प्रकाश", 'जगनिक' का 'आल्हा ऊदल' तथा 'श्रीधर' का 'रणमल्ल छन्द" इन ग्रन्थो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सारा उत्तरापथ उस समय रणक्षेत्र बना था और उस भूमि के नरेश अपने शौर्य-प्रदर्शन मे तल्लीन थे। इन काव्यो के रचयिता कविगण सभी राज्याश्रित होते थे। अत इन लोगो ने अपने अपने नरेशो के शौर्य-गान, प्रताप-पराक्रम का कीर्त्तिगान ही किया है। वे दरबार मे दरबारियो की तरह रहते थे और समय-समय पर राजाओ मे उत्साह और प्रेरणा भरा करते थे। अत हिन्दी का आदि वीर-साहित्य एक तरफ तो पृथ्वीराज के धनुष टङ्कार का उल्लेख करता है दूसरी तरफ 'जगनिक' का 'आल्हा-ऊदल' ढोल की कर्कशता एव रौद्र के भयानक अट्टहास का स्मरण करा देता हैं। तलवारो की साय साय कडकड और खडखड की ध्वनि हृदय को उद्वेलित करने

चरणों के बोझ से मेदनी काँप उठी। रवि रथ धूलि-कणों से आच्छादित हो गया। कछुए की पीठ दुखने लगी। मेरु पर्वत कापने लगा और गज सेना लेकर हम्मीर चले। म्लेच्छो के पुत्र हा दुख ! हा कष्ट ! हा विपत्ति! कर रो उठे और मूर्च्छित हो गये।

युद्ध का वर्णन सेना की तैय्यारी, शस्त्रों की चमक वीरा की भयावनी दिल दहलानेवाली आवाज और कायरो की भगदड के वीरोल्लास पूर्ण चित्र देखने हो तो अपभ्रंश काल के राजस्थानी कवियो की रचनाओ को उलट जाइये। आप मत्र-मुग्ध हो जायेंगे वीर रस के स्वाभाविक वर्णन और चित्रण से। इन ग्रथो की प्रशसा महाकवि ठाकुर ने की थी। १२ फरवरी १९३५ को राजस्थान के रिसर्च सोसाइटी के समक्ष दी चारण आव राजपूताना' The charan of Rajputana) विषयक जो भाषण दिया था वह वस्तुत चारण काव्य की महत्ता का द्योतक है।[१]

'भक्ति साहित्य हमे प्रत्येक काल मे मिलता है। सभी स्थानो के कवियो ने अपने ढग से राधा और कृष्ण के गीतो का गान किया है। परन्तु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है और इसका कारण भी है। राजपूतो के कवियो ने जीवन की कठोर वास्तविकताओ का सामना करते हुए युद्ध के नक्कारे की ध्वनि के साथ स्वभावत काव्यगान किया। उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के ताडव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था। क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है ? राजस्थानी भाषा के प्रत्येक दोहे मे जो वीरत्व की भावना और उमग है, वह राजस्थान की मौलिक निधि है और समस्त भारत के गौरव का विषय है। वह स्वाभाविक, सच्ची और प्रकृत है। मेरे मित्र क्षितिमोहन सेन ने हिन्दी-काव्य से मेरा परिचय कराया। आज मुझे एक नई वस्तु की जानकारी हुई है। इन उत्साह-वर्द्धक गीतो ने मेरे समक्ष साहित्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है। मैंने कई बार सुना था कि चारण अपने काव्य से वीर योद्धाओ को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। आज मैंने उस सदियो पुरानी कविता का स्वय अनुभव किया। उसमे आज भी बल और ओज है। भारतवर्ष चारण-काव्य के सुसपादित सस्करण की प्रतीक्षा कर रहा है।" [१]

वास्तव मे हिन्दी साहित्य के इतिहास के पृष्ठ म कुछेक कवि और उनके ग्रथो का नामोल्लेख मिलता है। फिर भी अधिकाश रचनायें १४ वी शताब्दी की

१. Modern Review, Dec. 1938. Page 229

है और न जाने कितने कवि खोज की राह देख रहे है। काल-विभाजन की दृष्टि से सन् १०५० से १४०० तक का समय वीर गाथा काल[1] कहा गया है। किन्तु हिन्दी के किसी साहित्य के इतिहास मे अपभ्र श काल मे हुए वीर तथा प्रसिद्ध कवियो का कोई उल्लेख नही मिलता। राष्ट्रीय कवि दुरसा आढा, महात्मा ईश्वरदास साँया झूला, महाकवि नरहरदास बारहठ, स्वरूपदास आदि वीर रस के बडे ही लोकप्रिय और प्रसिद्ध कवि हुए है जिनके ग्रथो की ओजस्विता और वाणी की गभीर गर्जना शायद ही किसी साहित्य मे उपलब्ध हो। अग्रेजी साहित्य के वीर काव्य में ओज की मात्रा इन कवियो की दुर्द्धर्ष वाणी से अवश्य ही कम है। भाव और भाषा का निर्वाह अपूर्व है। इनके ग्रथो मे जन-जीवन घुला-मिला है। इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि उस काल और युग की सीमा मे जितने ग्रथ निर्मित हुए वे वीर भाव के थे अपितु सभी प्रकार और रसो की व्यजना हुई होगी। किसी आलोचक ने ठीक ही लिखा है–"उसमे केवल वीर रस ही नही, ईश्वर-भक्ति, शृगार, वात्सल्य, करुण, हास्य आदि रसो की भी उत्कृष्ट व्यजना हुई है" तात्पर्य कि वीर गाथा काल मे वीर रसात्मक चित्रण की प्रमुखता तो रही परन्तु अन्य रस उपेक्षित नही रहे।

अपभ्र श काल और वीर गाथा काल मे वीरता की ध्वनि शृगार के प्राङ्गण मे हुई है। एक तो उस समय का इतिहास ही उपलब्ध नही और प्रामाणिक इतिहास की बात ही निरर्थक है परन्तु फिर भी ज्ञात इतिहास के आधार पर यह निस्सदेह स्वीकार करना पडेगा कि इन (वीरगाथा काल के) राजा अपनी काम वासना की परितृप्ति के लिये अथवा राज-लिप्सा के कारण युद्ध की घोषणा करते रहे है। ऐसे कतिपय स्थल मिलते है जहाँ रस अपनी पूर्णता तक नही पहुँचता, साधारणीकरण भी नही होता केवल रसाभास की उपलब्धि होती है किन्तु जहाँ तल्लीनता और तन्मयता के साथ आत्मा के ओज की अभिव्यजना है, वहाँ सुन्दर वीर रस का सचार हुआ है। नरपति नाल्ह कृत 'वीसलदेव रासो' मे रानी राजमती के रस की प्रधानता होने के कारण कवि का ध्यान सयोग और वियोग की ओर अधिक गया है :–

कुँवरि कहई सुणि, साँमस्या राव।
काई स्वामी तू उलगई जाई ?
कडुवा बोल न बोलसि नारि
तू मो मेल्हसि चित्र बिसारि।।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

जीभ न नोम विगोयनो
दव का दाधा कुपली मेल्हई ।।
जीभ का दाधा न पाँगुरई
नाल्ह कह सुणी जह सब कोई ।।

फिर भी इन रचनाओ के मूल मे लोक-सरक्षरण का स्वर है, लोक-मगल की भावमयी पृष्ठभूमि है। ईश्वर की भावना क्षात्र-धर्म के सस्थापक के रूप मे कर इन कवियो ने लोक-कल्याण और लोक-रक्षा के व्यापक उद्देश्य की पूर्ति कर मानव-जीवन का सफल बनाने का प्रयास किया है। वीरोत्साह, वीरदर्प, वीरोक्तियो के साथ दिव्य प्रेम और पातिव्रत धर्म के समन्वय का यह इतिहास ससार के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा।

इस युग की अभिव्यक्ति दो रूपो मे हुई, प्रवन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध जीवन-वृत्त के रूप मे तथा वीर-गीतो के रूप मे वर्णित है। मुक्तक भी सहस्त्रो की सख्या मे उपलब्ध हुए है। मुक्तक काव्य की रचना मे 'गीत छद' और 'दूरा छद' बहुत सुन्दर हुए है और उसमे सभी रसो की सुन्दर व्यजना हुई है। इस युग के प्रवन्ध काव्यो मे मानव-जीवन की बहुरगी भाव-दशाओ का चित्रण तो नही किन्तु प्रेम की परिस्थितिओ और सघर्ष के कारणो का सुन्दर चित्रण है। प्रबन्ध की योजना प्रशसनीय और वर्णन प्रभावोत्पादक और रसात्मक है। मुक्तक गीतो मे वीरो और वीराङ्गनाओ के हृदय मे उठने वाले मार्मिक भावो की चित्रोपम अभिव्यक्ति है जिसे पढकर कभी करुणा से आखे द्रवित हो जाती है और कभी भुजाये फडकने लगती है। चारण कवियो ने वास्तव मे अपने काव्य मे वीर पात्रो को विभिन्न परिस्थितियो मे रखकर उनके शौर्यपूर्ण *घटनाओं का संश्लिष्ट* चित्रण किया है।

चन्द लिखित 'पृथ्वीराज' रासो को हिन्दी साहित्य मे ही नही वरन् अन्य भाषाओ मे भी पर्याप्त प्रख्याति मिली है। यह हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य है। इसमे रसात्मकता अधिक है। जिस समय पृथ्वीराज गोरी को पकड लेते है उस समय का वर्णन कितना सजीव और रोचक है। देखिए —

हुर व रग रक्त वर भयो युद्ध प्रति चित्त।
निस-बासर समुझि न परन न को हार नह जित्त ।।
जीत भई पृथिराज की, पकरि साह ले सग।
दिल्ली दिसि मारग लगौ उतरि घाट गिरि गग ।।
वर गोरी पद्मावती गहि गोरी सुलतान।
निकट नगर दिल्ली गये पृथ्वीराज चहुँआन ।।

'पृथ्वीराज रासो' के उपरान्त जो रचना सबसे अधिक प्रसिद्धि पा सकी है वह है जगनिक का 'आल्हा-उदल'। यह वीर-गीत के रूप मे है जिसे आज भी राजस्थान आदि प्रान्तो मे लोग ढोल पर तन्मय होकर गाते है और प्रेरणा ग्रहण करते है। बरसात के दिनो मे ढोल के गभीर घोष के साथ जब—

बारह बरिस लै कूकर जीए और तेरह लै जिऐ सियार।
बरिस अठ्ठारह छत्री जीऐ आगे जीवन्न को धिक्कार॥

सुनते है तो नसे फडक उठती है।

हिन्दी वीर काल की राष्ट्रीय भावना आदि काल मे वैयक्तिकता के सँकीर्ण कगारो को स्पर्श करती गुजर रही थी। वीरता का जो सन्देश जगनिक ने दिया था, जिसे पढ कर नसो मे बिजलियाँ भर जाती है, वह महान् सन्देश जनता और नरेश भूल चुके थे। जहा पीडितो की रक्षा करना राजधर्म और जनधर्म था वहा पीछे चल कर राज-धर्म और जन-धर्म की व्याख्याएँ बदलने लगी। एक नरेश दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लगे, ईर्ष्या और कलह का बीजारोपण हुआ। लोक-पालन और सरक्षण की आदर्श भावना कपूर की तरह विषाक्त वायु मे उड गई। आदर्श पर विलासिता ने अपना घर बसा लिया था। मुगलो के अत्याचार और मुसलमानो की धर्मान्धता ने हिन्दुओ के रक्त मे उष्णता भरने की चेष्टा की किन्तु बलवान और बलशाली मुसलिम शासको के आगे किसी नरेश की कुछ न चली। फलत हिन्दू जाति भगवान् की ओर उन्मुख हुई। महाकवि सूर और तुलसी ने अत्याचारियो के दमन करने वाले भगवान् विष्णु का चित्रण कर हिन्दुत्व की गिरती दीवारो मे थोप लगाने का प्रयास किया और सफल हुए। भग्न हृदय हिन्दुओ की मलहम पट्टी कर इन भक्त सतो ने नव-जीवन का सचार किया। सूर ने मुख्यत शृङ्गार और वात्सल्य का चित्रण किया है परन्तु भक्तो की लाज-रक्षा, विरद-रक्षा और धर्म-रक्षा के निमित्त *कहीं २ वीर रस का भी सुन्दर चमत्कार* दिखाया है। भक्त की विरद-रक्षा के लिए भीष्म के सामने भगवान् कृष्ण चक्र लिये खडे है। सूर की पँक्तिया अनुपम है—

आज जो हरिहि न शस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौ गँगा जननी को, सातनु सुत न कहाऊँ॥
स्यदन खँडि महारथ खँडौ, कपिध्वज सहित डुलाऊँ।
सूरदास रणभूमि विजय विन, जियत न पीठ दिखाऊँ॥

इन पँक्तियो मे वीर रस का स्वाभाविक चित्रण और अभिव्यजना हुई है। यही नही 'पूतना बध' 'शकटासुर मेलन' 'कस वध' आदि से भी भाव-धारा को प्रोत्साहन और गति मिली है।

सूर और तुलसी का विषय वीर रस नही था परन्तु दानो के नायक वीर-शिरोमणि थे। तुलसी के नायक राम के पौरुष वीरता और उत्साह का चित्रण देखना हो तो निम्नलिखित पक्तियाँ देखिये—

नाना ग्रुध सर चाप धर, जातुधान बलवीर।
कोट कगूरनि चढि गये, कोटि कोटि रणधीर॥

बाजहि भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहि दरारा॥
देखी न जाई कपिन्ह कै ठट्टा। अति विशाल तनु मालु सुमट्टा॥

लका पर बानरो की चढाई का वीर रसात्मक प्रसङ्ग तथा वर्णन अत्यन्त रोचक है। तुलसीदास जी की रचनाओ मे ऐसे सैकडो स्थल है जहा उन्होने वीर रस को पूर्णता तक पहुँचाया है।[1]

मत्त–भट–मुकुट–दसकठ–साहस–सइल —
सृङ्ग-विछरनि जनु बज्र-टाकी।
देसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेछु सकुंचित, सकित पिनाकी॥
चलत महि मेरु, उच्छलत सायर सकल,
विकल विधि बधिर दिसि-बिदिसि झाकी।
रजनिचर धरनि धर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥

इस छद मे वीर रस की व्यजना कितनी सुन्दर है। हनुमान की बाकी हाक सुनकर बडे बडे वीरो के कटिबध ढीले पड जाते है और वे विचलित होने लगते है।

भक्ति-युग की राष्ट्रीय-भावना मे सूर, तुलसी और कबीर का महत्व पूर्ण स्थान है। भारत की सास्कृतिक एकता पर जोर डालकर ये महर्षि सिद्ध हो गये। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर ने समाज-सुधार और एकता की बात बनाकर भारत की सामूहिक उन्नति की कामना की तथा तुलसी और सूर ने सगुण ईश्वर की स्थापना कर मुरझाई हिन्दू जाति और मरणासन्न भारत-राष्ट्र को जीवन प्रदान किया। यही नही, इन महाकवियो के साथ-साथ राजस्थान मे ऐसे अनेक कवि हुए है जिन्होने इस ढहती इमारत को बचाने का प्रयत्न किया और उनकी रचनाए पढकर आप फडक उठेंगे।

१ कवितावली—लकाकाड—४४

भूषण और चद का साहित्यिक कविताए इन लोक-कवियो की जूठन-सी मालूम पडेगी। उदाहरण के लिये 'एक राव जैतसी रो छन्द,'[1] 'राम रासो' और 'नागदमण' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। ये ग्रन्थ वीर रस की सरस व्यजना मे सफल है।

'राव जैतसा रो छद' मे बीकानेर के राव जैतसी और बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के युद्ध का वर्णन है।

नरदास कृत—'अवतार चरित' मे चौबीस अवतारो का सरस अनूठा वर्णन है।

माधोदास देवल कृत 'राम रासो' डिगल भाषा मे लिखा दूसरा रामचरित मानस है।

कविराज करनीदान कृत—सूरज प्रकाश-जिसमे जोधपुर के राजा अभयसिह की युद्ध-वीरता का वर्णन है।

साँचा भूला—'नागदमण'।

चौगीदान कृत—'ओखाहकरण' (उषाहरण)।

मुरारिदास बारहठ कृत—'विजैध्याव' जिसमे रुकमिणी-हरण का सरस वर्णन है।

राजनैतिक स्वतन्त्रता के लोप होने के बाद हमारे भक्त कवियो ने सास्कृतिक स्वतन्त्रता की ओर जनता का ध्यान उन्मुख कर धार्मिक एकता का बीज वपन किया। मुसलमानो के इस अत्याचार ने उनके इस कार्य मे सहायता ही पहुचाई परन्तु इस नवोत्थान से जीवन तथा राष्ट्र की गति बदल नही सकी। फिर भी इन सतो ने वीर भावना की परम्परा को जगाये रखने मे योग-दान देकर स्वाधीन राष्ट्र के वैभव तथा अत्याचारियो के विनाश की भावना भरकर राष्ट्रोत्थान का कार्य अवश्य किया है। इनकी वाणी मे वीर रस तीर्थराज प्रयाग की सरस्वती के समान गुप्त है। मुगलो के बढते हुए अत्याचार को रोकने मे ये कवि सफल नही हुए किन्तु प्रेरणा अथवा पीठिका पर हिन्दुमात्र के कल्याण के लिये वीरता के प्रतीक स्वरूप कई महापुरुष समरागण मे कूद मुगलो से लोहा टकराने लगे। इनमे गुरु गोविन्द सिह, छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल हाडा का स्थान सर्वोपरि है। मालूम पडता है कि इन व्यक्तियो मे स्वय रणचण्डी ने अवतार लेकर अत्याचार के विध्वस की प्रतिज्ञा की है।

१ सूजा बीठू कृत---राव जैतसी रो छन्द

जिन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो ने विद्रोह की आच भडकाई, उन्ही परिस्थितियो ने क्रान्ति-नेता के मन मे वीर-भावना का सचार किया। इस काल मे शौर्य-प्रदर्शन एक खेल था जिसका चित्रण कवि के लिये अनिवार्य था। युग-परिवर्तन के साथ उनकी हठवादिता तो नही बदली किन्तु वीरता की रसात्मक अभिव्यजना अन्तराश्रित हो गई। रीतिकाल के इन कवियो ने आत्मा की पुकार पर लेखनी से श्रम किया और आत्मा की पुकार पर दौड पडने वाले जन-नेता को श्रद्धापूर्वक कविता का विषय बना मान्यता दी। यद्यपि रीतिकाल मे शृङ्गार की प्रधानता थी परन्तु जन-नायक की कीर्ति भी कवित-सवैयो मे उतर पडी। इस युग मे भूषण, सूदनलाल, जोधराज, केशव, गोरेलाल तथा गग आदि कवियो ने युग की परम्परा का साथ देते हुए भी नवीन चेतना और परम्परा का प्रसार किया है। वीर-भावना और राष्ट्रीय-भावना का यह द्वितीय उत्थान काल कहा जा सकता है।

भक्ति-युग की मद गति से चलने वाली वीर रसात्मक कविता को गग और केशव का सयोग मिला और भूषण की सिंह गर्जना ने तो इस धारा मे पुनर्जागरण के सन्देश सजो कर इसकी गति को द्रुत किया। देखिए कवि गङ्ग ने वीर रस का कैसा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है —

झुकत कृपान मय दान ज्यो उदोत मान,
एकन ते एक मानो सुषमा जरद की।
कहै कवि गङ्ग तेरे बल की बयारि लगे,
फूटी गज घटा घन घटा ज्यो सरद की॥
एते मान सोनित की नदिया उमडि चली,
रही न निसानी कहू मोह मे गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति, गनपति गह्यौ गौरी,
गौरीपति गही पूछ, लपकी बरह की॥

कवि गङ्ग के चित्रण मे वीर रस प्रस्फुटित तो हुआ किन्तु उसके मुख पर निर्भीक मुस्कान नही दिखाई पडती जो दुरसा आढा की कृति मे है। कथन की कला प्रियता ने भी 'रामचन्द्रिका' मे वीर रस प्रस्तुत किये किन्तु कथात्मकता मे उस रस की आत्मा निखरी नही। यहा तक कि 'रतन बावनी' जो वीर रस का एक सुन्दर काव्य है जिसमे रत्नसिह की वीरता का सुन्दर स्वरूप अङ्कित है उसमे भी वीर रस को गति नही मिली। कारण कि इन कवियो के सामने एक सुशृङ्खल योजना अथवा जन-नायक की प्रेरणा न थी। ये रचनाए तो केवल वर्णन मात्र है। इसी तरह की दो चार रचनाए रीति काल मे और लिखी गई जिनमे युद्ध-स्थल के शस्त्र तो है परन्तु जनता

को उद्दीप्त करने वाले यन्त्र नही। सूदन कवि का 'सु.ान चरित' तथा जोधराज का 'हम्मीर रासो' चन्द्रशेखर का 'हम्मीर हठ' आदि रचनाए ऐतिहासिक महत्व की नही अपितु वीर भावना के विकास और इतिहास के चित्र है। 'सुजान चरित' से एक उदाहरण लीजिए —

धड धद्धर, धड धद्धर, भडभब्भर भडभब्भर।
तडतत्तर तडतत्तर, कडकक्कर. कडकक्कर॥
धडधग्धर धडधग्धर, झडझज्झर झडझज्झर।
अररर्रर अररर्रर, सररर्रर सररर्रर॥

भाषा और भाव द्वारा युद्ध का उत्साहपूर्ण वर्णन आपकी विशेषता है। युद्ध का कितना सुन्दर वर्णन हुआ है तथा इसकी नाद-व्यजना से युद्ध का चित्र सामने आ जाता है। दूसरा उदाहरण देखिए —

दब्बत युत्थिनि अग्वत छक्क सुखब्बत से।
चब्बत लोह, अचब्बत सोनित गर्ब्वत से॥
कुट्टित भुट्टित काय विछुट्टित प्रान सही।
घुट्टित आयुध, हुट्टित गुट्टित देह दही॥

इन कवियो ने वीर रसात्मक काव्य की रचना तो की, किन्तु इनकी कविताओ मे वीर-भावना का सुन्दर विधान न हो पाया। हिन्दू, हिन्दू-सस्कृति, हिन्दू-धर्म, आचार, विचार एव व्यवस्था के महल को ढहता हुआ देख कर भी इन राज्याश्रित कवियो मे दावानल उगलने की भावना जागृत न हो सकी। मऊ के गोरे लाल ने दोहो-चौपाइयो मे जो 'छत्र-प्रकाश' लिखा वह सचमुच मे अनूठा है। सच्ची घटनाओ के आधार पर आश्रित यह रचना अजर अमर है। "छत्र-प्रकाश मे लाल कवि ने बुदेल वश की उत्पत्ति, चपतराय के विजय-वृतात, उनके उद्योग और पराक्रम, चपतराय के अन्तिम दिनो मे उनके राज्य का मुगलो के हाथ मे जाना, छत्रसाल का थो.ी सी सेना लेकर अपने राज्य का उद्धार, फिर क्रमश विजय पर विजय प्राप्त करते हुए मुगलो का नाको दम करना इत्यादि बातो का विस्तार से वर्णन किया है।" काव्य और इतिहास की मान्यताओ से चाहे यह रचना निराली हो या नहीं परन्तु जन-नायक छत्रसाल के सिहनाद के घोर-रव को गुजायमान करने वाली अमर निधि अवश्य है। है। 'छत्र प्रकाश' का युद्ध वर्णन देखिए —

छत्रसाल हाडा तहँ आयो। अरुन रग आनन छबि छायो॥
भयो हरौल बजाय नगारो। सार धार को पहिरन हारो॥

दौरि देश मुगलन के मारौ । दपटि दिली के दल सहारो ॥
एक आन शिवराज निबाही । करै आपने चित्त की चाही ॥
आठ पातसाही झगझोरै । सूबनि पकरि दड लै छोरै ॥

काटि कटक किरबान बल, बारि जबु फनि देहु ।
ठाटि युद्ध यहि रीति सो, बारि धरनि धर चेहु॥

सूदन की कविता मे जो 'ओज और शक्ति है उसका कारण यह है कि उन्हे भारत, भारतवासी और भारत धर्म-सस्कृति का गर्व था । उनके काव्य के नायक जन-त्राता थे, सस्कृति, धर्म तथा राज के सरक्षक थे । अत्याचार निपीडित जनता की रक्षा के हेतु वे सदा तैयार रहते थे और अनाचार के दमन मे उन्होने जीवन उत्सर्ग किया । ठोस आधार-भूमि पर वीर-रस का साहित्य प्रस्फुटित हुआ और वीर भावना को गति मिली । वीर भावना के इस द्वितीय उत्थान काल मे भूषण की देन भी अपना महत्व रखती है । भूषण की वाणी मे वीरता का विलास और वैभव है । इन्होने भी अपने काव्य का नायक दो महावीरो को बनाया । एक थे शिवाजी जिनके आदर्श चरित्र पर आपने 'शिवा-बावनी' 'शिवराज-भूषण' ग्रन्थ बनाये तथा छत्रसाल की वीरता की शत शत प्रशसा करते हुए 'छत्रसाल-दशक' की रचना की । भूषण की कविताओ के सम्बन्ध मे हरिऔध जी ने लिखा है "कविवर भूषण हिन्दी ससार के होमर है । उनके कविता-कलाप मे भारत की सिह-वादिनी शक्ति का जैसा अद्भुत विकास दृष्टिगत होता है, उनकी ज्वलन्त लेखनी मे वीर-रस का जो अग्निमय उच्छवास पाया जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।" मतलब कि भूषण की कविता बिल्कुल हिन्दूमय हो रही है । 'दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की' मे जो गूज है वह हिन्दुत्वमय है । भूषण जी ने अपनी कविता मे केवल आश्रयदाता शिवा का गुणगान नही किया अपितु जन-मन की चेतना को वाणी देकर कीर्ति-गान किया है । भूषण की कविता मुगलो के अत्यधिक अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप है तभी तो बार २ यही आवाज आती है—

तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल,
भयो हिन्दू को दिवाल भयो काल तुरकाने को ।

हिन्दू जाति के इस सक्षरक की वीरता का नमूना भूषण जी की कविता मे पान करना चाहते हो तो देखिए —

उमडि कुडाल मै खवास खान आए,
भनि भूषण त्यो धाए सिवराज पूरे मन के ।

सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूछे तरराने मुरण वीर धीर जनके ॥
एकै कहै मार मार सम्हरि समर,
एकै मलेच्छ गिरै मार बीच वे सम्हार तनके।
कुण्डन के ऊपर कडाके उठै ठौर,
ठौर जीरन के ऊपर खडाके खडगन के ॥

युद्ध के मारु बाजे, घोडे के हिनहिनाने और तलवारो की कडकडाहट द्वारा युद्ध का स्वाभाविक चित्रण करने मे कवि पूर्णत सफल हुआ है।

भूषण की कविता जनता के भावो की अनुगामिनी है। उनको काव्य नायक शिवाजी हिन्दू जनता के पालनहार तथा उसके स्वार्थो के सरक्षक है। कथा, धर्म, सस्कृति, हिन्दू जाति, सभी खतरे मे थी परन्तु शिवाजी के वरद कृपाण ने इस मृत-प्राय जाति को पुन सजीवनी देकर जीवित किया तथा अत्याचारो और अनाचारो की विविध ताडव लीला को सदैव के लिये मिटा देने के लिए कटिवद्ध थे। इसी कारण भूषण ने लिखा—

"कासी हू की कला गई मथुरा मसीद भई,
सिवाजी न होते तो सुनति होती सब की"

और उसमे पूर्णत सच्चाई है। औरङ्गजेब के अत्याचार को मिटाकर 'जग काज वारे निहचित करि' डालने वाले शिवाजी को धर्मवीर की उपाधि देकर प्रशस्ति गान नही गाया है अपितु शमशेर शिवा की स्वाभाविक हिन्दू-भावना की चर्चा की है क्योकि उनकी तलवार ने ही—

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मै।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की'
धरा मै धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मै ॥
वेद राखे विदित पुरान राखे, सारयुत,
राम नाम राख्यो आनि रसना सुघर मे।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
काधे मे जनेऊ राख्यो माला राखी गर में ॥

देश, जाति धर्म की रक्षा करने वाले ऐसे शिवाजी वास्तव मे प्रशसा के योग्य थे। प्रायः उनकी इतनी प्रशस्ति को देख कर आलोचक यह भी कहते है कि भूषण

की कविता और वीरगाथा काल की कविता की ध्वनि एक-सी है। परन्तु परिवर्तित परिस्थितियो के कारण भूषण की कविता हिन्दू जनता का प्राण बन गई और हमारी वीर-भावना के विकास मे इन कविताओ ने काफी प्रगति दी है।

प्रागैतिहासिक युग की वीर-भावना से लेकर वर्तमान काल की राष्ट्रीय भावना मे एक तारतम्य है, एक ही अन्त श्रोत जीवन-सरिता को गतिमान करता चला आ रहा है। हिन्दी साहित्य की वीर रसात्मक कविताओ की भावना वीर-गाथा काल मे जो थी वही भावना मुगल-काल अथवा भक्ति-रीति-युग मे न थी। प्रागैतिहासिक युग की सबल राष्ट्रीय भावना वीर गाथा काल की राष्ट्रीय भावना नही अपितु उसका स्तर कुछ निम्न है। कलह, विलासिता, एक राष्ट्र की कल्पना का अभाव तथा कवियो का राज्याश्रित होना प्रभृति ने उस युग की राष्ट्रीय भावना को शिथिल अवश्य किया है। उनमे जागृति के चिह्न नही, चेतनता का आभास नही। अत भारतीय राष्ट्र की ढहती हुई इमारत को स्वार्थ और लिप्सा ने और भी पस्त किया। महाराज पृथ्वीराज तथा राजा जयचन्द अपने राष्ट्र को बचा सकते थे किन्तु वे असयत मनो-भावो के शिकार हुए तथा राष्ट्र को एक इतर सत्ता के हाथो मे सौप दिया। पृथ्वीराज की वीर-भावना मुख्यत वैयक्तिकता के घेरे मे आती है जो हिन्दी के मध्यकाल मे जातीयता का चोला धारण करने लगती है। यही जातीय भावना वास्तव मे राष्ट्रीय ही है क्योकि हिन्दू जाति के सामाजिक तथा सास्कृतिक विचारो पर मुसलमानो का आक्रमण और अत्याचार दिनो दिन बढ रहा था। उस समय हिन्दू इस देश के निवासी और मुसलमान इस देश के विजेता विदेशी थे। अत समस्त जाति ने मिलकर वा अकेले राष्ट्र के उत्थान के लिए यदि युद्ध किये तो वह जातीय भावना होते हुए भी राष्ट्रीय रूप मे ग्रहण किया जाना चाहिये। अत भूषण की कविताए जातीयता की सकीर्ण गली को लाघ कर राष्ट्रीयता के राजपथ पर आरूढ हो जाती है क्योकि भूषण की कविता के नायक एक प्रकार से न शिवाजी है न छत्रसाल, न राव बुध है न अवधूत सिह है, न शर्मा जी न साह जी, इनके सच्चे नायक है हिन्दू। हिन्दुमय होती हुई भी इनकी कविताए पूर्णत राष्ट्रीय है क्योकि हिन्दू ही इस देश के निवासी, इस देश की जनता तथा इस देश के शासक रहे थे। अत इस राष्ट्र की भूमि, जन और सस्कृति के गीत राष्ट्रीय भावना के ही पोषक है और इनके गीत गाने वाले कवि राष्ट्रीय कवि है जातीय नही।

परिवर्तन और प्रगति जीवन और साहित्य के मुख्य अङ्ग है। राष्ट्रीयता नवीन पथ पर अग्रसर हुई। भूषण के पश्चात् सौ सवा सौ वर्षो तक वीर-साहित्य की परम्परा अन्धकारमय हो जाती है पर एक महान् देश की आत्मा को चिरकाल तक कुचलना सम्भव नही। जनता की सुषुप्त भावना जगी और १८५७ के विप्लव का

सूत्रपात होता है। इस भावना के उद्दीप्त होने मे पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क ने अग्नि प्रोज्वलन मे घी का-सा काम किया है। जब भारत निवासियो ने ब्रिटिश जनता को भौतिक उन्नति की चरमावस्था को देखा तथा साथ ही अपनी दीन, हीन, निर्धन, असहाय दशा को देखा तो वे भी स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने लगे। परतन्त्रता *के विषैले* वायु-मण्डल मे स्वतन्त्रता की स्वच्छ सास के लिए वे व्याकुल हो उठे क्योकि उनके सामने अगरेजो के स्वतन्त्र वातावरण का ज्ञान पूर्णत सामने आता जा रहा था। फलस्वरूप होता है विप्लव और इस विप्लव मे अभिव्यजित है हमारी नवीन राष्ट्रीय भावनाए। यद्यपि यह चेष्टा विफल हो गई परन्तु उनकी आशा-लता मुरझाई नही, दिन अनुदिन साहस और बल का सचार होता गया। भौतिक और काल्पनिक अन्तर्द्वन्द्रो ने राजनैतिक क्षेत्र मे प्रतिक्रिया को जन्म दिया। एक राष्ट्र की भावना जो प्रागैतिहासिक युग मे थी उसको चरितार्थ करने की चेष्टा की जाने लगी। ऐसे अवसर पर क्रान्ति उपस्थित होती है। भारत का सोया हुआ सिंह जाग पडता है और उसकी गर्जना साहित्य मे व्याप्त हो जाती है और चारो तरफ क्रान्ति के गीत सुनाई पडते है। इन गीतो मे वीर-भावना अखिल भारतीय भावनाओ से परिपूर्ण है और *इसके उन्नायक है* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

भारतेन्दु काल की वीर-भावना अखिल भारत को लेकर चली थी। वे 'युग पुरुष' थे और इनकी कविताओ मे वीर-भावना उल्लसित हुई है। नवीन युग की आशा आकाक्षाओ को इन्होने वाणी दी और भारतीय आत्मा का विद्रोह मुखरित किया। युगो की भीषण सुषुप्ति के बाद भारत एक स्वर मे बोल उठा—

आवहु ! सब मिलि रोवहु भारत-भाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेन्दु की पुकार मे भारतीय आत्मा *का करुण* क्रन्दन स्पष्ट है। उन्होने अपने नाटको द्वारा भारत की वीरता को जगाने का प्रयत्न किया है। नील देवी और अधेर नगरी इसके प्रमाण है। जोश और खरोश वाली वीरता जो पानी मे आग दे, मुर्दे दिलो मे नया जीवन फूक दे तथा यौवन मे अल्हड भीषण तूफान भर दे ऐसी वीरता यदि देखनी हो तो 'विजयिनी वीर वैजयन्ती' आदि पुस्तको को देखिए। इनके काव्य नाटक दोनो मे ही देश-प्रेम की झलक है जिसमे अतीत का वैभव वर्तमान के पतन पर मरणासन्न है। भारतेन्दु ने क्राति की सयत भावना को जनता के सामने रखा और रचनात्मक क्रान्ति का स्वप्न देखते रहे परन्तु कुछेक कवि पीछे चल कर विध्वसात्मक क्रान्ति की कामना करने लगे है। क्रान्ति का उग्र रूप जिसमे आत्म-बलिदान की सच्ची प्रेरणा हो, विध्वस और महानाश का ताण्डव अट्टहास हो ऐसी क्रान्ति भारतेन्दु की नही थी। राज्य और राष्ट्र की मगल कामना ही क्रान्ति का ध्येय

था। अत वीर-भावना के तृतीय उत्थान काल मे मुख्यत इसी कोटि के कवि दीख पडते है। एक वे है जो सयम समन्वय एव सौजन्य से क्रान्ति करना चाहते है दूसरे है वे जो शिव के तीसरे नेत्र के समान उग्र रूप धारण कर परतन्त्रता की दुखदाई बेडी तथा तज्जन्य कलुषता को तत्क्षण भस्मीभूत कर देना चाहते है। इस युग की वीर-भावना मे समग्र भारत को सुरक्षा की चिन्ता-व्यथा व्यजित है।

आधुनिक युग सक्रमण-सक्रान्ति, प्रलय-महानाश एव सर्वाङ्गीण पुनर्जागरण का युग है। यह युग युग-देवता गाधी के असहयोग आन्दोलन से प्रारम्भ होता है। व्यक्ति की शिराओ मे एक नवीन लहर आई है मिटने की, बलिदान होकर शहीद बन जाने की। इस वीर-भावना मे तथा परम्परागत वीर-भावना मे अन्तर है। प्रथम आन्तरिक वीरता का स्थायी रूप है दूसरा वीरता का क्षणिक भाव है। आज की वीर-भावना विध्वस को लेकर नही चलती, न आज शत्रु को पददलित पराजित अपमानित करने मे हम वीर-धर्म की महत्ता मानते है। आज तो हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और विश्व बन्धुत्व की भावना से प्रेरित हो मोर्चा लेते है। युद्ध की घोषणा शत्रु के व्यक्तित्व के विरुद्ध नही होती उसकी कुटिल नीनि के विरुद्ध होती है। यह वीर भावना आदर्श और दर्शन का बल लेकर चली है। यह वीरता का श्रेष्ठ उच्छ्वास है जिसमे हिंसा के बदले आत्म-बलिदान, विध्वस के बदले नव-निर्माण और द्वेष तथा कटुता के बदले प्रेम की भावना का ही प्राधान्य है। इसी सयत क्रान्ति का परिचालन वर्तमान युग मे महात्मा गाधी ने किया है और काव्य मे वही ध्वनि एक तरफ गुप्त जी के काव्य मे सुनाई पडती है। 'हम कौन थे क्या हो गये है और क्या होगे अभी' और दूसरी तरफ हरिऔध की राधा देश सेविका के रूप मे आकर राष्ट्र एव विश्व को व्यक्ति से समष्टि को महत्व देकर क्रान्ति की अहिंसात्मक और सयत भावना पुष्ट करती है। एक तरफ चिर-उपेक्षिता उर्मिला एव यशोधरा को देश-बलिदान की वेदी पर आत्मोत्सर्ग करते हुए पाते है दूसरी तरफ 'लाल चूनर' मे अग्नि विध्वसात्मक कणो को सर्वमुख ज्वाला मे जलते देखना चाहते है। गुप्त जी ने गाधी युग की समन्वयशीलता को अपनाया है और इनके रचित काव्य मे आत्म-सम्मान के जागृत होने के लक्षण तथा जीवन की सच्ची समस्याओ और सेना की भावना सर्वतोभावेन स्पष्ट है। गुप्त जी विगत गौरव का अलख जगा कर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त कर अतीत और वर्तमान की खाई को पार कर एक सुन्दर भविष्य की कल्पना करते है। लुटे हुए वैभव को अर्जित करने की जितनी चाह गुप्तजी मे है वह प्रशसनीय है। गुप्त जी की 'भारत-भारती' 'स्वदेश-सगीत' आदि रचनाओ मे हम सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एव आर्थिक सभी क्षेत्रो मे क्रान्ति का अनुभव कर पाते है। इनकी क्रान्ति भावना दाहक होते हुए भी चन्द्र की शीतलता से युक्त है। उनके सामने स्वर्णिम सौध निर्माण की समस्या है और

उसका साधन है सयत क्रान्ति । तुलसी ने शैवो और वैष्णवो के टूटे दिल मिलाये थे। गुप्त जी नवयुग के तुलसी है जो राष्ट्रीयता के विशेष तारो को जोड रहे है। तात्पर्य कि गाधी युग की वीर भावना मे आत्मोत्सर्ग, दरिद्रता और अभाव को वाणी मिली है। श्री सोहनलाल द्विवेदी ने अहिसात्मक क्रान्ति को 'युगावतार गाधी' 'खादी गीत', 'गावो मे राष्ट्रीय निशान' आदि मे मुखरित किया है।

है जिनके पास एक धोती, है वही दरी उनकी चादर।
जिससे वे लाज लपेट सदा निकला करती घर से बाहर ॥
पुर बधुओ का क्या हो शृङ्गार जो बिका रईसो रावो मे ।
है अपना हिन्दुस्तान कहा, वह बसा हमारे गावो मे ॥

ससार की यर्थाथता और अपनी परवशता मे इस असहयोग क्रान्ति ने क्रान्ति का एक भिन्न स्वरूप सामने रखा है। इसी पथ पर बढते हुये हम सफलता के सोपान पर चढे है और स्वतन्त्रता प्राप्त की है। ये गौरव-गीत है। लाला भगवान दीन का 'वीर पचरत्न', वियोगी हरि की 'वीर सतसई', श्याम नारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी', अनूप का 'पानीपत', तथा भट्ट जी की 'तक्षशिला', दिनकर का 'हाहाकार' आदि।

प्राचीन रूढियो और विश्वासो को छिन्न-भिन्न करने वाले कुछ तरुण कवि अपनी विध्वस रागिनी लेकर दीपक राग गा सके है। फलत चारो तरफ ज्वाला और अग्नि है। यद्यपि आज का युग प्रेमवाद, हालावाद और नग्नवाद को पीछे छोड प्रयोगवाद द्वारा विकसित हो रहा है। पत ने 'नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन' कह कर प्राचीनता की चिता मे नव-निर्माण के अणु देखे है वहा निराला 'जागो फिर एक बार' मे हमारी राष्ट्रीय चेतना को वाणी दे रहे है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बाद भी अनेक असमताओ को दूर करने के लिये निराला की वाणी 'जागो फिर एक बार' प्रात्साहन और प्रेरणा दे रही है।

जागो फिर एक बार!
समर मे अमर कर प्राण,
गान गाये महा सिन्धु से
सिन्धु-नद-नीर-वासी-
सैन्धव तुरगो पर
चतुरङ्ग चमू सङ्ग,
सवा सवा लाख पर
एक को चढाऊ गा,
गोविन्द सिंह निज नाम
जब कहाऊ गा।

राष्ट्रोत्थान के लिये निराला की ये पक्तिया क्रान्ति के उग्र स्वरूप की प्रतिबिम्व है। प्राचीनता की चिता भस्म से ही नवीन राष्ट्र के पुननिर्माण का स्वप्न देखने वाले कवि अनेक है। देखिए प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का विप्लव-गायन।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर मे आए, एक हिलोर उधर से आए।
विश्वभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाए।
नाश !! नाश !! हा, महानाश !!! की प्रलयकारी आखे खुलजाए ।।

मृत्यु-गीत से अपना कठ मिलाने वाला यह कवि गुलामी का नायक रूप देख अधीर हो उठा है। वह प्रतिपल क्षुब्ध हो महानाश का स्वप्न देखता है तभी तो कविता चिनगारिया बरसाती है और ब्रह्माण्ड का जीवन झुलस झुलस कर नाश-विलास की ओर अग्रसर है। देखिए नवीन की 'धूमकेतु' मे —

मा मेरी ध्वमक वीणा मे
यौवन का उद्धतपन भर दे।
स्वर के एक एक कम्पन मे
महानाश का नर्तन करदे ।।
जिसकी तीक्ष्ण तान को सुनकर
काप उठे गिरि-गह्वर सारे।
थर्रा दे दिगन्त को जिसकी
तारो के उन्मत्त इशारे ।।

वास्तव मे "नवीन तरुणाई के कवि है। यौवन के चित्रकार है। पवन की भीषण ज्वाला मे मुस्काने वाले, बाधाओ को चीर कर राष्ट्र-पथ पर बढते जाने वाले और प्रबल प्रलोभन मे भी अविचल धैर्य दिखलाने वाले, निर्विकार तप्त स्वर्ण से शक्ति-पुत्र के प्रतीक उसके काव्य मे भरे पडे है (वीर- काव्य सग्रह–हिन्दी साहित्य सम्मेलन भूमिका पृष्ठ ८६)।]"

इन कवियो के अन्दर शक्ति का dynamite है जो राष्ट्रीय चेतना को सजीव और शक्तिशाली बनाता है। हमारे इतिहास और गौरव की दीप्ति दृभासित होती है ओजपूर्णयुक्त पुरुषार्थ से। रुदन-क्रन्दन के बाद आह्वान सुन्दर मालूम होता है। देखिए 'हुकार' मे दिनकर लिखते है —

चाहती हो बुझना यदि आज, होम की शिखा बिना सामान।
अभय हो कूद पडे जय बोल, पूर्ण कर लू अपना बलिदान ।।

वीरता आत्मा की निधि बन गई है। यहा पर दोनो एकाकार है और कवि की अन्त प्रेरणा साफ लक्षित है। 'हिमालय' 'नई दिल्ली' 'विपथगा' आदि कविताओ मे वीर-गीत युग-धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं और हमारी भावना सारे राष्ट्र को आत्मसात कर प्रगतिशील है।

उठ भूषण की भावरङ्गिनी, रूसो के दिल की चिनगारी।
लेनिन के जीवन की ज्वाला, जाग जाग रे क्रान्ति कुमारी॥
लाखो क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि-कवि की कल्याणी।
फूट फूट तू कवि कठो से, बन व्यापक तू युग की वाणी॥

'युग की वाणी' को व्यापक करना कवि अपना धर्म-ध्येय समझता है। तभी 'विपथगा' अपने आत्म परिचय मे कहती है —

अगडाई मे भूचाल सास मे लका के उनचास पवन।
मेरे मस्तक के छत्र मुकुट, वसु काल सर्पिणी के सत फन॥
मुझ चिर-कुमारिका के ललाट पर नित्य-नवीन रुधिर चन्दन।
आजा करती हू चिता-धूम का जग मे अध तिमिर अञ्जन॥

सचमुच मे इन गीतो मे 'पौरुष का पु जीभूत ज्वाल' जग पड़ा है, भविष्य के स्वर्ण-विहान का स्वप्न द्रष्टा कवि के समान आका है और हमारी उग्रतम राष्ट्रीय भावनाओ का प्रतिनिधित्व किया है। 'सुनु क्या सिन्धु! मैं गर्जन तुम्हारा, स्वय युग धर्म का हुकार हू मैं' कहते हुए कवि ने शहीद होने के लिए ललकारा है। कभी युवको को उलाहना, कभी चेतावनी, और चुनौती, कभी सेवा का मूल मत्र देता हुआ राष्ट्र के निर्माण की योजना-गीत वह सुनाता है। *एक तरफ 'फूलों का मधुपान'* है तो दूसरी तरफ 'अनल किरीट भालपर' लेने का आकर्षण। कवि सचमुच मे उत्साह, साहस, जीवन, जागृति फूकने मे समर्थ हुआ है। देखिये 'हुकार' मे —

धर कर चरण विजित श्रृङ्गो पर, झडा वही उडाते है।
अपनी ही उगली पर जो, खजर की जग छुडाते है॥

कवि जन्म-मरण के बीच विश्राम करना नही चाहता। वह तो सदा जीवन-ज्वाला ने जलता हुआ आगे बढना चाहता है चाहे प्राण रहे या जाए परवाह नही। क्रान्ति के ऐसे पुजारियो ने ही वीर-काव्य की प्रगति मे चार चाद लगाये है।

मीरा और महादेवी की कोमल भावना और कल्पना ने 'प्रेम की प्रीत' को ही जगाया है पर हिन्दी काव्य म एक ऐसी कवयित्री है जिन्होने वीर-गीत रचकर साहित्य

में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। हिन्दी मे 'झासी वाली रानी' सबसे श्रेष्ठ वीर-गीत है।

सिहासन हिल उठे राजवशो ने भ्रकुटि तानी थी।
बूढे भारत मे फिर से आई नई जवानी थी।
बुन्देलो हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लडी मरदानी वो तो झासी वाली रानी थी।

'जालिया वाला बाग मे बसन्त' मे 'बसन्त' को कवयित्री मर्म को स्पर्श करने वाले मधुव्रती रूप मे नही देखती बल्कि 'खून से सना' देखती है। भाई के जेल जाने पर बहन का राखी बन्धन आदि कविताओ मे हमारे देश का जागृत नारीत्व राजनैतिक बन्धनों के विरुद्ध विप्लव कर उठा है।

राजनैतिक परतन्त्रता और क्रान्ति के गीत आपस मे टकराए परन्तु फिर भी लौह-श्रृङ्खला न टूटी। 'नरेन्द्र' को कहना पडा—आओ हथकडिया तडका दू, जागो—रे नतशिर बन्दी। कडिया शिथिल भी नही हो सकी तो हमारे कवियो मे निराशा के भाव भी फूटने लगे। माखनलाल चतुर्वेदी, 'भारतीय आत्मा' भगवती प्रसाद बाजपेयी तथा रामेश्वर शुक्ल 'अचल' मे एक शहीद का आत्मोत्सर्ग तो है पर मौन उत्सर्ग। चतुर्वेदी जी की 'पुष्प की अभिलाषा' देखिए —

चाह नही मै सुरबाला के गहनो मे गूथा जाऊ।
चाह नही प्रेमी माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊ॥
मुझे तोड लेना वनमाली उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृ भूमि पर सीस चढाने जिस पथ जाए वीर अनेक॥

पक्तियो मे आत्म-बलिदान की ज्वाला है, मर मिटने की चाह है। बाजपेयी जी अधनगे, भूखे, चीथडो मे लिपटे असहाय दीन को देखते है तो विद्रोह की आग जल जाती है और वे जग रे! जीवन के राग जाग, प्राणो की धूमिल आग जाग। कह कर अग्नि जलाना चाहते है। 'शोषिता' का स्वरूप 'अचल' ने जो चित्रित किया है, देखिए —

इसकी भी आयी थी आमो सी बौराती प्रखर जवानी।
किन्तु गई चुपचाप छोड जमीदारो के भय की एक कहानी॥
उन जुल्मो की याद न पूछो जल उठता प्रतिनेत्र सिहर कर।
दिल में किसका दीप जलाये मौन खडी है यह पनघट पर॥

चारो नरफ एक निराशा की वेदना साकार हो रही है परन्तु दुख को मिटाने की अभिलाषा भी साथ है। पत भी कहते दिखाई पडते है —

विश्व वाणी ही है क्रन्दन,
विश्व का काव्य अश्रु कण।

वही चीज वर्मा जी की 'भैसागाडी' मे है जहा कवि वीरता पूर्वक आज की भीषण परिस्थिति को साफ साफ कह देता है —

चादी के टुकडो को लेने, प्रतिदिन पिट कर भूखो मर कर।
भैसा गाडी पर लदा हुआ जा रहा चला मानव जर्जर ॥

तथा रामकुमार *वर्मा एक आह* भरी सिसक लेते है और महादेवी भी 'एक करुण अभाव मे चिर तृप्ति का सचार सचित' कह कर वेदना की व्यापक अनुभूति देती है। इस वैराग्यमय भावना की प्रतिक्रिया उच्छृङ्खल रूप मे हुई है मधुबाला, मधुशाला, मधुप्याला मे किन्तु उग्रतावादी कवियो ने कभी दम नही लिया, सदा ललकारते रहे और जीवन की आग सुलगाते रहे। आज चीन की जन-क्रान्ति और रूस की लाल क्रान्ति शोले भडका रही है।

अध्याय ३

हिन्दी-काव्य में सूफी संत और उनकी विशेषताएँ

सूफी-मत का प्रारम्भ आठवी शती मे फारस मे मुसलिम मत की एक छोटी शाखा के रूप मे हुआ। इस मत का प्रचार अरब मे लगभग नवी शती मे हुआ। इस मत के मानने वाले सादा जीवन व्यतीत करते थे और ऊनी या रेशमी झूले पहनते थे। सूफी शब्द व्युत्पन्न है फारसी 'सूफ' से जिसका अर्थ होता है ऊनी कम्बल या सफेद रेशम। अपनी इसी विशेषता के कारण ऐसे सादे वस्त्र या झूले पहनने वाले सत सूफी कहलाए। इस मत के उद्भव के सबध मे चार विचार धाराएँ है—

(१) सूफी मत का उद्भव इस्लाम धर्म की सकीर्णता के कारण कुछ उदारवादी मुसलमान सतो द्वारा हुआ। ऐसे व्यापकतावादी मुख्य सूफी सन्तो मे नूरुद्दीन, अब्दुलरह्मान और जमीर आदि के नाम लिये जाते है।

(२) कुछ लोगो की धारणा है कि सूफी मत सेमिटिक धर्म (इस्लाम) के विरुद्ध आर्य-धर्म की प्रतिक्रिया है। कारण कि ईसा की पहली, दूसरी और तीसरी शताब्दी मे विद्वानो का आना-जाना हुआ। भारत और फारस मे व्यवसाय भी हुए। अत यह नितान्त असभव नही कि भारत के आध्यात्मिक सिद्धान्त फारस मे पहुँच जनता को प्रभावित कर सके।

(३) सूफी मत के उद्भव के सबध मे यह भी कहा जाता है कि ईसा की आठवी और नवी शताब्दी मे एक नया धर्म उत्पन्न हुआ जिसका नाम था नव-प्रतनुवाद (Neo-Platonism)। प्लेटो ने एक धर्म प्रतनुवाद (Platonism) की स्थापना की थी उससे धर्म का नया स्वरूप निकला नव-प्रतनुवाद (Neo-Platonism) जिसमे मुख्यतः ब्रह्मवाद (Pantheism) का सिद्धान्त है। सर्वात्मवाद या ब्रह्मवाद उपनिषदो की देन है और सूफी मत पर इसी धर्म का व्यापक प्रभाव है।

(४) सूफी मत की उत्पत्ति स्वतन्त्र धर्म के रूप मे हुई।

इस मत के उद्भव की कहानी चाहे विवाद ग्रस्त हो परन्तु यह निर्विवाद है कि इस मत पर उपनिषदो के ब्रह्मवाद, बौद्ध धर्म और ईरान के 'जोरस्थु' धर्म का प्रभाव अवश्य पडा था। वास्तव में यह मत एक समन्वयवादी मत था। उस समय देवदासियो की बहुत प्रचलित प्रथा थी। देवदासियो का काम मस्जिद मे फकीरो की सेवा टहल करना था और कही कही देवदास भी होते थे। पीछे चल कर देवदासियो का फकीरो के साथ अनुचित सबध होने लगा तथा देवालय अपवित्र होने लगे। फकीर देवदासियो के प्रेम मे विह्वल हो कविताए करते थे। यही कारण है कि सूफी मत मे प्रेम-तत्व का का सन्निवेश हुआ। धर्म की ओर मे प्रेम के गीत गाये जाने लगे। देवदासिया बनी भगवान् की प्रतीक और फकीर बने भगवान् के प्रेमी।

सूफी मत का सिद्धान्त यह है कि कल्ब (हृदय), रूह (आत्मा), नफ्स (इन्द्रियो और वासनाओ) पर रोब गालिब करना। यह सूफियो के व्यवहारिक जीवन की मुख्य साधना थी। इनके अनुसार जगत् चार है—

१	आलमे नासूत	=	भौतिक
२.	आलमे मल्कूत	=	चित्-जगत्
३	आलमे जबूरत	=	आनन्द-जगत् या लोक
४	आलमे लाहूत	=	ब्रह्मलोक

जीव क्रमश तीन जगतो को पार करता हुआ आलमे लाहूत मे पहुँचता है और जीव और जगत्, जीव और ब्रह्म की भिन्नता मिट जाती है और वे अभिन्न हो जाते है चिर-ज्योतिमय। जीव और ब्रह्म की इस अद्वैतता के लिए 'परा भक्ति' ही साधन है। उसके क्रमिक सोपान ये है।

(१) सेवा और कर्म (ईश्वर पर विश्वास)
(२) प्रेम (आत्मा का आकर्षण)
(३) ज्ञान
(४) भावावेश या समाधि (ईश्वरीय रहस्य का प्रत्यक्षीकरण और आनन्दावेग)

तात्पर्य कि सूफी मत के अनुसार व्यष्टि पार्थिव सौन्दर्य की अनुभूति द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त कर तुरीयावस्था को पहुँच सकता है।

पन्द्रहवी शताब्दी के उतरार्द्ध और सतरहवी शताब्दी के अन्त तक हिन्दी काव्य क्षेत्र में सगुण और निर्गुण धारा चलती दिखलाई पड़ती है। यह निर्गुण धारा दो

उपधाराओं मे विभक्त हुई जिसके पहले रूप का नाम ज्ञानाश्रयी शाखा पडा और दूसरे रूप रूप का नाम शुद्ध प्रेम-मार्गी शाखा (सूफियो की)। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियो ने 'एक ओर तो स्वामी रामानन्द के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ बाते ग्रहण की और दूसरी ओर योगियो और सूफी फकीरो के सस्कार प्राप्त किये। वैष्णवो से उन्होने अहिसावाद और प्रप्रत्तिवाद लिया''[१] इस शाखा मे न तो कोई नई बात थी, न कोई नया आकर्षण था। फलत शिक्षित जनता पर इसका प्रभाव न पडा किन्तु निम्न श्रेणी की जनता पर इन सतो का प्रभाव ही नही पडा बल्कि उनका उपकार भी हुआ। इस शाखा के सतो ने न केवल ब्रह्म-सबधी उच्च दार्शनिक बाते बतलाई बल्कि आचरण की शुद्धता, आडम्बरो का तिरस्कार तथा आत्मगौरव की भावना भर कर समाज को उठाने का प्रयास भी किया। दूसरी तरफ प्रेमाश्रयी शाखा के कवियो ने कल्पित कहानियो के द्वारा प्रेम-मार्ग का महत्व प्रदर्शित करतेहुए लौकिक प्रेम का आभास देकर अलौकिक प्रेम की व्यजना कर प्रेम-तत्व की पुष्टि की है। इस मत परभारत के वैष्णव धर्म की छाप स्पष्ट है। इसका परिणाम यह हुआ कि सूफी मत का ईश्वर सैद्धान्तिक रूप से निराकार और निर्गुण होते हुए भी अनन्त प्रेम का भाण्डार बन गया। राधाकृष्ण के प्रेम की छाप सूफी मत की रचनाओ पर अवश्य लक्षित होता है।

हिन्दी के सूफी सन्तो ने ही हिन्दी मे प्रेम आख्यायिकाओ का प्रादुर्भाव किया। इन लोगो ने अपने प्रेम-मार्ग और उसके सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिये हिन्दू जीवन की कल्पित कहानिया ली और 'प्रेम की पीर' की व्यजना की। इनका लौकिक प्रेम ईश्वर से मिलाने वाला होता है। इन प्रेम-आख्यायिकाओ का विषय तो वही है जो अचल चित्रो मे देखा जाता है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति भिन्न ढग से होती है। इन प्रेम कहानियो मे कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के प्रेम जाल मे आबद्ध हो, अलौकिक सौन्दर्य पर रीझ कर घर-द्वार, धन-धाम, स्त्री-पुत्र छोड कर वैरागी बन राजकुमारी को प्राप्त करने निकल पडता है और अनेक विघ्न वाधाओ को चीरता, विपत्तियो को झेलता प्राण त्यागने को उद्धत हो जाता है। इस त्याग के फल स्वरूप उसे राजकुमारी प्राप्त होती है और इस प्रकार सूफी विचार मे आत्मा और परमात्मा का आलमेलाहूत में तादात्म्य हो जाता है। प्रेम का विश्वव्यापक स्वरूप अलौकिकत्व की घोषणा करता है।

इन सूफी कवियो ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दू घरो मे प्रचलित कहानियाँ अपना कर, हिन्दू-कथाओ मे सूफी सिद्धान्तो का पुट देकर हिन्दू मुसलिम हृदय के समन्वय की चेष्टा करते हुए अपने अलौकिक प्रेम की व्यजना की है। शुक्ल जी ने लिखा है। इन साधक कवियो ने लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेम-तत्व' का आभास

[१] रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी सा० का इतिहास—पृष्ठ ८५।

दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है ।······सूफी कवियो ने जो कहानिया ली है वे सब हिन्दुओ के घर मे बहुत दिनो से चली आती हुई कहानिया है जिनमे आवश्यकतानुसार उन्होने कुछ हेर फेर किया है । कहानियो का मार्मिक आधार हिन्दू है ।

हिन्दी साहित्य मे प्रेम-काव्य का सूत्र पात यो तो चारण काल मे ही हुआ था और उसका प्रमाण यह है कि अलाउद्दीन खिलजी (स० १३७५) के राजत्वकाल मे मुल्ला दाऊद ने नूरक और चन्दा की कहानी लिखी तथा सिकन्दर शाह के समय मे ईश्वरदास ने सत्यवती कथा नाम की एक कहानी दोहो चौपाइयो मे लिखी परन्तु प्रेम-काव्य लिखने मे सबसे ज्यादा सफलता मिली जायस नगर के कविवर जायसी को। जायसी का पद्मावत प्रेम-काव्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना है ।

हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि इन सूफी सतो द्वारा खूब हुई । इस शाखा के कई कवि हुए और उनकी निम्नलिखित रचनाएँ कही जाती है ।

(१) कुतबन — मृगावती
(२) मझन — मधुमालती
(३) जायसी — पद्मावत, (अखरावट, आखिरी कलाम)
(४) उसमान — चित्रावली
(५) शेख नबी — ज्ञानदीप
(६) कासिमशाह — हस जवाहिर
(७) नूरमुहम्मद — इन्द्रावती (अनुराग बाँसुरी आदि)
(८) सूरदास — नल-दमयती कथा

इन प्रेमाख्यान काव्यो मे पदमावत और सतो मे जायसी का नाम सर्व-प्रसिद्ध है। जायसी की कविताओ मे सूफी मत की सारी विशेषताए दीख पडेगी । कदाचित् इसी कारण शुक्ल जी[1] ने लिखा है जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है, 'पद्मावत', जिसके पढने से प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था । क्या लोक-पक्ष मे, क्या अध्यात्म-पक्ष मे, दोनो ओर उनकी गूढता, गभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है ।

सूफी मत का सैद्धान्तिक पक्ष जायसी के महाकाव्य पदमावत मे स्पष्टत अकित है । जायसी के आध्यात्मिक विचारो को ५ वर्गो मे विभाजित कर सकते है ।

(१) खुदा सबधी विचार ।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ—१२३ ।

(२) जीव सवधी विचार।
(३) जगत् सबधी विचार।
(४) जीवन के लक्ष्य सवधी विचार।
(५) लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले साधनो का विचार।

१ जायसी का विश्वास था कि ईश्वर एक है और भेद रूप से वह सर्व व्याप्त है। पदमावत के आरम्भ में वह एक ही ईश्वर की आराधना करते दीखते हैं "सुमिरौ आदि एक करतारू" और एक ही राजा का वर्णन करते है "आदि एक बरनौ सोई राजा"। इस तरह का विश्वास सर्वत्र अभिव्यक्त हुआ है पदमावत मे "एक अकेल न दूसर जाती"[१] समार रूपी समुद्र मे वे एक ही जल व्याप्त देखते है 'रहा एक जल गुपुत समुन्दा'। फारमी वर्णमाला के 'अलिफ' से भी वे सिद्ध करना चाहते है कि ईश्वर एक हे।

जायसी का ईश्वर अद्वैतवाद की सीमा मे आवद्ध है या एकेश्वरवाद की, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता। कभी तो वह भारतीय अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते है, "सोह सोह सासै लेई" और कभी एकेश्वरवाद की ओर। वास्तव मे धर्म के दोनो रूपो से वे प्रभाविन है।

"आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखनहार।
आपुहि लिखनी आखर आपुहि पडित अपार॥

जायसी का ईश्वर घट घट वासी, सर्व शक्तिमान, सर्व नियन्ता और निर्गुण है। उसे पहचानना सरल नही। वह स्वयम्भू हे जरा, जन्म और मृत्यु से परे। वह ह 'अलख अरूप अवरन सो कर्ता'। ऐसे परमात्मा तक पहुंचना साधारण साधक और शक्ति के परे है। अत परमात्मा तक पहुँचने के लिये, लक्ष्य-प्राप्ति के लिये एक गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक है 'बिन गुरू को निर्गुण पावा'।

२ जीव ईश्वराश है, ब्रह्म का प्रतिरूप और एक ही ब्रह्म अखिल सृष्टि मे अनेक रूपो मे प्रकट हुआ है। जायसी ने पदमावत मे कहा है—

बुदहि समुद समान, यह अजरज कासो कहौ।
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु मह॥

३ जायसी का विचार हे कि यह व्यक्त जगत् 'जेई सब खेल रचा दुनियाई' खेल के लिये रचा किन्तु यह ससार पानी के बुलबुले के समान क्षणभङ्गुर है, यह

१ मलिक मुहम्मद जायसी।

संसार झूठ थिर नाही'। जैसे यह ससार नश्वर है वैसे ही यह शरीर, सूरज, चांद सितारे। सातो द्वीप और नव खंड सभी इसी काया मे है। भगवान् की एक २ रचना एक सम्पूर्ण सृष्टि है।

४ सूफी मत का लक्ष्य पदमावत मे देखिये। जायसी स्पष्ट शब्दो में अपने जीवन का लक्ष्य बतला रहे है।

सातवे सोम कपार मह, कहा सो दसवे दुवार।
जो वह पॅवरि उघारै सो बड सिद्ध अपार॥

ब्रह्म से जीव उत्पन्न हुआ। एक से दो हुए अब फिर मिल कर एक हो जाना चाहते है। यही तो जीवन का परम लक्ष्य है।

५ इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जायसी ने प्रेम-पथ को अपनाया है जिसमें अनुभूति की तीव्रता, लौकिक प्रेम की महत्ता का गुणगान है। प्रेम पथ मे प्रेम ही मानव का दीपक बनता है, गुरू का सदुपदेश मत्र का काम करता है अवश्य परन्तु भावुकता और भावनात्मकता से ही ईश्वर का तादात्म्य सभव है। हठयोग और इसलाम द्वारा भी कैवल्य प्राप्त किया जा सकता है परन्तु उस साधन को जायसी नें पूरा महत्व नही दिया। मालूम पडता है कि हठयोग से वे ऊपरी तरह से परिचित है अन्तरङ्ग नही। केवल किंगरी, भस्म, मेखला, सिंधी, चक्र आदि के नाम ही गिनाये है।

सूफी मत के सिद्धान्तो की सारिणी जायसी के पदमावत से तैयार की जा सकती है। कदाचित् इससे यह धारणा बनती है कि पदमावत एक आध्यात्मिक ग्रथ है जिसमें दर्शन की गभीरता और शुष्कता है। परन्तु वास्तव मे बात वैसी नही है। यदि आप केवल उसे लौकिक दृष्टि से ही पढे तो आप को रसोपलब्धि अवश्य होगी। काव्य-कला की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अनूठा है। प्रबन्ध काव्य का यह एक सुन्दर उदाहरण है। रामचरित मानस के बाद यदि किसी प्रबन्ध काव्य की गणना हो सकतो है तो तो वह पदमावत ही है। पदमावत अपने काल का सर्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ रहा है और सर्वोत्तम कृति। इस काव्य मे कविता का गाम्भीर्य भी मिलेगा, लौकिक जीवन की सरसता भी। आप इसी सरस लौकिक धरातल से अचानक ही अलौकिक धरातल पर पहुँच जायेंगे। कविता का महत्व भी तो इसी मे है कि वह मानव को साधारण स्तर से ऊपर उठा कर विचार के ऊंचे धरातल पर पहुँचा दे। इस दृष्टि-बिन्दु से 'पदमावत' वास्तव मे अनूठी रचना है। हिन्दू धर्म के आदर्शों के सूत मे सूफी सिद्धान्तो की माला गूथ कर एक नवीन ज्योति फैलाने की सहृदय कवियो ने चेष्टा की, जो स्तुत्य है। ठीक ही किसी ने लिखा है हिन्दू और मुसलमान सस्कृतियो का प्रेम पूर्ण सम्मिलन ही प्रेम-काव्य की अभिव्यक्ति है।

अध्याय ४

हिन्दी काव्य के निगुर्णियां सन्त और उनका दर्शन

वीर गाथा काल के वीर गीत और हिन्दू नरेशो के फुटकर प्रयत्न मुसलिम आक्रमणकारियो की तलवार की धार न मोड सके। मुसलिम शासन सत्ता भारत मे प्रतिष्ठित होकर ही रही। आपस मे लडने वाले स्वतन्त्र हिन्दू नरेशो ने भी मर्यादा न रखी और एक-एक कर मुसलिम शासको को घुटने टेकते गये। फल स्वरूप हिन्दू जनता और भारतवासियो पर अत्याचार की बिजली कडकी ही नही टूट पडी। देवालय मिट्टी चूमने लगे, जेनेऊ खून मे सीचे जाने लगे और धर्म-प्राण भारत की गौ माता आहार की सामग्री बनी। निरीह भारतीय जनता इन दर्दनाक दृश्यो को अपनी नगी आखो से देखती रही कारण भुजाओ मे बल तो था किन्तु एकता का अस्त्र न था, तन मे शक्ति तो थी किन्तु मन मे ओज न था। ससार के कृत्यो और जीवन के उदासपूर्ण तथ्यो ने भारतीय जनता के हृदय मे वैराग्य के भाव उत्पन्न किये। अपने पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?[1]

राजनीतिक परिस्थिति की विषमताओ और उलटफेर ने जीवन के सभी अङ्ग और उपाङ्गो को अस्त-व्यस्त कर डाला था। जीवन ही जब सकट ग्रस्त हो, तो सामाजिक और धार्मिक परम्पराओ की रक्षा का प्रश्न ही सामने नही होता है। काल की प्रगति के साथ युग-परिवर्तन हुए और जाने अनजाने इस उलटफेर मे भारत की धार्मिक और सामाजिक चेतना मे अनेक ऐसे विचार घुस आये जिनकी कभी पूछ नही थी। भक्ति-युग के पूर्ववर्ती काल मे धार्मिक विशृङ्खलता का आभास मिलता है। उसी समय से भारत मे बज्रयानी सिद्ध, कापालिक, नाथपथी योगी तथा धर्माचरण विहीन सन्यासियो का प्राबल्य था। मन्त्र, तन्त्र घट के भीतर षट-चक्र, सहस्रदल

१ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास।

कमल, इडा-पिंगला-सुषुम्ना नाडियो की रहस्यमयी बाते बता भारत के धर्मचेती महापुरुष धर्म का नया मार्ग-रूप प्रदर्शन कर रहे थे। अपनी तान्त्रिक करामाते और भयानक मुद्रा से वे सामान्य जनता पर आतङ्क और धाक तो जमा ही रहे थे साथ ही वेद-शास्त्र, पूजा-अर्चा और विधि-विधान का तिरस्कार कर शास्त्र अनुमोदित धर्म को अपमानित और लाछित करते हुए एक नवीन मार्ग का सकेत कर रहे थे। स्पष्ट है कि धर्मप्राण हिन्दू जाति और जनता की धर्म-भावना अज्ञानियो और पाखडियो के के हाथ पड कर क्षीण होती जा रही थी और भारतीय जनता का हृदय धर्म के सच्चे मार्ग से दूर होता जा रहा था।

कर्म, ज्ञान और भक्ति की पारस्परिक एकता से धर्म का वास्तविक स्वरूप निखरता है किन्तु भक्ति-युग के प्रारम्भ मे जिन पाखडियो के हाथ ज्ञान रूप धर्म की सत्ता रही वे जन-समुदाय की धार्मिक प्रवृत्ति को निर्दयता से लूट कर पेट पालते रहे। यद्यपि इसका प्रभाव भारत की शिष्ट जनता पर नही पडा फिर भी सामान्य जनता पर इन सिद्धो और जोगियो की वाणी का असर अमिट हुआ। जनता मार्ग-भ्रष्ट हुई और धर्म का सच्चा स्वरूप जिसमे आत्मिक गुणो का सर्वाधिक विकास होता है, उसका ह्रास हुआ। शुक्ल जी ने इसी कारण लिखा है "धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओ से चलना है। इन तीनो के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा मे रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विकलाग रहता है। कर्म के बिना वह लूला-लगडा, ज्ञान के बिना अधा और भक्ति के बिना हृदय-विहीन क्या निष्प्राण रहता है।[१] धर्म की 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अथवा 'सर्वे भवन्तु सुखिण की जो सच्ची लोक कल्याणात्मक भावना थी, वह दब गई और इन तान्त्रिक नाथपथी योगियो ने धर्म की भावात्मक अनुभूति के स्थान पर अनतस्साधना और योग पर बल दिया। भक्ति और कर्म का इनकी साधना मे कोई स्थान नही रहा। फलत इनकी वाणी अटपटी, अस्पष्ट और अर्थ-शून्य हो गई परन्तु उसका अपना एक बल आतङ्क था। शुक्ल जी के शब्दो मे 'उनकी बाणी तो' 'रहस्य और सिद्धि' लेकर उठी थी। अपनी रहस्य-दर्शिता की धाक जमाने के लिये वे बाह्य जगत् की बाते छोड घर के भीतर के कोठे की बात बताया करते थे।'......इनकी बानियो के प्रभाव से भगवद्भक्ति की स्वाभाविक हृदय पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के मन्त्र तन्त्र और उपचारो मे जा उलझे और उसका विश्वास अलौकिक सिद्धियो पर जा जमे ? वास्तव मे इन सयासियों और हठयोगियो ने अपने सिद्ध हो जाने का दावा कर इस सूरत से जनता के सामने रखा और भोली जनता उन पर विश्वास कर अधार्मिकता की शिकार बनी।"

---

१ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास।

इन सिद्धो और नाथपथियो के आध्यात्मिक सिद्धान्त बडे गूढ और गम्भीर है सभी सिद्ध और योगी अपने ज्ञान को असीम मान कर चले। परिणाम अच्छा न हुआ, फिर भी इनके सिद्धान्त अध्ययन के योग्य है। जिस योग को लेकर ये सिद्ध चले वह अनादि काल से इस देश मे विद्यमान था और आचार्यों द्वारा अनुमोदित होने के कारण स्वीकृत योग ज्ञान पर आधारित होता है और धर्म-प्रवाह का एक मार्ग है। उपनिषदो मे योग-विद्या का उल्लेख हुआ है।[1] योग-दर्शन की सम्यक् विवेचना महर्षि पतञ्जलि ने की है। योग-दर्शन साख्य से विचार मे कोई भेद नही रखता। साख्य के पच्चीस तत्व योग्य को भी मान्य है। इनके अतिरिक्त पुरुष-विशेष ईश्वर को छब्बीसवा तत्व माना है। योग-दर्शन क्लेश-नाश का एक व्यावहारिक साधन-मार्ग देने के लिये प्रवृत्त हुआ है।'[2] साख्य के पच्चीस तत्वो मे मूलत दो अनादि तत्व है प्रकृति और पुरुष जिसे शैव-सिद्धान्त मे शक्ति और शिव माना है। सत्व, रज और तम इन तीन गुणो की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। पुरुष अनन्त और चेतन है, भोक्ता है। वह प्रकृति के कर्तृत्व को अपने में मानता है। जब पुण्योदय से पुरुष त्रिविध दुखो के नाश की इच्छा करता है, तब प्रकृति उसकी इच्छा सफल करती है क्योकि प्रकृति पुरुष से ही उद्भूत और पुरुष के उपभोग के लिये ही उत्पन्न हुई है। प्रकृति से महत्व उससे अहकार और अहकार से पञ्चतन्मात्राए उत्पन्न होती है। तन्मात्राओ से पच महाभूत[3] उत्पन्न होते है। दस इन्द्रिया[4] तथा मन मिला कर चौबीस तत्व होते है और पच्चीसवा तत्व पुरुष है।' साख्य दर्शन ने प्रकृति, विकृति, प्रवृत्ति-विकृति और उभय-भिन्न चार पदार्थ माने है जिनसे पच्चीस तत्व उत्पन्न होते है। साख्य की सारी बातो के साथ पतञ्जलि ने ईश्वर को एक अलग तत्व माना है। बौद्ध दर्शन के अनुसार असत् से सत् की उत्पत्ति होती है, न्याय दर्शन के अनुसार सत् से असत् की उत्पत्ति और साख्य दर्शन सत् से सत् की उत्पत्ति बतलाता है। साख्य का मत है कि किसी तत्व से किसी विरोधी तत्व की उत्पत्ति सम्भव नही। योग दर्शन मे चित्त की ही महत्ता वर्णित है जिससे कर्म-बन्धन उत्पन्न होते है। कर्म-बन्धन से अविद्या, अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश आदि कृष्ट होते है और इनसे छुटकारा पाने के लिए चित्त के निरोध की आवश्यकता पतञ्जलि ने बतलाई है।

पच्चीस तत्वो से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। शिव या स्वय की पाच शक्तिया मानी गई है और प्रत्येक के पाच गुण है।

१ श्वेताश्वेतर उपनिषद—
२ कल्याण—हिन्दू सस्कृति अक पृष्ठ २८२
३ महाभूत—पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और तेज
४ ज्ञानेन्द्रिया—कान, त्वचा, आख, रसना और नाक
कर्मेन्द्रिया—हाथ, पाव, जीभ, गुदा और उपस्थ

शिव की पाच शक्तियाँ —

(1) निजा, (11) परा, (111) अपरा (iv) सूक्ष्मा, (v) कुण्डली। पाच शक्तियो के क्रमश पाच गुण माने गये है।

(१) निराकृत्तित्व, नियतत्व, निरन्तरत्व, निस्पदत्व, निरुत्थत्व।
(२) अस्तित्व, अप्रमेयत्व, अभिन्नत्व, अनन्तत्व, अर्थ्यकृत्व।
(३) स्फुरन्ता, स्फारता, स्फुरता, स्फोटता, स्फूर्ति।
(४) नैरतर्य, नैरथ्य, नैश्चल्य, निश्चयत्व, निर्विकल्पत्व।
(५) पूर्णत्व, प्रतिबिम्बत्व, प्रकृतिरूपत्व, प्रत्यङ्गमुख, औच्चल्य।

शिव की पाच शक्तिया पर-पिण्ड कही जाती है और उनके २५ तत्व है। इनसे साकार पिण्ड पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी बनी फिर मन, बुद्धि, अहकार, चित्त और चैतन्य आदि बने। साकार पिण्ड से महसाकार पिण्ड और क्रमश प्राकृत पिण्ड, अवलोकन-पिण्ड और गर्भ-पिण्ड उद्भूत हुए।[1]

सक्षेप मे इस विराट कल्पना के लिए शिक्षित और ज्ञानी सतो की आवश्यकता थी, परन्तु नाथ और सिद्ध सतो मे इसका प्रचुर अभाव था। न जानते हुए भी अटपटी वाणी मे रहस्पोद्घाटन की प्रवृत्ति और हठ योग द्वारा मोक्ष की प्राप्ति वास्तविक धर्म-साधना के मार्ग का रोडा बनी। फलस्वरूप ये सत छ चक्र, सोलह आधार, इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गधारी, हस्तजिह्वा, शखिनी, पूषा, अलम्वुषा, पयस्विनी और कुहू की नामावलियो को उसे बगैर समझे झूठे मत्र तत्र द्वारा प्रदर्शित करते रहे। वास्तव मे योग और साधना की मौखिक चर्चा व्यापकता के साथ होती रही। चित्त-वृत्ति के निरोध द्वारा योग की कल्पना तो हुई परन्तु उसकी सिद्धि न हो पाई। ज्ञान की विस्तृत भूमि की चर्चा तो की गई परन्तु उसके अवलोकन का यत्न नही किया गया।[2] फलस्वरूप योग साधना-विहीन होकर निस्पद और सार हीन हो गया और इस पथ के साधु सत वेद शास्त्रो की उपेक्षा कर ईश्वर को घट के भीतर[3] ढूढने का मार्ग बतला कर जनता को सच्चे मार्ग से हटाने मे प्रवृत्त हुए। कल्याणकारी भावो की अपेक्षा करामात का बोल बाला हुआ और जनता उसके पीछे कुछ काल तक भ्रमित रही किन्तु कुछेक काल-दर्शी भक्त सतो ने ज्ञान की इस एक एकाङ्गी भावभूमि से भक्ति और कर्म का मेल कर नवीन रूप मे धर्म का प्रकाश फैलाया।

१ पतञ्जलि—योगदर्शन
२ कल्याण—हिन्दू सस्कृति अङ्क
३ ,, उपनिषद् अङ्क

चित्त-वृत्ति के विरोध के लिये योग के आठ अङ्ग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। 'यम, बाहरी और भीतरी इन्द्रियो के सयमन (वृत्ति-सकोचन) को कहते है। अहिसा, सत्य, अस्तेय (= चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (किसी से कुछ न लेना) ये पाच यम हैं। इन यमो (= सयमो) की विपरीत-क्रियाओ हिंसा, असत्य, स्त्येय, वीर्यक्षय, परिग्रह, को वितर्क कहते है इनका फल दु ख और अज्ञान है। वितर्कों के दमन और सयमो की उपलब्धि के लिये शास्त्रकार ने पाच प्रकार के नियम बतलाये है। शौच (पवित्रता) सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। योग-साधन के लिये नाना प्रकार के आसन उपयोगी बतलाये गये हैं। आसन अर्थात् हाथ पैर आदि का विशेष ढग से सन्निवेश। परवर्ती योग ग्रन्थो में आसनो की अनेक सख्याए बतलाई गई है परन्तु पतञ्जलि दर्शन ने स्थिर और सुखकर आसन (२/४६) को ही योग साधन का प्रकृष्ट उपाय बतलाया है। श्वास को भीतर भरना (पूरक) उसे देर तक भीतर ही आबद्ध रखना (कुम्भक) और फिर बाहर निकालना (रेचक) प्राणायाम कहा जाता है। प्राण अर्थात् वायु के सयमन से मन का सयमन सहज होता है। शब्दादि बाह्य व्यापारो से कान प्रभृत्ति इन्द्रियो को हटा कर (प्रत्याहृत करके) पहले अन्तर्मुख करना होता है। उस अवस्था मे बाह्य विषयो के साथ इन्द्रियो का कोई सपर्क नही होने से चित्त का सपूर्ण रूप से अनुकरण करते हैं, इन्द्रियो की इस प्रकार की अवस्था का नाम ही 'प्रत्याहार' है। इससे इन्द्रियो को वश मे करना संभव है। धारणा, ध्यान और समाधि कार्य सिद्धि के हेतु हैं'।[1]

ज्ञान और साधना की इस विशाल-भूमि का उपयोग करना गोरखपथी साधुओ और बौद्ध सिद्धो का पुनीत कर्त्तव्य था। पर्याप्त शिक्षा के अभाव मे वे जन-मन को चमत्कृत तो करते रहे परन्तु अपने मन को शान्ति न दे पाये। इस अधेर का एक शुभ परिणाम भी हुआ कि भारत की शासक और शासित जाति मे मिलन की भावना इन सतो ने पैदा की और वे समझ गये कि बाहरी बन्धन से नही आत्मिक बन्धन से मानव परस्पर गुथे है। योग-साधना की उच्च भाव-भूमि के साथ प्रेम का सयोग मणि-काचन योग के समान हुआ और कुछ परवर्ती सतो ने प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर हिन्दू और मुसलमानो दोनो के हृदय में जगह पैदा की। भेद-भाव, शासक-शासित, उच्च-नीच आदि के भाव तिरोहित होने लगे। ऐसी परिस्थिति थी कि एक 'सामान्य भक्ति मार्ग' का विकास हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनो ने इसमे सहयोग दिया। सिद्ध और नाथ योगियो के मत से ईश्वर घट घट वासी थे, वेद, शास्त्र, पूजा

१ नाथ सम्प्रदाय पृष्ठ—११९।

सब व्यर्थ था। मानव मानव के निकट थे, जाति-पाति, भेद-भाव का विश्वास मिटने लगा था। इसी समय दक्षिण से आने वाली भक्ति की लहर ने हिन्दू मुसलिम एकता के भाव को जगाया तथा प्रेम और अन्तस्साधना के दीप जला कर आचार्यों ने मानव मानव के बीच की खाई पाटने का सफल प्रयास किया। आचार्यो के इस मशाल को लेकर आगे बढने वाले महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव थे[1]

हिन्दी साहित्य मे इस विचार धारा को लेकर एक युग का निर्माण करने वाला पहला सत कबीर था। उसमे नाथ और सिद्ध योगियो के ज्ञान की गरिमा थी तो सूफियो के प्रेम तत्व का मधुप्यार भी था। ज्ञान और हृदय का समन्वय कर मस्तिष्क की शुष्कता को हृदय की रस धारा से सिंचित कर कबीर ने एक अनूठा कार्य किया। कबीर ने एक ओर तो निराकार ब्रह्म के निरुपण मे भारतीय वेदान्त का आश्रय लिया दूसरी तरफ सूफी सिद्धान्तो से प्रेम तत्व लेकर ज्ञान और प्रेम का समन्य किया। जातीयता के सकुचित घेरे से उठाकर कबीर ने मानव को मानवता का महान् आदर्श दिया। कबीर ने एक ईश्वर की कल्पना की, बहुदेववाद को वेश्या वृत्ति के समान तिरस्कृत किया।

नारी कहावै पीव की, रहो और मग सोय।
जार सदा मन मे बसै, खसम खुशी क्यों होय॥[1]

कबीर का यह एकेश्वरवाद मुसलमानी एकेश्वरबाद से भिन्न है। डा० बडथ्वाल[2] ने गिब्बन का उद्धरण दिया है। 'An eternal truth and a necessary fiction. Kabir did away with fiction and went far on the truth'. वेदान्त की यहाँ स्पष्ट छाप है—

खालिक खलक खलक मे खालिक घट घट रहा समाई।
या
मुसलमान का एक खुदाई कबीर का स्वामी रहा समाई।[3]

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि कबीर की दृष्टि व्यापक थी। उनका ब्रह्म निर्गुण सगुण से परे है। उनका ब्रह्म 'राम' अवर्ण्य और अनुभवगम्य है परन्तु अवतारवाद का

देखिये:—

१ सन्त वाणी सग्रह, पृष्ठ—११८।
२ The Nirgun School of Hindi Poety, Page 21
३ कबीर वचनावली

उन्होने जम कर-खडन किया है। उनके ब्रह्म मे कभी ब्रह्मवाद की झलक मिलती है कभी कभी पैगम्बरी खुदावाद की।

नाथ पथी साधुग्रो की साधना-पद्धति का नाम हठयोग है। जब मन ग्रौर प्राण एकीभूत हो जाते है तो समाधि लग जाती है। 'इन्द्रियो का[१] स्वामी मन है, मन का मारुत. मारुत का लय ग्रौर लय का नाद। सो यह (लौ) मोक्ष है।' ग्रात्मा को शून्य मे कर योगी निश्चिन्त हो जाता है। कबीर की उलटवासियो मे वही हठयोग की गभीर ग्राध्यान्मिकता निहित है।

जल मे कुभ कुभ मे जल है,
बाहर भीतर पानी।
फूटा कुभ जल जलहि समाना,
यह तथ कहो गियानी॥
ग्रादै गगना ग्रन्तै गगना,
मध्यै गगना भाई।
कहै कबीर करम किस लागै,
झूठी एक उपाई॥[२]

इन योग परक उक्तियो मे हठयोग ग्रौर ग्रध्यात्म का पूरा मेल है।

निर्गुण पथ के कवियो की विशेषता है एकता की भावना, जाति-भेद, समाज भेद, स्थान-भेद ग्रौर काल-भेद की निर्मूलता। राम ग्रौर रहीम की एकता सत कवियो के वाणी की ग्रमिट लहर है। इस पथ के ग्रमर कवि है रैदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास। इन सतो ने ग्रात्मा की ज्योति को जगाया, इस कारण इनके गीतो मे ग्राध्यात्मिकता का भिन्न २ रग निखर सका है। शुक्ल जी ने ठीक ही लिखा है[३]— 'निर्गुण पथ के सतो के सम्बन्ध मे यह ग्रच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि उनमे कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है। उन पर द्वैत, ग्रद्वैत, विशिष्टाद्वैत ग्रादि का ग्रारोप करके वर्गीकरण करना दार्शनिक पद्धति की ग्रनभिज्ञता ही प्रगट करेगा। उनमें जो थोडा बहुत भेद दिखाई पडेगा वह उन ग्रवयवो की न्यूनता या ग्रधिकता के कारण जिनका मेल करके निर्गुण पंथ चला है। जैसे, किसी में वेदान्त के ज्ञान तत्व का ग्रवयव ग्रधिक मिलेगा किसी मे योगियो के साधना-तत्व का, किसी मे सूफियो के मधुर प्रेम-तत्व का ग्रौर किसी मे व्यवहारिक ईश्वर भक्ति (कर्त्ता, पिता, प्रभु की भावना से युक्त) का।" इस धारणा के विपरीत डा०

१ कबीर, पृष्ठ ५१।
२ कबीर ग्र थावली, पद ४४
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

बडथ्वाल[१] ने निर्गुण कवियो के अद्वैतवाद मे तीन उपवादो की चर्चा की है। अद्वैत-वाद के मानने वाले थे,—कबीर, दादू, सुन्दर, जगजीवन और भीखादास आदि सत। द्वैतवाद का समर्थन इन सतो ने नही किया है वे सर्वत्र अपने 'लाल' की 'लाली' घट घट मे देखते है। दरिया साहब, शिवदयाल, प्राणनाथ आदि सतो का मत विशिष्टा-द्वैत के अधिक समीप जान पडता है। इसके अनुसार जीव परमात्मा तो है पर अश मात्र।

'सुरति अश का भेद न पाया जो सब पुरुष से आन समाया'[२]

तात्पर्य जीव ईश्वरीय तो है पर ईश्वर नही, सर्वांशत परमात्मा नही अल्पाशत परमात्मा है। ब्रह्म से उत्पन्न होकर यह ससार ब्रह्म मे ही लीन होता है। गुरु नानक का भेदाभेद ईश्वर और जीव में सायुज सम्बन्ध मानता है। वे माया रूप सृष्टि को सच मानते है—

"साचै तेरे खण्ड साचै ब्रह्मण्ड"[3]

मेरे विचार से निर्गुण सतो की विचार-धारा स्वामी रामानन्द जी की धार्मिक भावना का प्रतिबिम्ब है। रामानन्द जी ने रामानन्दीय सप्रदाय का प्रवर्तन किया। इस सप्रदाय मे परमात्मा का द्वार बिना किसी भेद-भाव के, बिना जाति-योग्यता आदि का विचार किये सब के लिये खुला है और सभी उस राम को पुकारने के अधिकारी है। इस विचार की शास्त्रीय मान्यता तो बराबर रही है परन्तु इसको व्यावहारिक रूप में फलित किया श्री रामानद जी ने। एक राम और उसके सभ अधिकारी है, इसी भावना को लेकर निर्गुणिया सत चले और इनमे कबीर, रैदास, दादू, नानक की पवित्र वाणिया साधना-बल एव प्रेम द्वारा चमक पैदा कर रही है।

निर्गुणिया सतो की कविता मे रहस्यवाद की भावना भी प्रतिफलित हुई है। कारण, अज्ञात प्रियतम की झाकी को वाणी द्वारा स्पष्ट करने पर भी अस्पष्टता और गुह्यता रह ही जाती है। यह रहस्य-भावना दो प्रकार की है। एक दार्शनिक रहस्य भावना, दूसरी काव्यगत रहस्य भावना। दार्शनिक रहस्य-भावना के आधार हैं उपनिषदे अथवा शास्त्रीय सर्वात्मवाद या ब्रह्मवाद। इसके तीन सिद्धान्त है—

---

१ Poetry of Nirgun School.
२ शिवदयाल
3 गुरु ग्रन्थ साहिब

(१) 'अहं ब्रह्माऽस्मि'।
(२) 'तत्वमसि'।
(३) 'सर्वं खल्विद ब्रह्म'।

साख्य दर्शन ने परमात्मा को पुरुष और प्रकृति को नारी का रूपक दिया। इसके बाद बौद्ध सिद्धो ने 'गुह्यवाद' और 'सहजसुखवाद', गोरखपथी नाथ योगियो ने 'अलख निरजनवाद' और कबीर ने 'शून्यवाद' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। कबीर ने तो इडा, पिंगला, सुषुम्ना, षड्-चक्र आदि के रहस्यमय विहङ्गम-योग सिद्धान्त का प्रचार किया। किन्तु यही रूपक जब तर्क, बुद्धि और चिन्तना के सकीर्ण क्षेत्र को छोड कर कल्पना के व्यापक पखो का सहारा लेकर भावुकता के गगन मे पहुँच सोम-रस का पान करता है तो एक मधुर रहस्य-भावना का उद्रेक होता है। सतगण अपने को दुलहिन और परमात्मा को प्रियतम मान कर भाव-व्यंजना करते है। कबीर की ये पक्तिया स्पष्ट करेगी —

'हरि मेरा पिऊ मै हरि की बहुरिया'

अथवा

दुलहनि गावहु मगलचार,
हम घरि आये हो राजा राम भर्त्तार,[१]

इस माधुर्य भाव की विशेषता है विप्रलम्भ श्रृङ्गार की प्रबलता और 'प्रेम की पीर' से प्रेम।

"कबीर सुपिनै हरि मिला सोता लिया जगाई।
आँखि न मीचौ डरपता मत सुपना ह्वै जाई॥"

इस रहस्य भावना की एक विशेषता है रूपक-भाषा (Language of Symbols)। यह तीन रूपो मे प्राप्त है — उलटबाँसी, आश्चर्यजनक घटनाए एवं अन्योक्ति पद्धति मे। क्रमश उदाहरण दे रहा हू, देखिए.—

(१) नैया बीच नदिया डूबरा जाई।
एक अचम्भा देखा रे भाई।
(२) ठाड़ा सिंघ चरावै गाई।

---

१ कबीर ग्रन्थावली—पृष्ठ ५५, १२५

पहलै पूत पीछे भई माई।
चेला कहै गुरू लागै पाई।
जल की मछली तरुवर धाई।
पकडि बिलाई मुर्गे खाई।

(३) काहे री नलिनी तू कुम्हलानि।
तेरे ही नाल सरोवर पानि।
जल मे उत्पत्ति जल मे बास।
जल मे नलिनी तोर निवास।

इन रूपको की प्रतीक-भाषा मे उसी विश्व-प्रवर्तक शक्ति की ओर सकेत है जो रहस्यवाद के मूल मे रहती है।

इन कवि सतो की वाणी मे स्पष्टवादिता है और राम सगुण ब्रह्म न होकर निर्गुण ब्रह्म है। कबीर ने तो स्पष्ट ही कहा है कि उनका ब्रह्म सगुण निर्गुण से परे है। कबीर का राम निर्गुण राम है 'निर्गुण राम निर्गुण राम जपो रे भाई'। हो सकता है कि कबीर का राम रामानद-का राम रहा हो परन्तु कालान्तर मे वह सूक्ष्म ब्रह्म का पर्यायवाची बन गया।

दशरथ सुत तिहु लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

फलत अवतारवाद और पैगम्बरवाद तथा मूर्ति-पूजा का आपसे आप खडन हो जाता है। इन सतो की वाणियो मे परम्परा को जड मूल उखाड देने की प्रवृत्ति है परन्तु हृदय के प्रेम का आग्रह भी है। इस प्रकार इन सतो ने 'भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियो के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियो के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवो के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पथ खडा किया।'[1] हिन्दुओ के तीर्थ और मुसलमानो के तीर्थ के खडन का आधार भी कदाचित् यही भावना है।

मन मथुरा दिव्य द्वारका काया काशी जानि।
दसवा द्वारा देहुरा ता मैं ज्योति पिछानि॥

इन सतों ने सत्सग की महिमा, आत्मसंयम सत्य, मानव-धर्म, जाति- पाति-खडन, गरीबी आदि विषयक गीत गाये हैं। इस खडनात्मक पक्ष का मडनात्मक स्वरूप

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ९४

मानव की एकता ही थी और कबीर का यह पद शाश्वत एकता एवे आत्मिक ज्योति का निदर्शन करा देता है।

एक बूद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति थैं सब उत्पन्ना को वामन को सूदा॥

यद्यपि इसकी स्पष्टवादिता खटकती है, अश्लीलता की गध भी आती है परन्तु हृदय पर चोट कर भी वे शाश्वत सौन्दर्य की रक्षा मे सलग्न रहे।

इन निर्गुणिया सतो की वाणी मे सचमुच अमरत्व की वरमाला पडी है और इनके गीत जन-जन के हृदय-पटल पर मानवता की अमिट लकीरे खीचने मे समर्थ है। ज्ञानाश्रयी शाखा के निर्गुण सत अपनी व्यापक उदार भावना के कारण शास्त्रज्ञो के कोप भाजन भले ही बने किन्तु मानव-मानव में प्रेम और एकता का जो सूत्र उन्होने दिया वह ससार के साहित्य और शास्त्र में अपनी एक अमर कहानी-भरा सदेश देने मे समर्थ रहेगा।

अध्याय ५

हिन्दी काव्य के कृष्ण-भक्त कवि और उनका दर्शन

१५ वी और १६ वी शती मे वैष्णव-धर्म का एक प्रबल आन्दोलन हुआ जिसके मुख्य स्तम्भ और प्रधान प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य जी थे। वल्लभाचार्य का जन्म विक्रम संवत् १५३५ वैशाख कृष्ण ११, को रामपुर (सी०पी०) के चम्पारण्य नामक स्थान में हुआ। आपके पिता का नाम लक्ष्मण और माता का नाम श्री इलम्मागास था। इनके पूर्वज दक्षिण भारत के निवासी थे।[1] वल्लभाचार्य जी वेद-शास्त्र मे निपुण और प्रकाण्ड पडित थे। शकराचार्य के अद्वैतवाद ने भक्ति को अविद्या की कोटि मे रखा था और इसी कारण रामानुजाचार्य ने अपना विशिष्टाद्वैत मत प्रस्थापित किया था। बल्लभाचार्य जी ने भी कदाचित् इसी कलक से मुक्त करने के लिये शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन और प्रचार किया। वल्लभाचार्य जी ने शकराचार्य के समान जीव और ब्रह्म की नितान्त एकता को स्वीकार तो किया परन्तु उस निर्गुण ब्रह्म मे सर्व गुण और सभी धर्मो का समावेश किया और सारी सृष्टि को उसकी लीला विस्तार का अङ्ग माना। वल्लभाचार्य जी के विचार से[2] श्री कृष्ण ही परमब्रह्म है, जो सब गुणो से युक्त होकर 'पुरुषोत्तम' है और उन्ही मे सत्, चित् और आनन्द का अध्यास है। अग्नि से स्फुलिङ्गो के समान[3] उस परमब्रह्म से जीव उद्भूत हुए। जगत् भगवान की लीला शक्ति का विलास है। आविर्भाव और तिरोभाव नामक शक्तियो के कारण जगत् का विकास तथा लय होता है। इनके मत से जीव अणु और सेवक है। सेवा द्वारा मोक्ष या तादात्म्य सभव है। इस कारण शुद्धाद्वैत वेदान्त में 'पुष्टि' शब्द आया है जिसका एक विशिष्ट अर्थ है। विदेशी विद्वान 'पुष्ट' का अर्थ 'Eat Drink and be merry' लगाते है किन्तु इसका अर्थ है 'पोषण'

---

1 कल्याण, वर्ष १६, अक १२

2 प्रमेयरत्नार्णव, पृ० ११-१५

3 शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, पृ० ८

तदनुग्रह"[1] अर्थात् पोषण या पुष्टि भगवान के अनुग्रह को कहते है। इसी श्लोकाश के आधार पर वल्लभाचार्य जी का मत है कि भक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती और भक्ति बिना भगवान के अनुग्रह के सभव नही। इसी मत को दर्शन के क्षेत्र मे शुद्धाद्वैत की सज्ञा मिली है और भक्ति के क्षेत्र मे इस मत को 'पुष्टि मार्ग' कहते है।[1] वास्तव मे इस विचारधारा के अनुसार श्रीकृष्ण ब्रह्म है और उननें सत्, चित और आनन्द का समन्वय है। जगत् और जीव उनकी लीला के विस्तार है। शुक्ल जी ने लिखा है 'कृष्ण अपने भक्तो के लिये व्यापी वैकुण्ठ मे (जो विष्णु के बैकुठ से ऊपर है) अनेक प्रकर की क्रीडाए करते रहते है।' 'गोकुल', इसी व्यापी बैकुठ का एक खड है जिसमे नित्य रूप मे यमुना, वृन्दावन, निकुज इत्यादि है। भगवान की इस 'नित्य-लीला-सृष्टि' मे प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है।

सत रामानद के समान बल्लभाचार्य जी ने भी शकराचार्य के विशुद्ध किये गये अद्वैत 'शुद्धाद्वैत' का घूम-घूम कर प्रचार किया किन्तु वैष्णव-सम्प्रदाय के इस 'पुष्टि-मार्ग' को जनता तक पहुचाने का श्रेय भक्त प्रवर सूरदास जी को ही है। बल्लभ सम्प्रदाय की उपासना पद्धति ग्रहण कर सूर ने भोग, राग और विलास के जो गीत गाये उससे मुरझाये हिन्दू-जीवन को शान्ति और प्रफुल्लता मिली। 'वार्ता' के अनुसार हिन्दी के कतिपय इतिहासकारो ने लिखा है कि सूरदास गऊघाट पर बल्लभाचार्य जी के शिष्य बने और उसी समय बल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मन्दिर की कीर्तन-सेवा सूरदास को सौपी। "आरेहु पद गाए तब श्री महाप्रभु जी अपने मन मे विचारे जो श्रीनाथ जी के यहा और तो सेवा को मडान भयो है, पर कीर्तन को मडान नाही कियो है, ताते सब सूरदास जी को दीजिए।"[2] श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाई बिट्ठलनाथ जी ने कृष्ण भक्त कवियो का सगठन कर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। 'अष्टछाप' मे आठ कवि सम्मिलित किये गये जिनके नाम क्रमश सूरदास, कुभनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास और नन्ददास है। काव्य-कला की दृष्टि से तथा दार्शनिक विश्लेषण का ध्यान रख कर यह कहा जा सकता है कि इस धारा के सबसे प्रसिद्ध कवियो मे सूरदास और नन्ददास है जिन्होने क्रमश: 'सूरसागर' 'रास पचाध्यायी'[1] और 'भ्रमर गीत' का निर्माण कर कृष्ण-काव्य और भक्ति-साहित्य मे अमर हो गये। डा० श्यामसुन्दर दास जी ने अष्टछाप के कवियो के सम्बन्ध में बहुत ठीक ही लिखा है "अष्टछाप के कवियो मे से प्रत्येक ने भक्ति भाव सयुक्त कृष्ण की उपासना की और पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के

१ भागवत पुराण
२ चौरासी वैष्णवों की वार्ता

सुन्दर गेय पद बनाये । सबकी बाणी मे वह तन्मयता है जो नीति-काव्य के लिये परम उपयोगिनी है । ·· ······ शुद्ध प्रेम का प्रवाह बहा कर भगवान कृष्ण की स्तुति मे आत्म-विस्मरण कर देने वाले भक्त कवियो का हिन्दी कविता पर जो महान् ऋण है, उसे हम सभी स्वीकार करेगे ।"[1]

कृष्ण काव्य के अमर कवि और उनकी रचनाओ की तालिका विषय के स्पष्टीकरण के लिये दी जाती है ।

१	सूरदास	सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी ।
२	नन्ददास	नन्ददास जी की २० कृतिया कही जाती है किन्तु चार प्रकाशित है जिनके नाम है रास-पचाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थ मजरी और अनेकार्थ नाम-माला ।
३	कृष्णदास	भ्रमरगीत, प्रेमतत्व-निरूपण ।
४	परमानन्ददास	'परमानन्द सागर' (फुटकर पदो का सग्रह) ।
५	कुभनदास	फुटकर पद ।
६	चतुर्भुज दास	द्वादशपथ, भक्ति प्रताप, हितजू को मगल ।
७	छीत स्वामी	फुटकर पद ।
८	गोविन्द स्वामी	,,
९	हित हरिवश	हित चौरासी ।
१०	मीराबाई	'नरसी जी का मायरा' गीतगोविन्द टीका, राग गोविन्द, राग सोरठ (हिन्दी मे मीरा पदावली) ।
११	हरिदास	

कृष्ण काव्य-धारा को पुष्ट करने वाले सहस्त्रो कवियो का नामोल्लेख सरल नही फिर भी कुछेक कवियो की चर्चा द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि इन कवियो ने श्रीकृष्ण का प्रेममय स्वरूप लेकर माधुर्य भाव की स्थापना कविता द्वारा की । जहा रामभक्ति-शाखा के कवियो ने भगवान का लोक-रजक और लोक-संग्रही रूप सामने रखा था वहा कृष्ण भक्ति शाखा के कवियो ने कृष्ण की रूप-माधुरी के आधार पर ही प्रेम-तत्व का विस्तार पूर्वक सौध निर्मित किया है । इन कवियो ने श्रीकृष्ण के प्रजापालक, महापुरुष, नेता, प्रजा-रक्षक रूप को सामने नही रखा अपितु श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य, हास-विलास-क्रीडा का आनन्दमय स्वरूप चित्रित किया । ये कविगण मस्त जीव थे अत चीरहरण, मानलीला, दानलीला, रासलीला

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास

आदि नवीन २ प्रसङ्गो के चित्रण मे तल्लीन रहे। उन्हे इस बात का ध्यान ही नही रहा कि इन वर्णनो और कविताओ का समाज पर क्या प्रभाव पडेगा। इसके सबध मे आज वस्तुत 'art for art Sake' का दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है परन्तु वह भी एक भारी भ्रम होगा। वस्तुत श्रीकृष्ण का जो वास्तविक स्वरूप था उसे लोग भूल गये थे और ऐसे कृष्णं की कल्पना की जो 'छछिया भरी छाछ' पर नाचता था। वास्तव मे कविगण जनता को अपनी उद्दाम शृङ्गारिक कविता द्वारा रस-मग्न कर देना चाहते थे। यही कारण है कि जिस राधा-कृष्ण को भक्त कवियो ने अपना उपास्य माना, परमब्रह्म के ज्योति रूप का प्रतीक समझा वही राधा-कृष्ण रीति काल के कवियो के हाथ मे नायक और नायिका के रूप मे अभिसार कर किलोल करते रहे।

कृष्ण भक्ति शाखा के कवियो ने राधा कृष्ण के प्रेम-गान मे गीत-काव्य की परम्परा को अपनाया जिसे जयदेव और विद्यापति ने अपने सगीतमय गान से सजाया था। अष्टछाप के कवियो ने इसे ही अपनाया। भक्ति और शृङ्गार के क्षेत्र मे मुक्तक का प्रसार हुआ और लगभग ३०० वर्षो तक मुक्तक की ही प्रधानता रही यद्यपि यदा-कदा प्रबन्धकाव्य भी लिखे गये। वास्तव मे ये अपवाद स्वरूप थे। कृष्ण धारा के कवि स्वच्छन्द प्रेम के पोषक थे अत अपनी अभिव्यक्ति के लिये उन्होने जिस माध्यम को अपनाया उसमे भी स्वच्छन्दता की ही मात्रा अधिक थी। स्वच्छदन्ता मुक्तक में है प्रबन्ध काव्य मे तो बन्धन है। बन्धन विहीन ये कवि रहना चाहते थे जिस पर से कोई अकुश न रहे। इस स्वच्छन्ता का एक दूसरा और सबल कारण भी है वह यह कि कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियो ने श्रीकृष्ण का पूरा जीवन-चरित्र अपने काव्य का विषय नही बनाया बल्कि कृष्ण के जीवन का एक अश सदियो तक कृष्ण काव्य को रग देता रहा। मानव-जीवन की विविध समस्याएँ इन कवियो के गले से न उतर पाई, फलत साहित्य की धारा एकाङ्गी और क्षीण रूप मे बहने लगी। लेकिन इस क्षीण धारा का एक शुभ परिणाम भी हुआ। इस काल मे ऐसे २ अमर गीतो की रचना हुई है जिसका सदेश सारे भारत को ही नही समग्र ससार मे रहने वाले मानव को उद्वेलित करने मे समर्थ है। कृष्ण की बाल-लीलाओ और यौवन-लीलाओ तथा वात्सल्य और शृङ्गार का चित्रण कर ये कवि पराकाष्ठा तक पहुँच गये फलतः कृष्ण के परम-ब्रह्मत्व पर धक्का पहुँचा उनका वास्तविक रूप छद्म स्वरूप मे छिप गया। समस्त रीति काल का साहित्य इस बात का प्रमाण है।

राधा और कृष्ण की प्रेम लीला का गान गानेवालो में अग्रणी भक्त सूरदास थे। आपने श्रीमद्भागवत के आधार पर (दशम स्कन्ध) श्रीकृष्ण की कथा का विस्तार पूर्वक गान गाया है। आपके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति सच्ची भक्ति थी और इसी कारण श्रीकृष्ण की भिन्न २ लीलाओ पर अनेको पद लिखे है। इस सफल

गीतिकार की सफलता का कारण कदाचित यह है कि वह अपने को श्रीकृष्ण का सखा समझता था और इस कारण अधिकार पूर्वक सभी कुछ गीत के माध्यम द्वारा कह सका। ब्रजभाषा की मिठास और सरलता तो प्रत्येक पद मे व्यजित है। भक्त सूर ने ज्ञान, भक्ति और कर्म के साधन त्रय मे भक्ति की प्रधानता स्वीकार की है और वह भी सख्य भाव की भक्ति। उन्होने सगुण और निर्गुण मे भेद नही माना परन्तु सगुण मार्ग की सरलता और सर्वसुलभता देख सगुण को स्वीकार किया है।

"अविगत गति कुछ कहत न आवै।
"रूप रेख गुन जाति जुगत विन निरालम्ब मन चक्रत धावै।
सब विधि अगम विचारहि ते सूर सगुण लीला पद गावै॥"

सूरदास का 'भ्रमरगीत' 'मुरली माधुरी' तथा नन्ददास जी के 'रासपचध्यायी' और 'भ्रमर गीत' वास्तव मे श्रीकृष्ण के दार्शनिक स्वरूप और सगुण के निर्गुण-विश्लेषण ही है।

अष्ट छाप के कवियो मे सूरदास के बाद जिस कवि का नाम आता है, वह नन्ददास है। सच तो यह है कि बल्लभाचार्य जी के 'पुष्टि मार्ग' की धार्मिक और दार्शनिक मान्यताओ को समझने के लिये वे सूर से भी अधिक महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार राम-भक्ति का सार जानने के लिये मानस का उत्तर काड अमूल्य है उसी तरह बल्लभ-सम्प्रदाय की विचार-धारा को समझने के लिये नन्ददास जी के सिद्धान्त-ग्रथ को जानना भी आवश्यक है।

नन्ददास केवल सप्रदाय के व्याख्याता ही नही अपितु एक उच्च कोटि के कवि-कलाकार है। उनके सम्बन्ध में तो कहा गया है 'और कवि गडिया नन्ददास जडिया'। वास्तव मे वे एक २ शब्द चुन-चुन कर रखते है। डा० दीन दयाल गुप्त जी ने ठीक ही लिखा है "रास पचाध्यायी मे तो एक २ शब्द इस प्रकार काव्य-पटुता के साथ चुन-चुन कर छन्द की लडियो मे पिरोया गया है कि जिह्वा एक शब्द से दूसरे शब्द पर सहज ही मे सरकती चलती है।" मीतल जी की धारणा है "भाषा की कोमलता, छन्दो की सजावट और भावो की सरसता के साथ साम्प्रदायिक सिद्धान्तो की पुष्टि इन रचनाओ मे ऐसी सफलता के साथ हुई है कि वे ब्रजभाषा-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इनमे धार्मिकता और साहित्यिकता का सम्मिश्रण गगा, यमुना के मिश्रित प्रवाह की तरह सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है।" वास्तव मे नन्ददास के 'रास पचाध्यायी' में लौकिक शृङ्गार के भीतर एक आध्यात्मिक प्रेम का रहस्य अन्योक्ति रूप में व्यक्त हुआ है जिसकी भाषा मधुरता से भी मीठी है। शुक्ल जी की धारणा भी अष्टछाप के कवियो, विशेषत सूरदास, पर यही थी। जिस प्रकार रामचरित

का गान करने वाले कवियो मे गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्णचरित्र का गान करनेवाले भक्त कवियो मे सूर का। वास्तव में ये हिन्दी काव्य-गगन के सूर्य और चन्द्र है। हिन्दी काव्य इन्ही के प्रभाव से अमर हुआ और इन्ही की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया।

बल्लभ-सम्प्रदाय कें पुष्टिमार्गी कवियो और अष्टछाप के कवियो के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के कवियो ने भी कृष्ण भक्ति के सरस गीत गाये है। मध्वाचार्य जी के अनुयायी हित हरिवश जी जो स्वय एक सम्प्रदाय (राधावल्लभी) के सस्थापक थे कृष्ण-परक कविताये की है। इसी राधावल्लभी सम्प्रदाय के अन्य कवियो ने कृष्ण के प्रेम-गीत गाये है जिनमे हरीराम व्यास और ध्रुवदास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। स्वामी हरिदास, जो स्वय गीताचार्य थे जिन्होने टट्टी सम्प्रदाय स्थापित किया था और जिनके सम्बन्ध मे यह कहा जाता है कि यह टट्टी सम्प्रदाय लोगो द्वारा बडे आदर की दृष्टि से देखा जाता था और स्वय बादशाह अकबर ने भेष बदल कर स्वामी हरिदास के दर्शन किये थे। 'स्वामी हरिदास के पद' मे कृष्ण भक्ति के गीत है। तात्पर्य कि हित हरिवश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, सूरदास, मदन मोहन, श्री भट्ट, व्यास जी, रसखान आदि अनेको कवियो ने अपने हृदय के प्रसून कृष्णार्पित किये है। कृष्ण भक्ति का एक मात्र केन्द्र था ब्रज और कदाचित सभी कवि ब्रज से आबद्ध और सम्बन्धित थे। बिहार प्रान्त के विद्यापति और राजस्थान मेडता की मीरा का नाम उल्लेखनीय है कि विद्यापति वैष्णव न होते हुये भी कृष्ण प्रेम मे रगे थे और मीरा तो स्वय राधा बन कृष्ण के विरह मे बावली बन गई थी। भक्ति-भावना और तन्मयता की दृष्टि से कृष्ण भक्ति शाखा का काव्य अमर है और उसके कवि धन्य है।

वैष्णव साहित्य में नाम और रूप की महत्ता को स्वीकार किया गया है। यह भक्ति की एक प्रवृत्ति है। तात्विक दृष्टि से नाम और रूप का कोई अस्तित्व नही, ये मिथ्या है फिर भी भक्ति के लिये उनमे सत्य अपेक्षित है।

इस सबध मे तो नाम का जाप कलियुग का आधार ही माना गया है। अग्रेज विद्वानो ने भी इसकी महत्ता को मुक्त कठ से स्वीकार किया है। Origen himself says that the power of Exorcism lies in the name of Jesus, which is uttered as the stories of "His life are being naviatcda". He talks of a "Secret Science of names", which confers power upon the initiated. "The name of Jesus", he adds "comes under this science of names". Thomas a Kimpis ने लिखा है The holy utterance, short to read, easy to retain, sweet to think upon, strong to protect".

P. Pelbort ने लिखा "By his most holy name, which consists of five letters, he daily offers pardon to Sinners". S. Bonaventura महाशय लिखते है "No one can devoutly utter Thy name without Profit" and again "Glorious and wonderful is the name. . Those who keep it will have no fear where at the point of death". Recardus de S. Laurent ने लिखा है "The name alone is sufficient for healing; for there is no plague so obstinate that it does not inevitably yield to the name ." S. Bridget महाशय ने कहा 'Evil spirits fly as if from fire when they hear the name ", and "all demons honour this name and fear it, when they hear it They at once release the soul which they have been holding in their falons." Honarius ने लिखा है " The Name is full of all sweetness and of devine relish." इस प्रकार भक्ति-काव्य मे ही नाम की सत्ता नही, विदेशी भक्तो ने भी नाम के माहात्म्य को स्वीकार किया है । वास्तव मे नाम के बिना या बिना किसी मूर्त आधार के भावो का अनुभव और ग्रहण सम्भव नही है । कदाचित् व्यावहारिकता के कारण ही भगवान के लीलावतारो और रूप-मूर्ति की कल्पना की गई है । भगवान मूर्त रूप मे ही भक्तो का सकट टालते है । इसी कारण भक्त कवियो की वाणी मे तन्मयता के साथ भगवान के रूप का वर्णन मिलता है ।

अनाम ब्रह्म की रूप-माधुरी सूर के शब्दो मे देखिए जहां भगवान श्रीकृष्ण सजल नयन और अरुण-मुख है —

मुख छबि देखि हो नन्द घरनि ।
शरद निशि के अंशु अगणित इदु आभा हरनि ॥
ललित श्री गोपाल लोचन लाल आसू ढरनि ।
मनहुँ वारिज विलखि विभ्रम परे परवश परनि ॥
कनक मणिमय मकर कुडल ज्योति जगमग करनि ।
मित्र लोचन मनहु आये तरल गति दो तरनि ॥
कुटिल कुतल मधुप मिलि मनौ कियो चाहत लरनि ।
बदन कात अनूप शोभा सकै सूर न बरनि ॥

जहा सूर की लेखनी उनके सौन्दर्य का अङ्कन करने में नही थकती वहाँ 'रसखान' भी अनूठे शब्दो मे श्रीकृष्ण का चित्र इस प्रकार आकते है:—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहु पुर को तजि डारौ।
आठौ सिद्धि नवौ निधि को सुख नद की धेनु चराय बिसारौ।

'रसखान' के जीवन की अभिलाषा वैष्णव कवियो के जीवन की साध थी। सूर आदि कवियो ने वात्सल्य-भाव के आलम्बन श्रीकृष्ण का जितना भव्य चित्र खीचा है वह बेजोड और अनुपम है। युवा रूप मे शृङ्गार की भाव-व्यजकता और सम्मोहन-शक्ति को देख कर आप दग रह जायेगे।

देखि री हरि के चचल नैन।
खजन मीन मृगज चपलाई, नहि पटतर एक सैन ॥
राजिव-दल, इन्दीवर, शतदल, कमल कुशेशम जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै विगसत, ये बिगसे दिन राति ॥
अरुण असित सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गङ्ग जमुन मिलि आगम कीन्हो आय ॥

कृष्ण का प्रत्येक अङ्ग, प्रत्येक आभूषण मानो काम की सम्मोहकता का प्रतीक था। गोपिया कृष्ण के सभी अङ्गो पर मोहित थी। देखिए—

श्याम अग युवती निरखि भुलानी।
कोउ निरखति कुडल की आभा यतनेहि माझि विकानी ॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी शिथिल भई ज्यो पानी।
देह गेह की सुधि नहि काहू हरषन को पछितानी ॥
कोउ निरखति रही ललित नासिका यह काहू नही जानी।
कोउ निरखति अधरन की सोभा फुरत नही मुख बानी ॥
कोउ चकृत भई दशन-चमक पर एक चकचौधी अकुलानी।
कोउ निरखि द्युति चिबुक चारू की सूर तरुनि बिततानी ॥

मालूम होता है पुरुष के अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा देख 'प्रकृति' आत्म-सुधि खो बैठी है। हित हरिबश जी का कृष्ण-राधा वर्णन देखिए, वहा भी एक नूतनता मिलेगी।

देखौ भाई, सुन्दरता की सीवा।
व्रज-नव-तरुनि-कदव-नागरी निरखि करत अध ग्रीवा ॥
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर वदनारविद की सोभा कहति न आवै ॥

'पुरुष की शोभा पर नारी प्रकृति' का आत्म-समर्पण कितने सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। रीतिकाल के कवियो ने भी राधा-कृष्ण के मादक रूप-ऐश्वर्य की कल्पना की है। 'देव' का एक सवैया देखिए—

पायन नूपुर मञ्ज बजै कटि किङ्किनि मे धुनि की मधुराई।
सावरे अङ्ग लसै पर पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बडे दृग चचल मन्द हँसी मुख चन्द जुन्हाई।
मै जग-मन्दिर-दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सवाई॥

भक्त कवियो ने भगवान कृष्ण के रूप की शोभा की एक से एक सुन्दर कल्पना कर वर्णन किया है। रूप के आकर्षण का परिणाम होता है रति भाव का उद्रेक। भगवान श्रीकृष्ण हिन्दी काव्य मे रति-भाव के आलम्बन है। यह रति क्रमश पाच प्रकार की होती है शान्ति, प्रीति, अनुकम्पा और मधुरा और इसी क्रम मे भक्त भी पाच प्रकार के माने गये है शान्त, यास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर स्वभाव के। इन पाँचो प्रकार की रति का शृगार और शान्त मे समाहार हो जाता है। काव्य के शेष भाव—रौद्र, वीर, वीर, करुण, वीभत्स, भयानक, हास्य और अद्भुत इन्ही रति भावो के सहायक होकर सचारी रूप मे आते है और उनके आश्रित होकर रस का स्थान प्राप्त करते है रति भावना मे सबसे ऊँचा स्थान मधुरा रति का माना गया है। माधुर्य भाव की रति मे भक्त कवि राधा के मधुर प्रेम का चिन्तन कर स्वय राधा बन जाने की कामना करते हैं और कदाचित इसी कारण दाम्पत्य-प्रेम की छोटी-छोटी बातो का चित्रण करने मे गौरव का अनुभव करते है। 'हिन्दी का कृष्ण साहित्य, इसी कारण, स्त्री पुरुष की ऐहिक लीलाओ से इतना अधिक ओत-प्रोत है, और यही कारण है कि कृष्ण साहित्य शुद्ध धार्मिक साहित्य होते हुए भी शुद्ध लौकिक साहित्य के सभी गुणो से युक्त है।'[1] मेरा विश्वास है कि कृष्ण-काव्य-धारा के विकास और विस्तार का मुख्य कारण कवियो की यह स्वच्छन्दता ही रही है। रीति काल के काव्य की सर्व-प्रधान प्रवृत्ति राधा कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम का चित्र अकना ही है। यद्यपि यह भाव शुद्ध लौकिक ही है परन्तु कृष्ण नाम की पवित्रता और इससे संबद्ध धार्मिकता ने इस कलुष-वासनामय माधुर्य भाव को पवित्र माधुर्य से सम्बन्धित किया है। कदाचित् यही कारण है कि हमारा कृष्ण-साहित्य धर्म के आचल से सदा बधा रहा। कविवर भिखारीदास जी ने स्पष्ट शब्दो मे इसी भाव की अभिव्यक्ति की है.—

आगे के सुकवि रीझिहै तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।

---

१ हिन्दी का वैष्णव साहित्य।

सूर तथा अन्य कवियो का राधा-कृष्ण-प्रेम वर्णन अपूर्व है। यमुना तट पर प्रथम मिलन का वर्णन देखिए—

बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहा रहति काकी है वेटी देखी नही कहू ब्रज खोरी॥
काई को हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति श्रवणनि नद ढाटा करत रहत माखन दधि चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लै है खेलन चलौ सग मिलि जोरी।
'सूरदास' प्रभु रसिक सिरोमणि बातन भुरइ राधिका मोरी॥

गोरी राधा को बातो मे भरमा कर कृष्ण राधा के हृदय को प्रेम मे आवद्ध कर लेते है। कृष्ण और राधा की रति-क्रीडा और प्रेम-क्रीडाओ का वर्णन तो और भी अपूर्व है। इस प्रेम का परिणाम उपालम्भ रूप मे दिखाई पडता है। इसी कारण विरह-काव्य 'भ्रमर गीत' मे राधा-कृष्ण और गोपियो की प्रेम-व्यजना का मधुर-करुण रूप ही अभिव्यक्त हो पाया है। वियोग व्यथा का स्वरूप जानना हो तो कृष्ण-परक साहित्य का 'भ्रमर गीत' उठा कर पढ जाये, सयोग के चित्र तो सर्वत्र मिलेगे। रसखान का एक चित्र देखिए—

बैनु बजावत, गोधन गावत, ग्वारन के सग गोमधि आयो।
बासुरी मे उन मेरोही नाम लै साथिन के मिस हेरि सुनायो॥
ऐ सजनी, सुनि सास के त्रासनि, नद के पास उसासनि आयो।
कैसी करो रसखानि तही चित चैन नही, चित चोर चुरायो॥

मिलन की उत्कठा और प्रेम की तीव्रता का यह सयोग कहा मिल सकेगा ? जौवन की कठिन घडियो में ये सरस पंक्तिया मन को सराबोर करती है परन्तु जब वियोग की तीव्र ज्वाला मे सारा ब्रज-प्रान्त हाहाकार करता दीखना है तो 'सूर' की ये पक्तियाँ मावस-पटल खिच जाती है और आखे उमड कर सावन भादो मनाने लगती है।

निशि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे॥
दृग अजन लागत नहिं कबहू उर कपोल भए कारे।
कचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे॥

कृष्ण भक्ति-शाखा के कवियो ने हिन्दी साहित्य पर काफी प्रभाव डाला है। भक्ति-युग के परवर्ती युग मे रीति-कालीन साहित्य को उत्तराधिकार रूप में राधा-

कृष्ण का प्रेम ही मिला था। फलत राधा कृष्ण के प्रेम को नायक-नायिका का प्रेम समझ कविगण अनूठे भावो की माला गूथते रहे और साहित्य को समृद्ध करते रहे। भक्ति-भावना और धार्मिक भावना से शून्य होने पर भी रीतिकालीन कवियो की वाणी मे माधुर्य का चमत्कार अवश्य है। इन कवियो मे बिहारी, देव, पद्माकर आदि हजारो के नाम सामने आ जाते है। भक्ति और शृङ्गार (विशेषत शृङ्गार) का सम्मिश्रण बिहारी मे देखिए —

किसी न गोकुल-कुल वधू, काहि न किन सिख दीन।
कौनै तजी न कुल गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन॥

यद्यपि इस दोहे का भाव राधा-कृष्ण या गोपियो का प्रेम है परन्तु व्यजना दूसरी है। कुल-मर्यादा की लाज को छोड कर नायिका को नायक के पास आ जाने का सन्देश और आग्रह है। कविवर 'देव' की पक्तिया तो इस क्षेत्र की अद्वितीय ही समझिए। एक उदाहरण लीजिये —

राधिका कान्ह को ध्यान धरै तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यो अंसुवा बरसै बरसाने को पाती लिखै लखि राधे कौ ध्यावै॥
राधे ह्वै जाय घटीक मे 'देव' सु-प्रेम की पाती लै छाती लजावै।
आपुनें आपुही मे उरझै, सुरझै, उरझै, समुझै समुझावै॥

कृष्ण-काव्य-धारा की परम्परा मे जहा रीतिकाल के कवियो ने भक्ति-भावना को कलुष शृङ्गार मे डुबो कर काव्य का विषय बनाया, वहाँ आधुनिक काल के कवियो ने भक्ति-भावना को कलुषता के कर्दम से उठा कर उच्च पद पर लाने का सफल प्रयत्न किया। ऐसे कवियो मे भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' आदि का नाम चिर-स्मरणीय है। भारतेन्दु जी की कृष्ण-भक्ति अपूर्व थी। अपने लघु जीवन मे उन्होने जैसा कृष्ण-परक-साहित्य निर्मित किया वह अमूल्य और असाधारण है। उनका एक पद देखिए .—

हम चाकर राधा रानी के।
ठाकुर श्री नदनदन के वृषभानु लली ठकुरानी के॥
निरभय रहत, बदत नहि काहू उर नहि डरत भवानी के।
'हरीचद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के॥[1]

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली

हरिऔध जी के 'प्रिय प्रवास' मे कृष्ण का लोकरजककारी स्वरूप चित्रित हुआ है जिसकी उपेक्षा समस्त कृष्ण-काव्य धारा के कवियो ने की थी। भगवान के लोक-सग्रही रूप का जो दृष्टान्त तुलसी ने 'मानस' मे रखा था उसी के अनुरूप 'हरिऔध' जी ने कृष्ण को बनाना चाहा और कुछेक अश मे वे सफल भी हुए। कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को उज्ज्वल रूप मे रख कर हरिऔध ने कृष्ण-काव्य-धारा मे एक नूतनता का रग भरा। 'रत्नाकर' जी ने भी परम्परा रूप मे ज्ञान और योग की अपेक्षा भक्ति और प्रेम की महत्ता दिखलाने के लिए 'उद्धव शतक' का निर्माण किया। 'विरह-काव्य' का यह एक महानतम ग्रन्थ है। उद्धव जी का आगमन सुन कर गोपियाँ एकत्रित हो जाती है और प्रेमातुर भाव से कृष्ण का सन्देश तथा कुशल समाचार पूछती है। इस समय प्रेम से गोपियो की जो दशा हो जाती है उसे देखकर ज्ञानी और विरागी उद्धव 'सूखे से हम मे से सकब के से रुके से थके, भूले से भ्रमे से भमरे से मकुराने से। होले से हले से हूल-हूले से हिय मे हाय, हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से' हो जाते है। वास्तव मे ज्ञान 'गोपनि के प्रेम को प्रवाह मे' भक्ति के आवेश मे बह जाता है। 'रत्नाकर' जी का मुक्तक काव्य मौलिकता और स्वाभाविकता, प्रसाद और माधुर्य एव मधुरता और चित्रोपमता की दृष्टि से अपूर्व है।

साराश कि कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियो ने अपनी बहुमूल्य कृतियो द्वारा हिन्दी काव्य-साहित्य के सौरभ को देश-व्यापी बनाने मे सफल सहयोग दिया। डॉ० श्यामसुन्दर दास जी ने 'अष्टछाप' के कवियो के लिए जो लिखा है वह वस्तुत. कृष्ण-परक-साहित्य का निर्माण करने वाले सभी कवि-कवयित्रियो के सम्बन्ध मे पूर्णत घटित होता है। "अष्टछाप के कवियो मे से प्रत्येक ने भक्ति भाव सयुक्त कृष्ण की उपासना की और पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के सुन्दर गेय पद बनाये। सबकी वाणी मे वह तन्मयता है जो गीति-काव्य के लिये परम उपयोगी है।..........शुद्ध प्रेम का प्रवाह बहा कर भगवान कृष्ण की स्तुति मे आत्म-विस्मरण कर देने वाले भक्त कवियो का हिन्दी कविता पर जो महान ऋण है, उसे हम सभी स्वीकार करेगे।"

अध्याय ६

हिन्दी के रामभक्त कवि और उनका दर्शन

मानव-जीवन और अखिल ससार मे जब दुख-दर्द भर जाता है तो 'अभ्युत्थानि धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्' की भावना से भगवान कष्ट-निवारणार्थं अवतार धारण करते है, महापुरुषो का जन्म होता है और विपत्तियाँ वायु के थपेडो से रुई की भाति बिखर जाती है। ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर ११ वी शती तक भारत के शान्त मधुर जीवन मे जो राजनैतिक उलट-फेर हुए उनसे भारत की धार्मिक भावना पर भयानक आघात हुए। नाना प्रकार के अनाचार और व्यभिचार से जब पृथ्वी का बोझ बढ चला, घट घट मे व्यापक ईश्वर नारी के शरीर सौन्दर्य और वासना मे जब सीमित हो गया तो इस कर्दम से निकालने के लिए आचार्यो ने जन्म धारण कर भक्ति-भावना का श्रीगणेश कर प्राचीन परम्परा का पुनरुद्धार किया।

हिन्दी के भक्ति-युग का एक दार्शनिक आधार है। वैदिक काल मे कर्मकाण्ड की प्रधानता रही और वेदो में बहु देवता की पूजा प्रतिष्ठा की गई। इस कर्मकाण्ड की अति प्रधानता ने यज्ञ मे हिंसादि का विधान कर बहुदेववाद को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया। फलत उपनिषद युग मे ज्ञान की प्रधानता देखने को मिलती है जिसमे सूक्ष्म ब्रह्म, जीवात्मा, प्रकृति और पुरुष के सबध मे तात्विक विवेचन प्राप्त होता है। ब्राह्मण-धर्म की आस्तिकता और भयङ्कर हिंसादि की प्रतिक्रिया बौद्धमत मे प्रतिफलित हुई। ईश्वर के अस्तित्व का खडन कर इस दर्शन ने शून्यवाद और क्षणिकवाद का किया। इस मत का मूल 'अहिसा परमोधर्म' माना गया। दर्शनो की दृष्टि से बौद्ध धर्म के चार विभाग है, मध्यम दर्शन, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाविक। मध्यम दर्शन शून्यत्व, क्षणिकत्व तथा दुखरूपत्व की भावना करके शून्य में मिल जाने को निर्वाण मानता है। इस दर्शन की मान्यता है कि विश्व के सभी पदार्थ क्षणिक है। योगाचार द्वारा भावस्तरो के साथ भाव जगत का भी साक्षात्कार कर योग-साधना का विधान होता है। सौत्रान्तिक दर्शन की मान्यता बहुत कुछ शाक्त दर्शन से प्रभावित

है। वज्रयान का तान्त्रिक मार्ग इसी दर्शन को मानता है। इस दर्शन की मान्यता है कि भाव-भगत—पदार्थों—बुद्धिस्थित रूप और बाहर स्थित दृश्य रूप दोनो सत्य है। वैभाषिक दर्शन को सर्वास्तिवाद भी कहा गया है। यह दर्शन वस्तुत जडवादी है। चार्वाक के जडवाद को ही यह दर्शन उन्नत बौद्धिक रूप मे स्वीकार करता है। बौद्ध-धर्म के 'सर्व शून्य' के सिद्धान्त ने तान्त्रिक और कापालिक की उच्छृङ्खलताओ द्वारा व्यभिचार का व्यावहारिक रूप धारण किया। सत्य, अहिंसा, प्रेम, आदि के स्थान पर झूठ, व्यभिचार,हिंसादि का प्राबल्य हो गया। सारे देश मे बोद्ध और कापालिक छा गये थे। अधिकाश नरेश बौद्ध हो गये थे और सुरा-सुन्दरी के 'सहजसुखवाद' को मोक्ष का द्वार समझ बैठे थे। फलत भगवान शकराचार्य जी ने ईसा की आठवी शताब्दी मे शास्त्रार्थ के द्वारा बौद्ध पडितो को पराजित कर अद्वैत-ज्ञान की पुन पूर्ण प्रतिष्ठा की और इसका प्रभाव यह हुआ कि देश व्यापी बौद्ध मत लुप्त-सा हो गया।

शकराचार्य जी के अद्वैतवाद मे 'सर्वखल्विद ब्रह्म नहे नानास्ति किञ्चन्' की मान्यता है। एक ही निर्गुण, निराकार, निर्विकार चेतन सत्ता है। बाह्य दृश्य जगत् उससे भिन्न नही, प्रतीतिमात्र है। यह प्रतीति अज्ञान के कारण है। वास्तव मे यह दृश्य-जगत उसी ब्रह्म-सत्ता मे अध्यस्त है। नाम और रूप ये मन की वृत्तिया है। जगत नाम और रूप के अतिरिक्त कुछ नही है। यदि नाम और रूप को मिटा दिया जाय तो जगत का अस्तित्व ही नही रहेगा। नाम एव रूप की प्रतीति माया से है। माया अनिर्वचनीय है परन्तु ज्ञान से उसका अन्त हो जाता है अत माया की सत्ता नही। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, 'जगत प्रतीति है, मिथ्या है, अध्यास का विवर्त है'। जगत की प्रतीति ही लेकर अद्वैतवाद के सिद्धान्न बने हैं। इनमे बौद्ध दर्शन के तर्कों का उपयोग प्रकारान्तर से हुआ है। ब्रह्म की अद्वैत सत्ता और जगत के मिथ्यात्व को इस वाद मे प्रश्रय मिला है। ठीक ही किसी समालोचक ने कहा है। It is said not without truth, that Brahmanism killed Buddhism by a fraternal embrace".

शकर का अद्वैतवाद दो तीन शती बाद एक व्यावहारिक रूप पकडने लगा। ज्ञानाश्रयी सिद्धान्त जब व्यावहारिक बनने लगते है तो भक्ति और प्रेम के सर्वमान्य सिद्धान्त को साथ लेना उनके लिये परमावश्यक हो जाता है क्योकि ससार अधिकतर क्रियामय जीवन का प्रेमी है। इस मत का व्यावहारिक रूप वैष्णव भक्ति मत है जिसका मुख्यत प्रचार दक्षिण भारत मे हुआ। ईश्वर जीव और प्रकृति के सबंध में किसी न किसी रूप मे आचार्यों ने विचार किया है। दक्षिण के आचार्यों की लहर-आज भारत-व्यापी बन चुकी है।

आचार्य चतुष्टय मे काल-क्रम की दृष्टि से रामानुजाचार्य जी प्रथम आचार्य है जिन्होने विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त चलाया। वास्तव मे वे शकर के अद्वैत को मानते तो थे परन्तु उनका अद्वैत विशिष्ट था। शकराचार्य ने बौद्धिक ज्ञान को महत्व दिया था आचार को नही फलत सदाचार, उपासनादि तिरस्कृत हुए। किन्तु रामानुचार्य ने आचार को स्थान देकर बौद्धिक वेदान्ती सिद्धान्तो को मानते हुए दृश्य जगत को भी सत्य माना। चित्-अचित्-विशिष्ट तत्व ही ब्रह्म है। ब्रह्म के चेतन अश से चित् (Soul) और अचित से जड (प्रकृति या matter) हुई है। ब्रह्म जगत का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का अश है और ब्रह्म जड चेतन सत्ता का स्वामी। उपासना से अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति ही जीव का प्रयोजन है। ब्रह्म अपनी योगमाया-शक्ति से सम्पन्न होकर सृष्टि की रचना, पालन और सहार करता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ब्रह्म की तीन शक्तिया है। वह स्वेच्छा से अवतार धारण करता है। मुक्ति ब्रह्म की कृपा से ही सभव है। इसके लिए विशिष्ट द्वैतमत मे प्रपत्ति (शरणागति) का मार्ग बतलाया गया है। आराध्य के अनुकूल सकल्प और प्रतिकूल का त्याग जीव का कर्तव्य है। तात्पर्य कि शास्त्रानुमोदित समस्त कर्म आदेश स्वरूप है और विपरीत कर्म त्याज्य है।

११ वी शताब्दी मे रामानुजाचार्य जी के सिद्धान्तों से अपने विचार को पृथक करते हुए १२ वी शती मे निम्बार्काचार्य ने अपना द्वैताद्वैत मार्ग चलाया। इन्होने राधा और कृष्ण के द्वैत में ही अद्वैत ब्रह्म की कल्पना की तथा द्वैत और अद्वैत दोनो का सामजस्य करने वाला प्रकाश जगत को दिया। ब्रह्म सर्व शक्तिमान है और उसमें कभी विकार नही होता। जीव और जगत ब्रह्म के ही परिणाम हैं। ये ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी। ब्रह्म निर्गुण है किन्तु जगत का उपादान कारण है। मुक्ति का एकमात्र साधन उपासना है।

तीसरे आचार्य है हमारे मध्वाचार्य जी। मद्रास के मंगलूर जिले के बेलिल ग्राम मे नारायण भट्ट की पत्नी माता वेदवती के गर्भ से एक महापुरुष का जन्म स० १२९५ मे हुआ जिसका नाम वासुदेव पडा वही हमारे मध्वाचार्य जी है। मध्वाचार्य (पूर्ण ब्रह्म) का सिद्धान्त वस्तुत शङ्कर मत से पूर्णत विरोध रखता है। 'अद्वैत मत मे भगवान शकराचार्य परम उपासक थे; किन्तु काल क्रम से ब्रह्मात्मैक्य का अर्थ शुष्क बौद्धिक विलास हो गया। आचार तथा परलोक वाचको की कल्पना मान लिये गये। शास्त्र का विचित्र अर्थ होने लगा। आचार्य मध्व ने जीव की पृथक सत्ता का प्रतिपादन किया। जीव अपने सचालक स्वामी परमात्मा की आराधना करके नित्य शान्ति एव आनन्द प्राप्त कर सकता है। इस सिद्धान्त से उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि सबका पोषण हुआ। तात्पर्य कि ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है और जीव उससे पृथक है।

रामानुजाचार्य जी ने माना था कि आत्मा परमात्मा ही है (परन्तु अल्पाशत) उससे भी इस सिद्धान्त का विरोध है। इस द्वैतवाद की मान्यता है कि उपासना द्वारा जीव परमात्म-तत्व से तादात्म्य पा सकता है।

चौथे आचार्य है श्री विष्णु स्वामी जिन्होने शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त चला कर मानो शकर के अद्वैत को शुद्ध करने का प्रयत्न किया। इनके मत की पूर्ण प्रतिष्ठा १६ वी शती मे वल्लभाचार्य जी ने की। वल्लभाचार्य जी के अनुसार कार्य-कारण रूप जगत् ब्रह्म है। ब्रह्म अपनी इच्छा से जगत् रूप मे स्पष्ट हुआ है। भगवान् योगनिद्रा मे सोते थे, जाग कर देखा तो कुछ भी नही दीख पडा केवल सुनसान, शून्यता, नीरवता। तुरत ही सकल्प की स्फूर्ति हुई और निकल पडा 'एकोऽह बहु स्याम' मै अकेला हू, अनेक रूप हो जाऊ। यह सकल्प प्रकृति के ऊपर प्रतिभासित हुआ और सृष्टि बन गई[1]। जगत् भगवान् से भिन्न नही और न असत्य है। ब्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है। 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' की भावना के विपरीत शुद्धाद्वैत सिद्धान्त है। भगवान की कृपा से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, चाहिये परमात्मा का अनुग्रह जिसे सिद्धान्त मे 'पुष्टि' कहते है। तात्पर्य कि श्री वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तो को स्पष्ट करते हुए जगत् के मिथ्यात्व का खडन कर उपासना की प्रतिष्ठा की है। 'श्रीकृष्ण ही ब्रह्म है। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्त्ता, भोक्ता, निर्विकार, गुणातीत, समस्त धर्मों के आश्रय, ससार के धर्मो से रहित तथा जगत् के उपादान है। जगत सत्य है। वह कार्य है। ब्रह्म से अभिन्न उसकी परिणति है, क्योकि ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत् में पदार्थों का आविर्भाव या तिरोभाव होता रहता है। जीव बुद्ध तथा अणुरूप है। जीव के लिए ब्रह्म से प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रीति की चरम परिणति है श्रीकृष्ण मे पतिभाव की प्राप्ति। यह भगवदनुग्रह (पुष्टि) से होता है।[2]

सगुण धारा के कवियो की चर्चा के पूर्व तथा विषय-विश्लेषण के लिए भक्ति-युग की पूर्व पीठिका आवश्यक थी। स्वामी शकरचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद को जनता के सामने रखा वह सैद्धान्तिक रूप मे सर्वमान्य तो था परन्तु मानव की भावनात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल नही था। बौद्धिक विलास की सतुष्टि तो थी पर मन की तृप्ति न थी। फलत रामानुजाचार्य जी ने विशिष्टाद्वैतवाद का रूप जनता के सामने रखा जिसमे भक्ति और उपासना का सबल आधार वर्त्तमान था। इस आधार पर ही उन्होने श्री सप्रदाय की स्थापना की और नारायण की उपासना का देश-व्यापी प्रचार किया। इनके पश्चात् वैष्णव श्री सप्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानद

---

१ विष्णु पुराण।

२ कल्याण-हिन्दू संस्कृति अङ्क।

जी हुए जिन्होने प्रसिद्ध सत रामानद जी को दीक्षा दी। रामानुजाचार्य जी की १४ वी पीढी मे रामानद जी हुए थे और इन्होने अपना सप्रदाय चलाया रामानदी सम्प्रदाय। सन्त रामानन्द जी के बारह शिष्य भक्तमाल मे बतलाये गये है[1] अनतानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानिन्द, भवानन्द, कबीर, रैदास, सेन नाई, धना, गागौरगढ के राजा पीपा,, पद्मावती और सुरी[2] इन सभी ने राम की महिमा के अपूर्व गान गाये है।

हिदी साहित्य मे निर्गुण धारा के साथ साथ सगुण भक्ति की धारा निबन्ध रूप से बहती चली आ रही थी। जिस प्रकार निर्गुण धारा की दो शाखाए (ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा) हिन्दी ससार को अनमोल ज्ञान और प्रेम की शिक्षा देती है वैसे ही सगुण धारा की दो शाखाओ ने (रामभक्ति-शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा) राम और कृष्ण के प्रति प्रेम और माधुर्य का भाव जगाया। सगुण-भक्ति-धारा के अन्तर्गत राम-भक्ति-धारा और कृष्ण-भक्ति शाखा दोनो ही आती है। इन दोनो का विवेचन करना अभीष्ट है। किन्तु कृष्ण-भक्ति-शाखा विशेष रूप से बडी व्यापक है। हिन्दी कवियो का कृष्ण के प्रति बराबर अनन्य भाव और आकर्षण रहा है इस कारण कृष्ण-भक्ति-शाखा के आधुनिक कवियो की चर्चा साधारण रूप से ही करनी होगी अन्यथा यह विषय स्वय एक स्वतन्त्र पुस्तक का विषय है।

शुक्ल जी[3] ने ठीक ही लिखा है 'रामानन्द जी ने केवल यह किया कि विष्णु के अन्य रूपो मे 'रामरूप' को ही लोक के लिये अधिक कल्याण मार्ग समझ कर छाट लिया और एक सबल सप्रदाय का सघटन किया'

रामानुजाचार्य जी का चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म रामानन्द जी का 'राम' हुआ। दूसरी विशेषता यह है कि रामानन्द जी ने ईश्वर का द्वार सब के लिए खोल दिया। 'हरि को भजै सौ हरि का होई' का अनुसरण किया। देश-भेद, जाति-भेद, वर्ण-भेद सभी दूर कर दिया और 'राम' सबका प्यारा राम बन गया। इसी राम की भक्ति का प्रसार रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा ने किया और सहृदय राम-भक्तो ने अपनी सरस कविताओ द्वारा राम-नाम की मधुरता को देशवासियो के हृदय मे उतार देने का प्रयत्न किया और वे इस कार्य में सफल भी हुए। राम की भक्ति और महिमा के सफल गान करने वाले हिन्दी के क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास है जिनकी रचना रामचरित-मानम अत्यन्त प्रख्यात है। अपनी सर्वोन्मुखी मौलिक प्रतिभा और कला के बल पर कवि ने भारत के घर-घर में अपनी उपासना के

१ भक्तमाल-नाभादास
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०-१४५
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १४३

आलम्बन और अपने इष्ट देव 'राम' को जनता के हृदय पर समासीन किया। शुक्लजी ने लिखा है 'राम भक्ति का परम विषद साहित्यिक सदर्भ भक्त शिरोमणि कविवर तुलसीदास द्वारा ही सघटित हुआ, जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढता के युग का आरम्भ हुआ' [1]।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस', विनय पत्रिका आदि ग्र थो मे राम-भक्ति का वह रूप सामने रखा जो सर्वाङ्ग सुन्दर और पूर्ण है। जीवन के सभी पक्षो, समाज के सभी वर्गो, धर्म के सभी रूपो एव मन की प्रत्येक खामियो पर बडी सहृदयता से सपूर्णता से प्रकाश डाला है। गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य में सभी विचारो, धर्मो और सामाजिक विरूपताओ के सामजस्य का प्रयत्न किया है, कदाचित् यही कारण है कि तुलसी का राम भारत के घर-घर का राम, जन-मन के हृदय का राम हो गया। चाहे जिस दृष्टि से आप विचार करना चाहे आपको रामचरितमानस सतुष्ट कर सकेगा। काव्य कला की दृष्टि, भाव की दृष्टि रस-अलकार की दृष्टि, मत-मतान्तरो की दृष्टि मे सभी तुलसी की वाणी मे सस्वर गूज उठी है। 'राम' दशरथ-सुत राम को जो सम्मान तुलमी ने अपने काव्य द्वारा दिया वह आज तक किसी देश और किसी जाति के किसी व्यक्ति को नही प्राप्त हो सकता है।

'राम चरित मानस' 'नाना पुराण निगमागम' का निचोड है। तत्वज्ञान और और भक्ति योग के सबन्ध मे तुलसी ने श्री सप्रदाय के सिद्धातो को साफ-साफ रखने का प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि व्यापक और उदार थी यह भी ध्यान मे रखना चाहिए। सृष्टि का रहस्य जानने के लिये राम से लक्ष्मण का प्रश्न है :—

कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।

राम का उत्तर कितना सुन्दर देखिए [2] :—

थोरेहि मह सब कहहुँ बुझाई। सनहु तात मति मनु चितु लाई॥
मै अरु भोर तोर तै माया। जेहि ब्रस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जह लगि मनु जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचई जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बलू ताके॥
ग्यान मान जह एकहु नाही। देख ब्रह्म समान सब माही॥
कहइ तात सो परम विरागी। तिनु सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०—१४३
२. राम चरित मानस

धम ते विरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥
जाते वेगि द्रवऊ मै भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

माया ईस न आपु कह जान कहिय सो जीव ।
बन्ध मोक्ष प्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ॥

भक्ति का निरूपण राम के मुख से सुनिये —

भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो सत होंहि अनुकूला ।
भगति के साधन कहेउ बखानी । सुगम पथ मोहि पावहि प्रानी ॥
प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती । निज-निज करम निरत श्रुति रीति ॥
यहि कर फलु मनु विषय विरागा । तब मम चरन उपज अनुरागा ॥
स्रवनादिक नवभगति दृढाही । मम लीला रति अति मन माही ॥
सत चरन पकज अति प्रेमा । मन क्रम वचन भजन दृढ नेमा ॥
गुरू पितु मातु बधु पति देवा । सब मोहि कह जानइ दृढ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गद्गद् गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दभ न जाके । तात निरन्तर बस मै ताके ॥

बचन करम मन मोरि गति भजन करहि निहकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउ सदा विस्राम ॥

माया क्या है और माया के तम-पूर्ण पर्दे को चीरने का उपाय क्या है ? भक्ति! केवल ईश्वर भक्ति? नही, ससार के प्रत्येक कर्म के प्रति आस्था और प्रेम । माया, ज्ञान, वैराग्य, जीव, ईश्वर और भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख कर गोस्वामीजी ने अपनी धारणा साफ साफ रक्खी है । 'वादो के झझट मे वे पडना नही चाहते थे, सभी वादविवाद' उनके समझे-बूझे थे, तभी तो वे कहते है [1]

काउ कह सत्य झूठ कह कोउ जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचाने ॥

उनका ब्रह्म 'राम' ज्योति-स्वरूप है जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति करता है जो विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त है ।

बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु वाणी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । कहइ प्रान बिनु बास असेषा ॥

१. विनय पत्रिका ।

जहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धर्राहि मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कौशलपति भगवान् ।।

निर्गुण सगुण मे तुलसी ने कुछ भी अन्तर न माना । जिस प्रकार नानक ने कहा था [1] । निर्गुण आप सगुण भी ओही । कलाधार जिमि सगले मोही ।।

निराकार आकार आप, निर्गुण सगुण एक ।
एकहि एक वषाननो, नानक एक अनेक ।।

उसी प्रकार 'रामचरित मानस' मे तुलसी ने स्वीकार किया—

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा । गावहि मुनि पुरान बुध वेदा ।।
अगुन अरूप अलष अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सोहोई ।।

भगतिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा । उभय हरहि भव सभव खेदा' कह कर सभी का समन्वय कर एक 'ब्रह्म' राम के स्वरूप का निर्धारण कर जनता को मार्ग दिखा तुलसी ने अध्यात्म का पथ प्रशस्त किया । तात्पर्य कि तुलसी की राम-भक्ति में सभी धर्मो और मतो के समन्वय का प्रयास है । वस्तुत 'मानस' अब तक की अध्यात्मिक चेतना का प्रतिफल है । कवि ने एक तरफ तो लोकधर्म और भक्ति-भावना का समन्वय किया दूसरो तरफ कर्म, ज्ञान और उपासना का सामजस्य स्थापित किया । भक्ति को चरम-सीमा तक पहुँचा कर भी तुलसी ने लोक को न छोडा । लोक-कल्याण और लोक-सग्रह की भावना तुलसी की भक्ति का गुण है । तुलसी ने केवल अपने को उपास्य और उपासक तक ही सीमित नहीं रखा अपितु ससार को समाज की अनेक समस्याओ को अपने काव्य मे समेट कर काव्य को मगल-कारी बनाने का प्रयत्न किया है ।

तुलसी की व्यापक सफलता का कारण सफल अभिव्यक्ति है । 'रचना-कौशल, प्रबन्ध-पटुता, सहृदयता इत्यादि सभी गुणो का समाहार हमे रामचरित-मानस में मिलता है ।

मानस की काव्यगत विशेषताए भी उल्लेखनीय है । शुक्लजी [2] ने चार बातें बताई है देखिए —

(१) कथा-काव्य के सब अवयवो का उचित समीकरण ।
(२) मार्मिक स्थलो की पहचान ।
(३) प्रसङ्गानुकूल भाषा ।

---

१. सुखमनी
२. गोस्वामी तुलसीदास और हिन्दी साहित्य का इतिहास

(४) शृङ्गार-रस का शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यजक वर्णन ।

सिद्धान्तगत विशेषता तो इस पक्ति मे देखिए जिसमे विशिष्टाद्वैत आभासित हो उठा है —

सिया राम मय सब जग जानी । करौ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

तात्पर्य कि भारतीय जनता को देववाणी की पीयूष-धारा से आलावित करने वाले तुलसी ही है जिनकी राम-भक्ति समग्र-सृष्टि और सपूर्ण समस्याओ को अपनी सीमा मे रखकर प्रवाहित होती है । सार्वभौमिक सौन्दर्य और जिज्ञासा , सार्वजनिक सामाजिक समस्याए, व्यवहारिक बुराइया, तीर्थ व्रत, उपवास, माया, तिलक, गगा इत्यादि को अपनी लेखनी का विषय बनाकर कवि ने मानव-जीवन की बहुतेरी कठिनाइयो को दूर करने की चेष्टा की है । वास्तव मे वे लोक-धर्म के अनुयायी थे और समाज की जो कुछ भी भलाई सभव है उसी को ध्यान मे रख कैवल्य प्राप्ति और सासारिक सुख दोनो क लक्ष्य कर उन्होने रामचरितमानस जैसा अमूल्य रत्न तैयार किया । अवस्थी जी ने ठीक ही लिखा है । 'वे प्रवर्तक थे, काव्य मे युगान्तर कारक थे । वे ज्ञान के सस्थापक और भक्ति के प्राण थे । वे पूर्णता मे अपूर्ण और अपूर्णों मे पूर्ण थे । गोस्वामी जी मनुष्य रूप मे देवता और देवता के रूप मे मनुष्य थे ।' [1]

राम-भक्ति शाखा के प्रधान हिन्दी कवि तो भक्त-प्रवर तुलसीदास जी ही है किन्तु इनके अतिरिक्त भी कुछ कवि हुए है । स्वामी अग्रदास ने 'रामध्यान मजरी' प्राणचद चौहान ने 'रामायण महानाटक', हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक' और नाभादास जी ने राम-भक्ति सम्बन्धिनी कविताए लिखकर इस रामावत शाखा को पुष्ट किया । जिस प्रकार सौर-मण्डल मे सूर्य तेज-पुंज ज्योतिर्मय होकर प्रकाशित रहता है अन्य नक्षत्रो की आखे प्रकाश से खुलती ही नही, उसी प्रकार रामावत शाखा के अन्य कवि नक्षत्रो की भाति तुलसी रूप सूर्य के प्रकाश से मन्द है । रामभक्ति शाखा मे थोडे ही कवि हुए है इसका मुख्य कारण यह है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस साहित्य मे जिस परम्परा का पालन किया उसमे कवि के उच्छृङ्खल हो जाने की गुजाईश नही थी । फलत. कृष्ण भक्ति शाखा के समान रामावत शाखा मे कवि उच्छृङ्खल नही हो सकता, कल्पना की घुडदौड की सीमाए यहा है इस कारण भी कविगण इस ओर आकर्षित नही हुए । दूसरा कारण जो मुझे दिखलाई पडता है वह यह है कि गोस्वामी तुलसीदास ने राम-काव्य को अपनी चरम-सीमा पर पहुँचा दिया था उस सीमा से आगे राम-काव्य को बढाना यशलोलुप कवियो की शक्ति के बाहुर का काम था अत वे राम-काव्य को छोड कृष्ण-काव्य की ओर उत्मुख हुए । वस्तुत. राम-काव्य तुलसी

१. तुलसी के चार दल—पृ० ७१

का वह 'पिरामिड' है जिसकी ओर अन्य कवि देख तो सकते है परन्तु वैसे निर्माण की कल्पना नही कर सकते । रामकाव्य मे तुलसी एक स्तम्भ हैं जिसके आगे न कोई कवि बढ सका है न निकट भविष्य मे बढने की ही सभावना है ।

राम-काव्य पर लेखनी उठाने वाले अन्य कवियो मे रीति-युग के आचार्य कवि केशव और वर्त्तमान युग के राष्ट्रीय कवि गुप्त जी को विस्मरण नही किया जा सकता । साहित्यिक दृष्टिकोण से इन रचनाओ का भी अपना एक महत्व और स्थान है । केशव की 'रामचद्रिका' राम-विषयक काव्य होता हुआ भी राम के प्रेमी जन तथा साधारण जनता के हृदय मे भक्ति का उद्रेक करने मे असफल रहा । इसका मुख्य कारण भाषा की दुरुहता और क्लिष्टता जिस कारण साधारण पाठक की बुद्धि विषय को समझने मे असमर्थ रहती है । प्रबन्ध काव्य होते हुए भी उसमे रचना-चातुर्य और प्रबन्ध-पटुता का सर्वथा अभाव है और इतिवृत्त की शृङ्खला टूटी हुई है। ऐसा मालूम पडता है अलग २ पदो का सग्रह है जिसमे जीवन का स्पन्दन और कम्पन नही । गुप्त जी का ग्रथ साकेत' है जो शिक्षित समाज मे अत्यन्त प्रख्यात है । राम-चरित मानस की खूबी इस पुस्तक मे नही आ पाई है । कथा मे प्रवाह, भाषा मे तरलता और अभिव्यजना का चातुर्य साकेत मे है किन्तु जन-मन को रिझाने की शक्ति कदाचित् ही इस काव्य मे हो । उर्मिला की व्यथा का अश सहृदय के उर-वीणा के तारो को झकृत ही नही अपितु तोडे डालता है फिर भी राम-भक्ति की तुलसी जैसी पुन प्रतिष्ठा करने मे वे असमर्थ है । अत रामावत शाखा मे प्रबन्धकत्व और काव्यत्व का जैसा विकास और मानव-मन की जैसी गहरी अनुभूति तुलसी को प्राप्त हुई वैसी केशव और गुप्त जी को न मिल सकी । फलत तुलसी रामावत-शाखा के वैसे नक्षत्र है जिसकी ज्योति कभी मन्द न पडने वाली है ।

हिन्दी साहित्य मे रामभक्ति शाखा का प्रभाव सभी दिशाओ मे और सर्वत्र बडे व्यापक रूप मे पडा है । राम-साहित्य मे महाकाव्य, काव्य, नाटक, प्रबन्ध काव्य और गीति-काव्य ही नही लिखे गये बल्कि सभी छन्दो का व्यवहार भी हुआ । भाव-पक्ष की पुष्टि ही नहीं हुई, अभिव्यक्ति पक्ष की सबलता भी है । राम काव्य मे वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, गग आदि भाटो की कवित्त या सवैया पद्धति, कबीर दास और प्राकृत गाथाओ की दोहा पद्धति, ईश्वरदास और जायसी की चौपाई पद्धति का प्रयोग कर कवियो ने इसे आदर्श तक पहुँचा दिया । हिन्दी साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ 'रामचरित मानस' आज तक माना जाता है । सभी रस और सभी अलकार इसमे खोजने पर मिल जायेगे । सच तो यह है कि रामभक्ति शाखा के कवियो ने हिन्दी के साहित्य-भाडार की पूर्ति कर काव्य-धारा को एक नूतन गति दी ।

हिन्दी साहित्य मे राम-भक्ति धारा की कतिपय विशेषताए है। शुक्ल जी ने लिखा है कि राम काव्य मे 'सब प्रकार की रचनाए हुइ, उसके द्वारा कई प्रकार की रचना पद्धतियो को उत्तेजना मिली। कृष्णोपासक कवियो ने एक विशेष गीति-काव्य की पूर्ति की, पर रामचरित को लेकर अच्छे-अच्छे प्रबन्ध काव्य रचे गये।' मेरे विचार से रामभक्ति काव्य की यह एक विशेषता है अन्य विशेषताए निम्नाङ्कित हो सकती हैं।

(१) राम काव्य धारा का दार्शनिक आधार विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त हे।
(२) दशरथ-नन्दन राम राम-काव्य भे उपास्य माने गये है। वह सर्व गुण सम्पन्न रामानुजाचार्य के विष्णु है।
(३) भक्ति के क्षेत्र मे सभी बराबर माने गये है। जाति के बन्धन ढीले कर भक्ति मार्ग में समानता का प्रतिपादन किया गया है।
(४) भक्ति का पूर्ण विकास राम-काव्य मे है। (आधार पुराण हैं)
(५) राम-काव्य मे ज्ञान और भक्ति दोनो का प्रतिपादन किया गया है किन्तु भक्ति का स्थान ज्ञान से ऊचा माना है।
(६) राम-काव्य की विशेषता है कि राम नाम के जाप से मानव की मुक्ति हो जाती है।
(७) राम-काव्य के कवियो की भावना उपास्य के प्रति दास-भाव की रही है।
(८) राम-काव्य में तीर्थ, पर्व, व्रत को मान्यता मिली है।
(९) राम-काव्य ने वर्णाश्रम धर्म की महत्ता स्वीकार की है।
(१०) राम-काव्य मे सब रस, सब प्रकार के छन्द और सब प्रकार के काव्यो की रचना हुई है।
(११) लोक-कल्याणकारी के रूप में भगवान् राम की चर्चा राम-काव्य-धारा की महती देन है।
(१२) राम काव्य ब्रज और अवधी भाषा मे ही नही, खडी हिन्दी मे भी है।

साराश यह है कि रामकाव्य मे जो कुछ भी लिखा गया वह अलौकिक और अनूठा है। किसी अग्रेज लेखक ने तुलसी के सम्बन्ध मे जो एक पक्ति लिखी वह सारे रामकाव्य की महानतो का सूचक है। 'Whatever he wrote was literature and whatever he thought was art.'

अध्याय ७

हिन्दी काव्य में रीति-युग

उत्थान-पतन के क्रमिक चक्र द्वारा सृष्टि आवद्ध है। भक्ति-युग की उत्कृष्ट मनोभावना ने साहित्य को उन्नति के चरम सोपान पर पहुँचाया और रीति-युग ने पतन की राह दिखलाई। जीवन और ससार की यह परिवर्तनशीलता सम्मोहक है किन्तु इतिहास की पृष्ठ भूमि मे पतन-काल का मापना एक दर्द भरा उच्छ्वास है। यह ठीक है कि 'फरा सो झरा, बरा सो बुताना' परन्तु मानव न जाने क्यो केवल उन्नति के चरम-चक्र को मापना पसन्द करता है। वास्तव में रीति-युग वासनात्मक मानसिक-कायिक परितृप्ति का अभिव्यजना-काल है।

साहित्य के इतिहासकारो ने उत्तर मध्य काल या रीति काल का समय १७०० से १९०० सवत्[1] तक माना है। मित्रबन्धुओ[2] ने भी पूर्वालंकृत काल और उत्तरालंकृत काल का समय लगभग यही माना है सवत् १६८१ से १८८९ तक। भक्ति-युग के काव्य-सूर्य की प्रभा रीति-काल मे मन्द तो पडने लगी किन्तु काव्य-धारा का वेग न्यून न हुआ। हिन्दी काव्य में रीति के गुणो का सम्यक् समावेश शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल पहले-पहल केशव ने किया। उन्होंने आचार्य मामह और उद्भट आदि सस्कृत आचार्यों की काव्याङ्ग निरूपण प्रणाली का आश्रय लेकर रीति-युग की नींव डाली। यद्यपि महाकवि केशव[3] के पहले भी कृपाराम मिश्र ने रस-निरुपण किया था, मोहन लाल मिश्र ने 'शृङ्गार सागर' और 'करणेश' कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुति-भूषण' और 'भूप-भूषण' नामक शृङ्गार और अलकार सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे फिर भी महाकवि केशव द्वारा ही रीति-काल का प्रर्वतन हुआ।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा।
,, का इतिहास —रा० च० शुक्ल।

२. मिश्रबन्धु विनोद।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २८०—८३.

केशवदास जी चमत्कारवादी कवि थे। सस्कृत-साहित्य मे रीति-ग्रन्थो का अभाव नही था। रस, रीति, अलकार आदि विषय पर सस्कृत साहित्य मे काफी मीमासा हुई थी किन्तु केशवदास जी ने रस, रीति आदि के विकसित स्वरूप से हिन्दी मे काव्याङ्ग निरूपण न कर आरम्भिक रचनाओ से काव्याङ्ग-निरूपण किया। फलत हिन्दी काव्य सस्कृत-साहित्य की अमूल्य विकसित सामग्री से वचित हो जाता परन्तु केशव द्वारा प्रवर्तित काव्याङ्ग-निरूपण की विधि हिन्दी मे न चल पाई। केशव के ५० वर्ष बाद हिन्दी साहित्य मे रीति-ग्रन्थो की जो परम्परा चली वह केशव के बताये भामह, उद्भट आदि के मार्ग पर न चल कर सस्कृत के विकसित मार्ग पर चली और हिन्दी काव्य ने जगन्नाथ, मम्मट, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यो द्वारा निर्णीत सर्गण का अनुसरण किया। इस परम्परा मे रस, रीति और अलकार आदि के भेद पूर्णत स्पष्ट हो चुके थे। तात्पर्य कि हिन्दी मे रीति ग्रन्थो की परम्परा केशव के आदर्शो से भिन्न एक दूसरे आदर्श को लेकर चली।

परवर्ती सस्कृत आचार्यो द्वारा निर्णीत मार्ग की इस परम्परा को चलाने वाले चिन्तामणि त्रिपाठी जी है जिन्होने सवत् १७०० के लगभग 'काव्य-विवेक', 'कवि-कुल-कल्प-तरु' और 'काव्य-प्रकाश' नामक ग्रन्थो का निर्माण कर काव्याङ्ग-निरूपण किया। इसके उपरान्त तो हिन्दी काव्य मे लक्षण-ग्रन्थो की एक बाढ-सी आ गई। सर्व प्रथम दोहे मे अलकार या रस का लक्षण लिखना फिर कवित्त या सवैया मे अलकार का उदाहरण देना कवि का अनिवार्य कर्म हो गया। खेद की बात तो यह है कि सस्कृत साहित्य मे कवि और आचार्य की जो दो श्रेणिया थी उनके बीच की रेखा विलुप्त हो गई। सस्कृत साहित्य मे आचार्य और कवि पृथक पृथक रहे है परन्तु हिन्दी साहित्य मे कवियो ने ही आचार्य बनने का दावा किया। फल यह हुआ कि वे न अच्छे कवि बन सके और न आचार्य ही। कविता का यश तो गया ही आचार्यत्व की गद्दी भी नही मिली। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन-शक्ति की अपेक्षा होती है उसका सम्यक विकास नही हुआ था। यही कारण है कि हिन्दी के रीतिकाल मे न कोई सूर, तुलसी और मीरा जैसा कवि ही बन सका और न प्राचीन सस्कृत आचार्य मम्मट, जगन्नाथ या विश्वनाथ की समकक्षता ही प्राप्त कर सका। फलत लक्षण ग्रन्थो का निर्माण करते हुए भी सहस्त्रो रीति-काल के कवियो को आचार्यत्व का पद नही दिया जा सकता। कारण कि इनका साहित्य-ज्ञान अपरिपक्व था, साहित्य-शास्त्र की शक्तियो, गुण तथा दृश्य-काव्यादि के अङ्गो का पूर्ण ज्ञान न था। इस सम्बन्ध मे एक दूसरी बात पर भी ध्यान रखा जा सकता है। गद्य का विकास रीति-युग में नही हो पाया था इस कारण नये २ सिद्धान्तो पर विचार-वितर्क करने मे कठिनाई थी अत विषय की तर्कपूर्ण मीमासा न हो सकी।

संस्कृत साहित्य मे अलकारवाद, रीतिवाद, रसवाद, ध्वनिवाद और वक्रोक्ति-वाद आदि अनेक वाद पाये जाते है परन्तु स्वतत्र विवेचन न होने से हिन्दी मे इन वादो का मार्ग प्रशस्त न हो सका। काव्याङ्गो का विवेचन प्रतापगढ के भिखारीदास ने अपने 'काव्य-निर्णय' मे किया है। 'इन्होने छन्द, रस, अलकार, रीति गुण, दोष शब्द-शक्ति आदि सब विषयो का औरो से विस्तृत प्रतिपादन किया है।'[1] दास जी ने अलकारो पर भी प्रकाश डाला है। सस्कृत साहित्य मे अत्यानुप्रास नही मिलता, हिन्दी साहित्य मे इसका अभाव नही, इस विषय पर आपने 'काव्य-निर्णय' मे पूर्णता के साथ विचार किया है। फिर भी इन्हे आचार्य के पद पर समासीन करना कठिन है। कारण कि 'परिस्थिति से ये भी लाचार थे। इनके लक्षण भी व्याख्या के बिना अपर्याप्त और कही कही भ्रामक है और उदाहरण भी कुछ स्थलो पर अशुद्ध है। जैसे, उपादान-लक्षणा लीजिए। इसका लक्षण भी गडबड है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है।[2] वास्तव मे रीति-ग्रन्थो के निर्माण कर्त्ता सहृदय और ऊचे दर्जे के भावुक कवि थे। इनका मुख्य लक्ष्य कविता करना ही था और इसी कारण इनके द्वारा एक ऐसा शुभ कार्य हुआ जिसका उदाहरण ससार के साहित्य मे मिलना असभव-सा ही है। इन भावुक कवियो ने रस और अलकारो के ऐसे सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये है कि ससार के कविगण भी इन कवियो के पीछे पड जाते है। इनके उदाहरण बडे ही सरस, सुन्दर और हृदयग्राही है।

इन भावुक कवियो का झुकाव नायक-नायिका भेद की ही तरफ अधिक था फलस्वरूप सुन्दर मुक्तक-साहित्य का आविर्भाव हुआ। इन कवियो ने रसो में मुख्यत शृङ्गार लिया और इस रस का आलबन है नायिका। नख-शिख का वर्णन, उद्दीपन रूप षट-ऋतु का चित्रण, हाव,भाव, शृङ्गार कटाक्षादि का चित्रण ही कवि की आकुल आकाक्षा रही है। परिणाम यह हुआ कि जीवन की विविधता, अनेक रूपता तथा व्यापकता की ओर कवियो का ध्यान न रहा और कविता एकपक्षीय और एकाङ्गी बन गई। कवियो के व्यक्तित्व विकास मे भी बाधा पडी और कवियो की स्वतत्र चेतना का इस काल में परम अभाव है। 'जीवन की आलोचना' जो कविता का मुख्य मगलकारी ध्येय है वह स्वतंत्र तत्व भी रीति युग के कवियो की प्रतिभा से उद्भूत न हो सका। मानवेतर प्रकृति का रीति-कवियो ने तिरस्कार-सा किया और उनका 'नग्न माधुरी' शायद ही किसी को प्रभावित कर पाई हो। नायिका के आकार, प्रकार, रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य की नग्न माधुरी का रसपान तो इन कवियो ने कराया परन्तु 'शान्त स्निग्ध ज्योत्सना उज्ज्वल' के पश्चात् 'अम्बर पनघट मे डुबो रही तारा-घट उषा-नागरी' के चित्रोपम प्राकृतिक दृश्यो को अङ्कित करने मे रीति-

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ३३५
२ ,, —पृष्ठ २८७

युग असफल रहा। कही कही प्रकृति के चित्रण इस युग के काव्य मे उपलब्ध भी है परन्तु वे नायक-नायिका के उद्दीपन विभाव के रूप मे चित्रित किये गये है। उनमे न रोमाचित करने की शक्ति है न भावोद्रेक करने का बल। वस्तुत वे चित्र तो है कृत्रिम और यथार्थ सौन्दर्य की बहुमुखी चेतना से मीलो दूर।

भाषा की दृष्टि से रीतिकाल अवश्य प्रशसनीय है किन्तु ब्रजभाषा का जो साहित्यिक रूप क्रमश निखरा उसमे अवधी का मिश्रण सर्वाधिक है, पूर्वी और राजस्थानी के पुट की कमी नही। शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे इस ओर इगित भी किया है। 'रीतिकाल मे एक बडे अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नही हुई। भाषा जिस समय सैकडो कवियो द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढता तक पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिये थी कि जिससे उस च्युत सस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रज भाषा काव्य मे थोडा बहुत सर्वत्र पाया जाता है और नही तो वाक्य-दोषो का ही पूर्ण रूप से निरुपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।·· पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही हुई, जिससे भाषा मे बहुत कुछ गडबडी बनी रही।' भिखारीदास जी ने अपने 'काव्य निर्णय' मे इस मिश्रित भाषा की प्रशसा करते हुए लिखा है—

ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ।
मिले सस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ॥
ब्रज, मागधी मिलै अमर नाग यवन भाखनि।
सहज पारसी हू मिलै, षट विधि कहत बखानि॥

इसी कारण ब्रजभाषा के परिचय मे उन्होने कहा—

ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ,
ऐसे २ कबिन की बानी हूँ सो जानिए।

मिली-जुली भाषा के वे समर्थक और प्रशसक थे। शुक्ल जी की धारणा है कि साहित्यिक ब्रजभाषा मे वह स्थिरता नही है जो किसी साहित्यिक भाषा के लिये आवश्यक है। ब्रजभाषा का अध्ययन रूपो की अस्थिरता के कारण सचमुच कितना कठिन है। मुगलो के शासन और सम्पर्क के कारण भक्ति युग मे ही फारसी और अरबी के शब्दो का समावेश होने लगा था और रीति-युग ने भी इसे खूब अपनाया। फलत फारसी प्रभाव भी राति-युग पर रहा यद्यपि देशी रगो में रंगा है। अहात्मक शैली, विरहताप की अत्युक्तिया, दूर की सूझ और नाजुक-ख्याली पर फारसी शैली का ही प्रभाव है जिनके कारण शृङ्गार-रस के चित्रण मे वीभत्सता और

रसाभास दोष आ गये है। रसो मे शृङ्गार प्रधान रहा यद्यपि यदा कदा वीर रस की भी व्यजना हुई। राज दरबारो मे हिन्दी कविता के चलने का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियो और उनकी रचनाओ पर दरबार की शृङ्गारिकता, विलासिता, अकर्मण्यता की गहरी छाप है। इस युग के कवियो ने दोहो, चौपाइयो की पद्धति छोड कर कवित्त-सवैया को अपनाया।

इस रीतिकाल पर एक दृष्टि डालने से यह विदित हो जाता है कि इस काल मे ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जो सचारियो की धूप छाह की तरह आता जाता है। चिरन्तन समस्याओ, जीवन के सघर्ष, दैन्य और विषाद का समाधान रीति-साहित्य मे नही है। साहित्य की व्यापक भावना का सर्वथा अभाव दीखता है। जीवन की असीमता का प्रतिबिम्ब देने वाला साहित्य भक्ति-युग का साहित्य है रीति-युग का साहित्य तो आदर्शो से च्युत, हीन-सस्कृति का निस्सीम साहित्य है। फलत साहित्य ऐकान्तिक है, जीवन के आदर्शो से हीन, कृत्रिम और रग-विहीन फिर भी यह कहा जा सकता है कि रीति कालीन कवियो ने 'अपनी भावनाओ का कलुष राधा कृष्ण को ही अर्पण कर बहुत कुछ पाप-परिहार कर लिया था।'

रीति-युग के मुख्य रीति ग्रन्थकार है चिन्तामणि त्रिपाठी, महाराज जसवन्त सिह, बिहारी, मतिराम, मण्डन, कुलपति, सुखदेव, देव, भिखारीदास, रसलीन, दूलह, वेणीवदीजन, वेणी प्रवीन, पद्माकर, ग्वाल, गग, ताज आदि। इसके अतिरिक्त भी इस काल मे अनेक कवि हुए है जिन्होने अन्य विषयो पर भी (शृंङ्गार को छोड कर) रचना की है परन्तु इस युग मे प्रधानता है शृङ्गारी कवियो की ही। अत. इसी कारण इस युग का नाम रीति काल दिया गया है।

रीति-युग मे मुख्यत. आठ प्रकार की रचनाए मिलती है।[1]

(१) शृङ्गार रस की रचनाएं रचनेवाले कवि—रसखान, घनानन्द, ठाकुर आदि।

(२) शृङ्गार रस की लक्षण वद्ध रनचाए रचनेवाले कवि—पद्माकर, वेणी आदि।

(३) प्रबन्ध काव्य—१. चन्द्रशेखर का 'हम्मीरहठ'
२ गोरेलाल का 'छत्र-प्रकाश'
३ जोधराज का 'हम्मीर रासो'
४ सूदन का 'सुभान चरित' आदि

१ हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधार पर—

(४) वर्णनात्मक प्रबन्ध—दानलीला, मानलीला, जलविहार, मृगया, झूला, होली, जन्मोत्सब, विवाहादि पर (लगभग रीतिकाल के सभी प्रमुख कवि)

(५) नीति और ज्ञान के पद्य—बृन्द, गिरिधर, घाघ, बैताल, भगवत् रसिक।

(६) भक्ति काव्य—महाराज विश्वनाथसिह (३० ग्रन्थ)।
भक्तवर नागरीदास (५० ग्रन्थ)।

(७) वीर रस की रचनाए—लाल का 'छत्र प्रकाश'
भूषण का 'शिवराज भूषण' आदि।

(८) गद्य ग्रन्थ –वैष्णव वार्ताए—गोसाइयो द्वारा।

यद्यपि रचनाओ की अनेक कोटिया मिलती है परन्तु चिरन्तन साहित्य के निर्माण का अभाव खटकता है। भाषा की प्रौढता आपको रचनाओ मे मिलेगी किन्तु मौलिकता और साधना का अभाव खटकेगा।

अध्याय ८

हिन्दी काव्य में रहस्यवाद

रहस्यवाद की प्राचीन परम्परा है। भारतीय दर्शनो में रहस्यवाद का मूल रूप दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी साहित्य या कविता में रहस्यवाद के प्रयोग का पूरा श्रेय कबीर या जायसी को दिया जा सकता है परन्तु दर्शन-शास्त्रो में रहस्यवाद की विस्तृत रूप रेखा देखी जा सकती है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूत्र' और 'पुरुषवल्ली' की कथा में रहस्यवाद की सर्व प्रथम झलक मिलती है। उपनिषदो मे तो इसका पूर्ण स्वरूप झलकता है। 'केनोपनिषद्' की जिज्ञासा और 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' का रूपक रहस्यवाद की स्पष्ट घोषणा करता है। शिष्य गुरू से प्रश्न करता है—

ओ३म् केनेषित पतति प्रेषित मन केन प्राण. प्रथम प्रैति युक्त.।
केनेषिता वाचमिमा वदन्ति चक्षु. श्रोत्र क उ देवो युनक्ति ॥[1]

तात्पर्य कि 'जड रूप अन्त करण, प्राण, वाणी आदि कर्मेन्द्रिय और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियो को अपना अपना कार्य करने की योग्यता प्रदान करने वाला और उन्हें अपने २ कार्य मे प्रवृत्त करनेवाला जो कोई एक सर्वशक्तिमान चेतन है, वह कौन है ? और कैसा है। इस जिज्ञासा ने चिन्तन के क्षेत्र में रहस्यवाद का प्रादुर्भाव किया। इसी तरह का भाव इस श्लोक मे भी व्यक्त है—

कि कारणं ब्रह्म कुत स्म जाता जीवाम केन च सम्प्रतिष्ठा ।
अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्ता भरे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥[2]

अभिप्राय कि हे वेदज्ञ महर्षियो, इस जगत् का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है ? हम लोग किससे उत्पन्न हुए है ? किससे जी रहे है ? और किसमे हमारी सम्यक्

---

१ केनोपनिषद्—१/१

२ श्वेताश्वतरोपनिषद्—

प्रकार से स्थिति है ? किसके अधीन रह कर सुख-दुख मे निश्चित व्यवस्था के साथ हम रहेगे ? तात्पर्य कि हमारा सचालक स्वामी कौन है ?

इस प्रकार की जिज्ञासा ने मन मे कुतूहलता को जन्म दिया और चेतना का रहस्य जानने के लिए मानव मन मे अजीब आत्मिक आकर्षण व्याप्त हुआ। ऋषि की धारणा हुई कि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा साकार भी है और निराकार भी है तथा साकार-निराकार दोनो से रहित भी है। सम्पूर्ण जगत् उन्ही का स्वरूप है और वे इससे सर्वथा अलग भी है। वे सर्वगुणो से रहित, निर्विशेष भी है और सर्वगुण सम्पन्न भी है। उनका अभिव्यक्त अश तथा अनभिव्यक्त अश जो कुछ है परमात्मा का रूप है, ऋषि की इस कल्पना का विस्तार होता गया और जीव और परमात्मा के सबध मे महर्षि ने जो विचार किया वह यह

"द्वा सुपर्णा सुयुजा सखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पल स्वादत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥ [1]

साराश कि मनुष्य का शरीर एक पीपल वृक्ष है। ईश्वर और जीव—ये दोनो सदा साथ रहने वाले दो मित्र मानो दो पक्षी है। ये दोनो शरीर-रूप वृक्ष में एक साथ एक ही हृदय रूप घोसले मे निवास करते है। प्रारब्धानुसार भी सुख दु.ख रूप होते है उसे जीवात्मा रूप एक पक्षी तो स्वाद से खाता है दूसरा ईश्वर रूप पक्षी इन फलो को खाता नही, केवल देखता है। दो पक्षियो का रूपक देकर ऋषियो ने वृक्ष और आत्मा की अलग अलग स्थिति मानकर मानो मिलन का सकेत किया हे। मिलन की इस आकाक्षा मे जो प्रेम समन्वित है वही मेरे विचार मे रहस्य का मूल है।

हमारे प्राचीन साहित्य मे ईश्वर चिन्तन के दो ढग है एक निर्गुण दूसरा सगुण। भागवत् आदि रूपक-ग्रथो मे परमात्मा का एक ढग मे चिन्तन है जिसमे प्रेम और भक्ति का मिलन का अधार माना है दूसरा उपनिषद् आदि का ब्रह्म है जो केवल साधना और योग की आच से ही पाया जा सकता है। चिन्तन की इस द्विरूपता ने रहस्यवाद को दो रूप प्रदान किये है। हिन्दी साहित्य की कविता धारा मे रहस्यवाद के ये दोनो रूप उपलब्ध है।

रहस्यवाद की प्राचीनतम धारा वेदो और उपनिषदो की है जिसका प्रचार नाथ और सिद्ध सप्रदायो द्वारा हुआ। नाथपथियो की यह निधि परम्परा रूप में कबीर को मिली और कबीर का निर्गुण ब्रह्म इसी का प्रतिफल है। कबीर, दादू और मलूकदास

---

१. वही —चतुर्थ अध्याय श्लोक ६।

ऐसे सन्त है जिन्होने भगवान् के निर्गुण स्वरूप तथा अद्वैतवाद का प्रचार किया और अपनी रहस्यमयता या रहस्य-भावना द्वारा अद्वैत का प्रतिपादन किया। अद्वैत मे ऐक्य की भावना है। हाला कि रामकुमार वर्मा ने लिखा है अद्वैतवाद और रहस्यवाद मे कुछ भिन्नता है। अद्वैतवाद मे मिलाप की भावना का ज्ञान भी नही रहता, रहस्यवाद मे यह मिलाप एक उल्लास की तरग बनकर आत्मा मे जाग्रत रहता है। जब एक जल-बिन्दु अनन्त जलराशि मे मिलकर अपना व्यक्तित्व खो देता है तब उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान भी नही रहता, यह भावना अद्वैतवाद की है लेकिन रहस्यवाद मे अस्तित्व का पूर्ण विनाश नही हो पाता। मिलाप की भावना रहते हुए भी व्यक्तित्व की यह सूक्ष्म जागृति रहती है कि "मै मिल रहा हूँ ?" आत्मा और विश्वात्मा से मिलकर भी यह कह सकती है कि "मै जहा देखती हूँ वही लाल की लाली पाती हूँ। जब मै उस लाली को निकट से देखने जाती हूँ तो मै भी लाल हो जाती हूँ।" यहा मै और लाल मे एकता रहते हुए भी दोनो का अस्तित्व-ज्ञान अलग अलग है। व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए इस मिलाप की अनुभूति ही रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है।"[१] दरअसल मेरे विचार से मिलाप के समय व्यक्तित्व का ज्ञान कभी रह नही सकता। फलतः अद्वैतवाद वास्तव मे एकीकरण और ऐक्य दोनो ही है। जिस समय तक ज्ञान रहता है वहा तक ऐक्य की सीमा है और जहा मिलाप होता है वहा एकीकरण हो जाता है। अत रहस्यवाद आत्मा में परमात्मा का स्वरूप ज्ञान ही है। विश्वात्मा की प्राप्ति का आनन्दरस रहस्यवाद है।

"रहस्यवाद की कई परिभाषाए है यद्यपि शब्द-भेद है अर्थ भेद नही। डा० राम कुमार वर्मा का विचार है कि रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सबध जोडना चाहती है, और यह सबध यहा तक बढ जाता है कि दोनों में कोई अन्तर नही रह जाता।[१]" डा० भगीरथ मिश्र रहस्यवाद के संबंध में कहते हैं कि वह भावना, जो काव्य के अन्तर्गत, मानव और उसकी परिस्थितिओ अथवा जगत् को निराकार और सर्वव्यापी ईश्वर के घनिष्ट सबध मे चित्रित करने की प्रेरणा देती है, रहस्यवाद कहलाती है। शुक्ल जी का कथन है जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र मे रहस्यवाद है।[२] रहस्यवाद जीवन की एक प्रवृत्ति, दृटिष्कोण अथवा धारणा है, तो शुक्ल जी का विचार है कि आत्मा और परमात्मा,

---

१. देखिए कबीर का रहस्यवाद; पृ० १।

२. जायसी ग्रन्थावली—पृ० १९५।

जीव और ब्रह्म की प्रणयानुभूति ही रहस्यवाद है[1] श्री भगीरथ दीक्षितजी का विचार है—"रहस्यवाद मे भारतीय वेदान्त का ब्रह्म चिन्तन है, भक्तो की भगवान् विषयक सगुण भावना, दिव्य प्रणयानुभूति और लौकिक रूपको के माध्यम से पार्थिव अभिव्यक्ति की एक साथ रहस्यपूर्ण स्थिति अनिवार्य है।"[2] वस्तुत मेरे विचार से मिश्रजी की परिभाषा व्यापक रूप से रहस्यवाद के तन्तुओ को स्पष्ट करती है।

हिन्दी साहित्य का सब से पहला रहस्यवादी कवि कबीर है। कबीर पर वेदान्ती दर्शन का प्रभाव है। वह जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता को स्वीकार करते है परन्तु थोडा भेद भी मानते है। वह भेद माया के कारण है। माया का पर्दा जहा उठा वहा जीव और परमात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता। उनकी उल्ट बासिया इसी तत्व का सकेत करती है। कबीरदास कहते है.—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथ कथो गियानी॥

कुम्भ के जल में और कुम्भ के बाहर के जल मे कोई अन्तर नही। कुम्भ रूपी माया का पर्दा हटा बस जीव ईश्वर हो जाता है और माया शबलित ईश्वर ही जीव। दोनो मे कोई अन्तर नही। जीव और ईश्वर के इस मिलन मे एक उन्माद और स्पन्दन है। इस प्रेमानुभूति मे साधक आत्म-विस्मृत हो जाता है। 'मै' 'मेरा' 'तू' 'तेरा' का भी ख्याल नही रहता। ससार के सारे बन्धनो को तोड कर मनुष्य की आत्मा रागात्मक हो जाने के कारण ऊपर उठ जाती है और उस निराकार, निर्विशेष परमात्मा के समीप अपने को डाल देती है। इस मिलन मे कोई स्वार्थ नही, इस गति मे कोई कलुष नही, वह तो प्रेम-मन्दिर के दीप के समान केवल जलने में, जल कर पञ्च तत्वो में मिल जाने मे प्रेम की पूर्ति मानता है। यही पर आराधक और आराध्य, उपास्य और उपासक एव आत्मा और परमात्मा तदाकार हो जाते हैं और दोनो का एकीकरण हो जाता है। किसी अग्रेज कवि ने भी कहा है—

"O be mine still, still make me thine
Or rather make me thine or mine"[3]

आत्मा और परमात्मा के इस एकीकरण का परिणाम यह होता है कि आत्मा को गभीर सत्य का परिचय हो जाता है। जीवन में परम शान्ति का उदय, अनन्त

१. काव्य में रहस्यवाद
२ हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास; पृ० ४२३।
३. महादेवी काव्य परिशीलन पृ० २६ पर उद्धृत

शक्ति और चेतना का बोध होता है। प्रेम के कारण मन में श्रद्धा, भय, कुतूहलता, प्रणय की भावना बद्धमूल हो जाती है। इस एकीकरण से आत्मा मे एक पागलपन छा जाता है वह दूसरे की तरफ देखना भी पाप समझता है। Nicholson[1] ने कहा है: —"God must be the sole object of adoration, that any regard for other objects is an offence against him." यह अनुभूति तो तभी प्राप्त हो सकती है जब प्रेम की पवित्र अन्त सलिला सदा प्रवाहित होती रहे। प्रेम के वश मे है भगवान्' और जब कबीर की तरह 'राम की बहुरिया' आत्मा बन कर विक्षिप्त हो जाती है तो उस तन्मयता मे मिलन होता है। प्रेम की इस महत्ता को Abul Allah ने कहा है .—

"A church, a temple, or a Kaba stone,
Kuran or Bible or a matyr's bone.
All these and more my heart can tolerate,
Since my religion is love alone."

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्त्तक कबीर के रहस्यवाद से प्रेमाश्रयी शाखा के रहस्यवाद या सूफियो की रहस्यभावना मे समानता नही है। एक निर्गुण के प्रति रहस्यभावना रखता है दूसरा भागवत के प्रेम-मूलक रूप की सैद्धान्तिक रूप से प्रणयानुभूति करता है। इस चिन्तन-धारा के अन्तर्गत जीवात्मा परमात्मा को पाने का प्रयत्न समाप्त कर, विघ्न बाधाओ के पर्वत को चूर चूर कर अपने हृदय में देवता की मूर्ति पर प्रेम के प्रसून चढा कर प्रेम-भावना से जब उसे प्राप्त करना चाहता है तो रहस्यवाद की उद्भावना होती है। यह रहस्यवाद निर्गुणो के बौद्धिक रहस्यवाद से भिन्न है क्योकि इसमे हृदय-पक्ष की प्रबलता रहती है। इस चिन्तन-धारा का प्राणी अपने मन मे विश्वात्मा की एक मधुर कल्पना करके उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है, विपत्तियो का सामना करता है और अन्त मे वह उसके निकट पहुँच जाता है। विश्वात्मा को आत्मा से मिलने और आत्मा को विश्वात्मा का सानिध्य प्राप्त करने की शुभ्र आकाक्षा रहती है इसका मूल कारण है कि दोनो वास्तव मे एक ही तत्व है। जायसी ने 'पद्मावत' मे दिखलाया है कि राजा रत्नसेन हीरामन के मुख से पद्मावती की प्रशसा सुन घर, राज्य, स्त्री, पुत्र छोड विरागी होकर घर से निकल पडता है। मार्ग मे अनेक कठिनाइया आती है और वह साधना द्वारा उनका हल निकालता है और पद्मावती के प्रति अपने पूर्ण प्रेम का परिचय देता है। पद्मावती उसके प्रेम की परीक्षा लेती है और जब रत्नसेन उस परीक्षा में सफल हो जाता है तो वह भी उससे मिलने के लिये तडपने लगती है। सूफी मत मे स्त्री पुरुष के लौकिक प्रेम को ही पारलौकिक रूप दिया है, सच्चे हृदय से प्रेमी जब प्रेमिका को

1 The idea of Personality in Sufism.

प्राप्त कर लेता है तो ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। भागवत की इस प्रेम-भावना को मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनाया है परन्तु उसे जो रूप दिया वह भागवत के रूप से भिन्न है। जायसी पर फारसी साहित्य और दर्शन का प्रभाव भी है। फारसी साहित्य मे पुरुष स्त्री के प्रेम मे दीवाना होकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है परन्तु भागवत मे या भारतीय साहित्य में स्त्रिया प्रेम-विह्वला हो पुरुष को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। कबीर की पक्ति 'मै तो राम की बहुरिया' मे इसका आभास है। जहा गोपियाँ कृष्ण के प्रेम मे पागल होकर कृष्ण को प्राप्त करती हैं वहा जायसी का रत्नसेन पद्मावती के रूप-सौन्दर्य पर न्योछावर होकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। भारतीय साहित्य मे परमात्मा पुरुष और जीवात्मा स्त्री है फारसी मे ठीक इसके विपरीत परमात्मा स्त्री और जीवात्मा पुरुष है। फिर भी जायसी ने बडे यत्न से परमात्मा की प्रणयानुभूति का रूपक बाधा है। पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन मे आप भव्यता पायेगे, ईश्वरीय सौन्दर्य की झलक। प्रेमात्मक रहस्यवाद और विरह की उदात्त कल्पना सूफी सिद्धान्तो की देन है इसे स्वीकार करना ही पडेगा। इस प्रेम चित्रण द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि रत्नसेन अपनी सम्पूर्ण भावना से प्रेम करता है और उसका हृदय अहर्निश पद्मावती के मुखारविन्द की शोभा का दर्शन चाहता है। आत्मा और परमात्मा की ऐसी अनुभूति से ही रहस्यवाद की सृष्टि होती है। अन्डरहिल[1] के एक रूपक से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मेकडेवर्ग की मेक्थिल्ड को एक दर्शन हुआ—

आत्मा ने भावना से कहा—

'शीघ्र ही जाओ और देखो कि मेरा प्रियतम कहा है ? उनसे जाकर कहो कि मै तुम्हे प्यार करती हू।'

भावना चली क्योकि वह स्वभावत ही शीघ्र गामिनी होती है और स्वर्ग मे पहुँच कर बोली—'देवादिदेव, द्वार खोलिए और मुझे भीतर आने दीजिए।' उस स्वर्ग के स्वामी ने कहा—'इस उत्सुकता का क्या तात्पर्य है ?' भावना ने उत्तर दिया 'भगवान, मैं आप से यह कहना चाहती हू कि मेरी स्वामिनी अब अधिक देर तक जीवित नही रह सकती। आप इसी समय उसके पास चले आयेंगे तब वह शायद जी जाय। अन्यथा वह मछली जो सूखे तट पर छोड दी जावे कितनी देर तक जीवित रह सकती है ?' ईश्वर ने कहा—"लौट जाओ। मै तुम्हें तब तक भीतर न आने दूगा जब तक कि तुम मेरे सामने वह भूखी आत्मा न लाओगी, क्योंकि उसीकी उपस्थिति में मुझे आनन्द मिलता है।"

1. Mysticism

तात्पर्य कि सूफी सन्तो ने केवल अपनी भावना से नही अपितु अपने समस्त हृदय से, आत्मा की सारी शक्ति से प्रियतम को पाने का सफल प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्य के भक्ति-युग मे रहस्यवाद की भावना दृष्टि गोचर नही होती। इसका एक स्पष्ट कारण था। भक्तो के भगवान् साकार थे और ऐसे ब्रह्म के गान मुक्त कठ से भक्तो ने किया था। साकार भगवान् मे रहस्य ही नही क्योकि वह ऐसे ब्रह्म थे जिनके साथ हमारे भक्त कवि सखा-साथी की तरह रहते है, सेवक की तरह सेवा करते है जो उनकी पुकार पर आर्त्तो का कष्ट दूर करने क्षीर सागर से दौडे आते है। फल-स्वरूप भक्ति-युग में रहस्यवाद की झलक नही मिलती। वहा तो ईश्वर आखो के सामने प्रत्यक्ष है ऐसे भगवान् को छोड वह रहस्य की क्लिष्ट भावना को क्यो अपनाए ? उसका उपास्य, उसकी आराधना का आलबन प्रेम और भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है उसके लिये कल्पना की घुडदौड और मस्तिष्क का व्यायाम जरूरी नही। वहा तो निष्कपट और सरल हृदय चाहिये जिसके वशीभूत भगवान् है। फिर भी हिन्दी की सगुण धारा मे यत्र तत्र रहस्यवाद के छीटे मिलते है परन्तु उन छीटो के कारण उन भक्त कवियो को रहस्यवादी कहना उनका उपहास करना होगा।

कबीर द्वारा प्रवर्तित रहस्यवाद की भावना सगुण काल मे आकर क्रमश क्षीण हो गई किन्तु १६ वी शती के अन्त तक वह स्रोत बहता हुआ दीख पड़ता था। कबीर के अतिरिक्त जायसी, नूरमुहम्मद, कुतबन, मझन, मलूकदास, सुन्दरदास, दादू आदि कवियो ने अपने काव्य मे रहस्यभावना को प्रश्रय दिया और हिन्दी काव्य का रहस्यवाद लुकता-छिपता आगे बढता रहा। भक्ति-युग मे निराश्रित होकर रहस्यवाद ने रीति-युग मे सास ली किन्तु इस युग मे भी रीतिकालीन कवियो ने इसका तिरस्कार ही किया। रीतिकालीन कवियो का विषय था लौकिक प्रेम। नारी के जिस्म के चारो तरफ चक्कर ही लगाना कविवो का लक्ष्य था। फलत. १७ वीं शताब्दी से १६ वी शताब्दी तक रहस्यवाद मरणासन्न अवस्था में पडा रहा। राधा और कृष्ण की प्रेम-व्यजना पुरुष-प्रवृति का रूपक न होकर नायक-नायिका के लौकिक प्रेम की सूचना मात्र रहा। इस कारण रहस्यवाद के अस्तित्व की गुजाईश न थी। थोडे भक्त-कवि जो रीति-युग मे हुए उन्हे किसी से कोई मतलब ही न था। वे तो अपने आराध्य के समीप प्रेममयी वाणी के द्वारा पहुँचना चाहते थे। फलतः भक्ति-युग और रीति युग मे रहस्यवाद का कोई स्वरूप नही दिखाई पडता क्योकि १८ वी और १६ वी शताब्दी मे लौकिक प्रेम के भीतर अध्यात्म खो गया था।

वर्तमान युग सर्वाङ्गीन जागरण का युग है। इस शताब्दि के पहले दशाब्द से ही अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव और प्रकाश फैला। साथ ही बगला मे ठाकुर की गीताञ्जलि प्रकाशित हुई। इस कविता पुस्तक ने उस अर्द्ध-मृत रहस्यवाद को जो लगभग ३०० वर्षो से क्षुधाग्रस्त था, भोजन दिया। रहस्यवाद को एक नई चेतना मिली, उसकी आखो मे एक नवीन स्फूर्ति और ज्योति थी। किन्तु यह स्फूर्ति प्राचीन और नवीन प्रभावो का प्रतिफल थी।

प्राचीन रहस्यवाद और गीताञ्जलि युग के रहस्यवाद मे एक मौलिक भेद है। प्राचीन कविगण पहले विचारक थे बाद मे कवि और कविता को उन्होने अपने विचार के प्रचार का एक साधन माना था किन्तु आज का कवि पहले कवि है फिर साधक। फलतः आज के रहस्यवाद मे वाक्य की कलात्मकता की चमक दमक अत्यधिक है आत्मा के प्रकाश प्रणय का रहस्य कम। कबीर ने भौतिकता को लात मार कर काल्पनिक रहस्यवाद का आश्रय लिया था पर आज के कवि भौतिकता से हार कर लाचारी काल्पनिकता का आश्रय लेकर कविताए करते है। प्राचीन रहस्यवादियो का जीवन सन्तोषमय और शान्त था आज के कवियो का जीवन अशान्त और कष्टमय है। आज का कवि तो असन्तोष मे पलता और जलता रहता है। 'कीट्स' और 'शैली' की रहस्य-भावना मे यही असन्तोष प्रस्फुटित देखा जा सकता है। कीट्स का धर्म था सासारिक प्रेम और कर्म था लौकिक प्रेम। 'Love is my religion: my creed is love' इसी कारण वह वासनामय जीवन के सम्मुख विचारमय जीवन को महत्व नही देता था। (for the life of sensation rather than of thought) असन्तोष की ज्वाला मे जलता हुआ मृत्यु शय्या पर जो वह कल्पना करता है उससे हमारे प्राचीन भारतीय रहस्यवाद और आङ्ग्ल रहस्य भावना का अन्तर दीख पडता है। (Till love and fame nothingness do sink) अस्तित्व की यह कल्पना भयानक असन्तोष का प्रतिफल है। शान्ति की खोज जीवात्मा की पहली चेष्टा है जिसे हमारे प्राचीन रहस्यवादियो ने काव्यमय भावना द्वारा अभिव्यक्त किया है। जहा जीव और ब्रह्म का अपूर्व समन्वय है। इस समन्वय का एक व्यापक निदर्शन है प्रवृति मे प्रेयसी का आरोप या मानव और मानवेतर जीवन मे तादात्म्य की भावना। Shelly की यह उक्ति सुन्दर तादात्म्य भावना को स्पष्ट करती है :—

"The fountain mingles with the river
And the river with the ocean
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet emotion

Nothing in the world is single
All things by a land divine,
In one spirit meet and mingle
Why not I, with thine.

आज का रहस्यवाद मुख्यत काल्पनिक है। उसमे धार्मिक अनुभूति या साधना का स्थान नही है। धर्म और साधना आज के रहस्यवाद मे अस्तित्व नही रखते। वह आज काव्य की एक शैली के रूप मै दिखाई पडता है। भक्ति काल मे जिन प्रतीको के सहारे आध्यात्मिक प्रणय का सकेत दिया जाता था वे प्रतीक आज के प्रतीक नही रहे। आज के प्रतीक बदल गये है परिणाम यह हुआ है कि आज की रहस्यवादी कविताए जन जीवन के गले का हार नही बन सकी है। प्राचीन रहस्यवादी गीत तो आज भी सुनाई पड जाता है परन्तु आज के रहस्यवादी गीत जन-मन पर प्रभाव अकित करने मे असमर्थ रहे। नवीन नवीन छन्दो मे, सुन्दर भाषा में गीतो की अभिव्यक्ति हुई, काव्य-कला का विकास भी हुआ परन्तु फिर भी रहस्यवाद एक सकुचित सीमा मे आवद्ध रहा। आधुनिक काल के इस रहस्यवाद को कदाचित् छायावाद की सज्ञा दी गई है, जिसमे ईश्वर के प्रति केवल एक जिज्ञासा की भावना है जिसें प्राकृतिक उपमानो द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

आधुनिक युग मे अपनी आध्यात्मिक सतुष्टि के लिये रहस्यवाद को कवियों ने नही अपनाया बलिक लौकिक प्रेम की प्रच्छन्न व्यजना ही उनके अन्त मन की व्याख्या है। इस धारा के अन्तर्गत कई शैलियो मे रचना हुई है जिसमे गीति-शैली का स्थान प्रमुख है। हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक रहस्यवादी कवियो पर विदेशी प्रभाव पडा है। सूफी और अग्रेजी प्रभाव रहा है इसे निस्सकोच मान लेना चाहिये। भारतीय चिन्तन धारा मे समन्वय की भावना अत्यधिक रही है और इस कारण विदेशी प्रभाव को भी इसने आत्मसात् कर लिया है। रोमान्टिक युग की अग्रेजी कविता मुख्यत विरह गीत ही है और इन विरह-गीतो से हमारे कलाकार भी प्रभावित हुए है। आज के रहस्यवादी कवियो मे प्रमुख है 'प्रसाद' 'महादेवी' 'निराला' और 'पन्त' और आज का विषय है प्रेम, मिलन, प्रतीक्षा, विरह, प्रवृत्ति, प्रेम आदि। इसलिये आधुनिक काल की रहस्यवादी कविताओ मे विरह, मिलन प्रतीक्षा के गीत ही अधिक मिलेंगे और नये प्रतीको द्वारा इनकी अभिव्यक्ति हुई है। 'प्रसाद' जी कहते हैं—

"भरा नैनो मे मन में रूप, किसी छलिया का अमय अनूप"

इस कविता मे कितनी स्पष्टता है कही दुस्सहता नही, सर्वत्र आत्म-तुष्टि है, परन्तु कबीर का 'अह' तो ब्रह्म की खोज मे परेशान होकर कहता है—'तू तू कहता तू भया मुझ मे रहा न मै'।

दोनो मे सरलता की दृष्टि से कबीर का स्तर अत्यन्त ऊ चा है ।

नवीन जी कहते है—

"अरे ! किनारा बहुत दूर है मित्र मेरा भुजदड धरो ।
भर भर प्याले यौवन मदिरा के देना अब बद करो ।।"

महादेवी तो आधुनिक युग की मीरा' मानी जाती है । इनके गीतो मे रहस्य-वाद की मूर्छना साफ और स्पष्ट उतर सकी है । उन्हे न जाने क्यो विकलता होती है, जीवन मे एक अजीब बेचैनी । वे कहती है —

फिर विकल है प्राण मेरे ।
तोड दो यह क्षितिज मै भी देख लू उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पथ से युग, कम्प उसका छोर क्या है ?
क्या मुझे प्राचीर बन कर आज मेरे श्वास घेरे ?
फिर विकल है प्राण मेरे ।

यहा कवयित्री की औत्सुक्यपूर्ण तडपन अकित है । विश्व के रहस्य को विदीर्ण करने के लिये आत्मा का यह करुण क्रन्दन और तडपन है । किसी ने ठीक ही कहा है—महादेवी की कविताओ मे भावो की कसमसाहट देखकर यह न कहना चाहिये कि अभिव्यजना के वेग मे छायावाद है । यहा छायावाद नही रहस्यवाद कुछ उतर सका है । मेरी दृष्टि मे रहस्यवाद का सबध अभिव्यजना से नही, विश्वात्मा की प्रणयानुभूति से है । महादेवी लिखती भी है—"मानवीय सबधो में जब तक अनुराग जनित आत्म-विसर्जन का भाव नही घुल जाता तब तक वे सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नही होता । इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसके रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया ।"

साराश कि रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा की दिव्य प्रणयानुभूति है इस अनुभूति के गीत बडे सरस, मर्मस्पर्शी और उत्तम है । रहस्यवाद के अभिव्यजनात्मक गीतो मे एक अतीन्द्रियता है जो मानव के हृदय-प्रदेश को जीत लेने की शक्ति रखता है । गीतो के अतीन्द्रिय हो जाने का कारण कदाचित यह है कि "मनुष्य मनुष्य रहे, भगवान् भगवान् रहे और तब दोनो (अपने अपने रूप में) एक दूसरे के लिये व्याकुल हो उठें । रहस्यवाद मे इसी भावना को व्यक्त करने की चेष्टा की गई है जिस कारण रहस्यवाद की सारी कविताए इतनी रहस्यमय, इतनी स्वप्नमय, इतनी अतीन्द्रिय हो गई है ।"[१]

१ रहस्यवाद की रहस्यवादिता ।

अध्याय ६

हिन्दी-काव्य में छायावाद

रीति-युग की अतिशय आलकारिकता तथा द्विवेदी-युग की प्रबल इति-वृत्तात्मकता ने कवियो में एक नवीन जागृति पैदा की, जो विकासमूलक नही, क्रान्ति-मूलक है। द्विवेदी युग की सच्चरित्रता, आत्म-निर्भरता एव कर्त्तव्यपरायणता ने वस्तुत काव्य का गला घोट डाला था। उसमे सूक्ष्म कल्पना, भावुकता, और सौन्दर्य का पूर्णतः अभाव था। फलत. तरुण कवियो की पीढी ने रूढ़ि-ग्रस्त कविता के प्रति विद्रोह किया। यह विद्रोह 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म' का विद्रोह था। इन कवियो ने द्विवेदी-युग की सभी साहित्यिक मान्यताओ को विध्वस्त कर एक नवीन काव्य-शैली को अपनाया, जिसका नाम छायावाद चल पडा।

हिन्दी साहित्य मे छायावाद का प्रवर्तन करने वाले प्रथम कवि है 'जय शङ्कर प्रसाद', जिन्होने 'आसू' नामक काव्य की रचना कर नवीन काव्य-क्रान्ति की उद्घोषणा की। इस मार्ग पर चल कर छायावाद का पोषण किया 'निराला' 'महादेवी' और 'पत' ने। ये सभी कवि बगला से विशेष रूप से प्रभावित थे। रवीन्द्र बाबू की गीताञ्जलि और अग्रेजी की रहस्यात्मक (mystic) कविताए छायावाद को प्रेरणा और बल देती रही। प्रारम्भ मे पुराने ब्रजभाषा के पक्षपाती कवियो ने मजाक उडाने के लिये नवीन क्रान्ति का 'छायावाद' नामकरण किया पीछे चलकर यही नाम छायावाद ने ग्रहण किया।

सन् १८५७ की स्वातत्र्य क्रान्ति ने मानव मन मे निराशा के भाव भरे और कवि-गण जीवन की वास्तविक परिस्थितियो को भुलाने के लिए नैतिकता की ओर बढे। तदुपरान्त सन् १६१६ का भयानक विश्व-व्यापी महायुद्ध हुआ। इस महायद्ध ने हमारे देश की सभी परम्पराओ को हिला दिया और राजनैतिक जीवन की कठोर पृष्ठ-भूमि भी वैसी ही बनी रही। फल-स्वरूप काव्य-जगत् में एक नैराश्यमय

भावना का उद्रेक हुआ जिसमे जीवन और जगत् के प्रति एक विस्मरण की मुग्ध कारिणी भावना थी। इस भावना के झझावात से रीतिकालीन परम्पराए कपूर की नाई उड गई और द्विवेदी-युग भी अपनी विवेकशील मान्यताओं से भी कुछ न कर सका। भारतीय जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एव सास्कृतिक आन्दोलनो ने एक उथल-पुथल मचा दिया और उसकी प्रतिक्रिया हुई छायावादी कविताओ मे। किन्तु परिस्थिति की विषमता के कारण यह नवीन चेतना स्तब्ध रह गई। फलत वस्तु जगत् से तटस्थ होकर कवियो ने कल्पना और भावुकता द्वारा एक अपना अलग ससार बना लिया जिसमे विषाद-वेदना का प्राधान्य था। नवीन छायावादी कविता पर वैयक्तिकता का रग चढने लगा और हमारी कल्पना बौद्धिकता के स्तर पर पहुँच गई। छायावादी-युग की जागृत चेतना और बाह्य परिस्थिति का मेल नही होने की वजह से काव्य मे एक अतृप्ति, मानसिक वेदना और अवसाद की ध्वनि गूॅज उठी। इसी कारण कदाचित् वस्तु-जगत् के प्रति उपेक्षा का भाव छायावादी कवियो के अन्त मन मे विराजमान था। फलत वस्तु और विधान, रूढि और परम्परा के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति छायावादी साहित्य का विधान थी। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है "राजनीति मे जिन प्रेष्णाओ से गाधीवाद का विकास हुआ, साहित्य मे उन्ही प्रेरणाओ से छायावाद का जन्म हुआ।"

छायावाद की रूप रेखा स्पष्ट करने का प्रयास शुक्ल जी ने किया है। उनकी धारणा है कि छायावाद प्रारम्भ मे रहस्यवादी उक्तियो से मम्पन्न कविता का रूप था जिसमे अभिव्यजना का कौशल भी था। परन्तु पीछे चल कर वह केवल अभिव्यजना की व्यजक शैली बन गया। इसी शैली ने छायावाद को द्रुत गति प्रदान की। इसका फल यह हुआ कि बहुत से कवि इसके आगमन के साथ रहस्यात्मकता, अभिव्यजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु-विन्यास की विशृङ्खलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पता को ही साध्य मान कर चलने लगे।[१] इसी अभिव्यजना शैली के काव्य को देख कर शुक्ल जी ने छायावाद को 'काया वृत्ति का प्रच्छन्न पोषण' कहा है। वास्तव मे ऐसी कविताओ को देखकर—

"पछतावे की परछाहीं-सी, तुम भू पर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी अगडाई-सी, अपराधी सी भय से मौन ॥"

या

"तडित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ ७८५

गूढ गर्जन कर जब गम्भीर,
मुझे करता है अधिक अधीर।
जुगुनुओ से उड मेरे प्राण,
खोजते है तब तुम्हे निदान ॥"

यदि शुक्ल जी ने छायावाद को 'काया वृत्ति का प्रच्छन्न पोषण' कहा तो ठीक ही है। परन्तु इस दृष्टि से छायावाद-युग को देखना मेरे विचार से एकाङ्गी होगा। छायावादी युग में जहाँ ऐसी कल्पनाए मिलेगी वहा शुद्ध सौन्दर्य का अङ्कन भी पर्याप्त मिलेगा। इस सम्बन्ध मे नन्द दुलारे जी ने भी लिखा है। "छायावाद मे एक नूतन सास्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतन्त्र दर्शन की आयोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टत. पृथक अस्तित्व और गहराई हे।" मेरे विचार से इन दो विरोधी विचारो का समन्वय ही वास्तव मे छायावाद के रग को स्पष्ट कर सकता है। इस सम्बन्ध मे एक बात और शेष रह जाती है। वह यह कि क्य। छायावाद वास्तव मे अद्वैत रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है? यद्यपि इस सम्बन्ध मे आलोचको की अनेक धारणाये है किन्तु मेरी दृष्टि से यह प्राचीन भारतीय चिन्तन धारा अद्वैतवाद से केवल अनुप्राणित है उसका विकसित रूप नही। 'प्रसाद' जी यह नही मानते वे कहते है 'छायावाद।' अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अह' का 'इद' से समन्वय कराने का सुन्दर प्रयत्न है।" उदाहरण के के लिये 'महादेवी' की कविताओ को लीजिये। 'प्रसाद' जी के विचार से महादेवी जी की कविताओ में रहस्यवादी छायावाद दिखाई पडेगा। परन्तु मेरी धारणा इसके विपरीत है। विश्व की आर्थिक विषमताए, सामाजिक विश्रृङ्खलताए एव सास्कृतिक असतुलन ही महादेवी की कविताओ की अनृप्ति और वेदना का कारण है जो उन्हे अज्ञात के लिये बेचैन कर रहा है, क्योकि वह मानती है कि अतृप्ति ही जीवन है और तृप्ति प्रात.कालीन दीपक की बत्ती की राख है। तभी तो वह कहती है—

बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन।

हा, यह अवश्य है कि उनकी कविताओ में परमात्मा के प्रति जिज्ञासा और मिलन का एक ज्वार है जिसने प्रणय, आसू, हास और वेदना के फूल भी है। विश्व के जीवन और प्रकाश का सकेत करती हुई वे कहती है—

तेरी आत्मा का कण नभ को
देता अगणित दीपक-दान;

दिन को कनक-राशि पहनाता,
विधु चादी का परिधान;
करुणा का लघु बिन्दु युगो से
भरता छलकाता नव-धन ।

स्पष्ट है कि महादेवी की अनुभूतियो के मूल में अद्वैतवाद का स्वर है किन्तु उनकी 'प्यासी साध्य' व्यथित मौन के मार्ग से 'हसती पीडा' की अभिव्यजना है। महादेवी जी की अधिकाश कविताए 'ज्योति के असीम विस्तार' की व्यजना है फिर भी उनमे ऐसे गीत भी मिलेगे जिनमे जीवन के स्वप्नो की आभा भी है। वस्तुत महादेवी जी के गीत छायावाद रहस्यवाद के अद्भुत सम्मिलन स्थल है। 'घायल मन लेकर सो जाती. मेघो मे तारो की प्यास' मे जहा एक पक्ष प्रबल है वहा दूसरी तरफ अमर असीम भी चित्रित है। अनुराग जनित भावुकता का एक उदाहरण लीजिए —

चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया ससार।
कलियो के उच्छवास शून्य मे ताने एक वितान,
तुहिन कणो पर मृदु कपन से सेज बिछा दे गान—
जहा सपने में हो पहरेदार, अनोखा एक नया संसार।

दूसरी तरफ आध्यात्मिक चेतना का निरूपण भी कम सुन्दर नही देखिए—

छाया की आख मिचौनी,
मेघो का मतवालापन,

रजनी के श्याम कपोलो पर ढरकीलें श्रम के कन।
फूलो की मीठी चितवन, नभ की यह दीपावलिया,
पीले मुख पर सध्या के वे किरणो की फुलझरिया। [२]

वास्तव मे महादेवी के गीतो मे छायावादी कविताओ की विशेषता परिलक्षित होती है प्रसाद जी ने व्यष्टि सौन्दर्य-दृष्टि और समष्टि-सौन्दर्य दृष्टि में कोई अन्तर नही किया है परन्तु यह अन्तर तो होना ही चाहिए। नन्द दुलारे वाजपेयी जी ने स्पष्ट

१. आधुनिक कवि (महादेवी)—
२. वही।

लिखा है "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का मान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।[1] छायावाद की व्यक्तिगत विशेषता दो रूपो मे दीख पडती है—एक सूक्ष्म और काल्पनिक अनुभूति के प्रकाशन मे और दूसरा लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शब्दो के प्रयोग मे। और इस आधार पर तो यह कहा ही जा मकता है कि छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की 'वह शैली है जिसमे सूक्ष्म अथवा काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एव प्रतीकात्मक ढग पर प्रकाशित करते है।"

छायावाद का बाह्य रङ्ग बडा आकर्षक है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग मे यौवन की सरसता और अगडाई की लोच है। गीतो मे अनुभूति और अभिव्यक्ति के समवेत स्वर सुनाई पडते है। अनुभूति की तो सीमा नही परन्तु अभिव्यक्ति की एक सीमा है और इस असीम बन्धन को भी छायावाद ने अपने कलेवर से पूर्ण सज्जित कर लिया है। वस्तुत क्रोचे के अभिव्यजनावाद का यह प्रभाव है जहा काव्य में वस्तु या वर्ण्य-विषय कुछ नही, जो कुछ है वह अभिव्यजना के ढङ्ग का अनूठापन है'[2] अत छायावाद की प्रमुख विशेषता अनुभूति की तरल अभिव्यक्ति है जो लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एव सौन्दर्यमय प्रतीक विधान मे आवेष्ठित है। छाया-वादी कविताओ मे अभिव्यजना की एक नवीन पद्धति है—

'अभिनव गुजन, छाया उन्मन
उन्मन गुजन,
नव वय के अलियो के गुजन'[3]

यहा 'कलियो का गुजन' अभीप्सित नही, विचारो की भूम-भभन है। भावानु-भूति के स्थान पर कल्पना का विधान या अप्रस्तुतो की योजना अपेक्षित है। इसे आप शैली की विचित्रता कह सकते है जिसमे लक्षणा शक्ति का सफल विकास दृष्टिगत होता है। शुक्ल जी की धारणा भी छायावाद के सम्बन्ध मे यही है। उनका[4] कहना है कि छायावाद का प्रयोग दो अर्थो मे समझना चाहिये। एक तो रहस्यवाद के अर्थ मे जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है, अर्थात् जहा कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बना कर अत्यन्त चिन्तामयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यजना करता है · ··· तथा दूसरे "काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक

१. हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी-पृष्ठ—१६३
२. चिन्तामणि (२)—शुक्ल।
३. गु जन—पत।
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ८०९।

अर्थ मे" । छायावाद के मूल अर्थ पर चलने वाली हिन्दी साहित्य मे केवल महादेवी ही है, अन्य कविगण दूसरी पद्धति पर चले है ।

छायावाद की रचनाए गीतो के रूप मे हुई है । इन गीतो का सूर तुलसी के गीतो से पार्थक्य है । सूर और तुलसी के गीत सीधे हृदय पर चोट करने वाले मार्मिक गीत है और छायावादी गीत नाद-सौन्दर्य पर आश्रित है । फलत जन-साधारण मे छायावादी गीतो का कोई अस्तित्व नही इसलिये गौड जी ने लिखा है कि "निसि दिन बरसत नैन हमारे" आज भी हमारी आखो मे सावन-भादो उमडा देता है, किन्तु "मै नीर भरी दुख की बदली हमारी सवेदना को केवल उकसा कर ही रह जाती है।" छायावादी गीतो का प्रकृति की ओर भी एक नवीन दृष्टिकोण है। प्रकृति सौन्यर्य की प्रतीकात्मक प्रतिनिधि है । देखिए 'प्रसाद' की ये पक्तिया.—

बीती विभावरी जाग री ।
अम्बर पनघट मे डुबो रही तारा घट उषा नागरी ।।

यहा दृश्य की मूर्तिमत्ता बडी स्पष्टता तथा कौशल के साथ कवि द्वारा अंकित किया गया है । कवि का पर्यवेक्षण सूक्ष्म और रूप-चित्रण अद्वितीय है । भाव-सादृश्य और रूप-सादृश्य का यह बेजोड दृष्टान्त है । मानव का प्रकृति के साथ अटूट सबध यहा स्पष्ट है । यहा प्रकृति का सुन्दर सौन्दर्य साकार हो उठा है । पत जी का 'मौन-निमत्रण' प्रकृति के छायावादी दृष्टिकोण का प्रतीक है ।

छायावादी कविताओ की सुन्दरता को देख कर जहा व्यक्ति चकित हो जाता है वहा उसमे एक दोष भी है जिस कारण छायावादी कविता को प्रसिद्धि तो मिली लेकिन मन-मन के गले का वह हार न बन सकी । छायावादी अभिव्यक्ति का सबसे बडा दोष है अस्पष्टता । नये नये प्रतीक जैसे ' सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल अदि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुद, रजत, माधुर्य के स्थान पर मधु, दीप्तिमान या कान्तिमान के स्थान पर स्वर्ग, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अधेरी रात, सध्या की छाया या पतझड, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झझा, तूफान; भाव-तरग के लिए झकार" आदि का प्रयोग हुआ । कविता का अजनबीपन इस कारण भी हुआ, परन्तु ये प्रतीक तो कविता को एक नया सौन्दर्य, एक नवीन रूप तथा आकर्षण देने मे समर्थ हुए है । कविता की अस्पष्टता का दूसरा कारण है । कवि की अक्षमता के साथ साथ सहृदय भावुक की बौद्धिक

न्यूनता भी इसका एक कारण है। प्रो० गौड ने[1] अपने निबन्ध मे इस अस्पष्टता के तीन प्रमुख कारण माने है —

(१) रागात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता का आधिक्य।

(२) अपरिचित प्रतीको द्वारा भाव-चित्रो के स्पष्टीकरण का प्रभाव।

(३) अनुभूति की एकतानता मे आकस्मिक क्रम-भग।

मेरा अपना ख्याल यह है कि अभिव्यजनावादियो के अभिव्यजना-चातुर्य और प्रवृत्तियो को प्रश्रय छादावादी कवियो ने दिया है। शुक्ल जी ने उन प्रवृत्तियो का उल्लेख अपने इन्दौर वाले भाषण मे किया है —

१ प्रस्तुत मार्मिक रूप-विधान के प्रयत्न का त्याग और केवल प्रचुर अप्रस्तुत रूप-विधान मे ही प्रतिभा या कल्पना प्रयोग।

२ जीवन के किसी मार्मिक पक्ष को लेकर भाव या मार्मिक अनुभूति मे लीन करने का प्रयास छोड, केवल उक्ति मे वैलक्षण्य लाने का प्रयास।

३ जीवन की विविध मार्मिक दशाओ को प्रत्यक्ष करने वाले प्रबन्ध काव्यो की ओर से उदासीनता और प्रेम सबधी मुक्तको या प्रगीत मुक्तको (Lyrics) की ओर अत्यन्त अधिक प्रवृत्ति।

४ 'अनन्त' 'असीम' ऐसे कुछ शब्दो द्वारा उन पर आध्यात्मिक रग चढाने की प्रवृत्ति।

५ समालोचना का हवाई होना और विचार शीलता का ह्रास।[2]

यद्यपि काव्य के विकास के लिये ये प्रवृत्तिया विष के समान है परन्तु अभिव्यजनावादी तो केवल भावानुभूति पर ही बल देते है और उसकी अभिव्यक्ति को ही कला की सज्ञा प्रदान करते है। भाव-पक्ष शिथिल और बुद्धि-पक्ष प्रधान हो जाने से कविता की रागात्मिका-वृत्ति क्षीण पड़ने लगती है। इन प्रवृत्तियो ने यदि उपकार किया है तो काव्य की उससे कुछ हानि भी हुई है। मार्मिकता के साथ जीवन की अनेक रूपता का चित्रण इस युग के काव्य का विषय नही रहा। जीवन की आलोचना द्वारा समाज की आखो को खोलने का प्रयत्न नही हुआ बल्कि सुन्दर नाद-पूर्ण गीतो को गा गाकर कठिन सघर्ज मे भाग समाज को सुलाने का प्रयत्न किया गया।

१ छायावाद की शवपरीक्षा। साहित्यिक निबन्धावली पृष्ठ १२३

२ देखिये हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास— ष्ठ २८७

छायावाद की विशेषताए निम्नाकित है —

१. छायावादी कविता मे आत्माभिव्यक्ति अधिक मिलती है ।

२. आध्यात्मिक दृष्टिकोरण से अद्वैतवाद का आश्रय लेकर छायावादी रहस्यवाद का विकास होता है । इसमे प्रेम, विरह, करुणा की प्रधानता रहती है । 'पन्त', 'महादेवी', 'निराला', 'प्रसाद', सभी कवियो की रचनाओ मे इसके प्रत्यक्ष उदाहरण मिल सकते है ।

३ छायावादी कवि वैचित्र्य और सौन्दर्य के उपासक पाये जाते है उनमे कुछ खोया-खोया पन-सा रहता है और कविता भी कुछ अटपटी करने का प्रयास मिलता है ।

४ कविता मे शब्द-माधुर्य को प्रधानता दी जाती है और भावो को स्वच्छन्दता । पाडित्य को बाध कर वह चलने का प्रयास नही करते । इस धारा के इस गुण मे कविवर निराला अपवाद स्वरूप आते है ।

५ प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है, स्वतत्र भी और नायक-नायिकाओ के मनोभावो के रूप मे भी । छायावादी कवियो ने शृङ्गार रस का सुन्दर चित्रण तो किया है परन्तु उससे वासना को प्रोत्साहन नही मिलता । रीतिकालीन शृङ्गारिकता के प्रति इसमे तीव्र विद्रोह की भावना है ।

६ छायावादी शैली की प्रधानता उसके शब्दो मे लाक्षणिक प्रयोग की है । अन्योक्ति, वक्रोक्ति और प्रतीको का आश्रय लेकर छायावादी कविता रहस्यमय भावना के साथ पाठक के सम्मुख आती है ।

७ छायावादी कवियो की प्रकृति ही उनके रहस्य का प्रधान विषय है, जिसमे जीवन की कल्पना करके कवि उसकी विभूतियो मे तन्मय होकर रहस्योद्घाटन करता है ।

८. मानव जीवन का नैराश्य पूर्ण चित्रण छायावादी कविताओ की विशेषता है । इस निराशा के चित्रण मे लौकिकता के साथ अलौकिकता का भी पुट वर्त्तमान है ।

९. सूफी प्रेम-मार्गी शाखा की प्राचीन प्रणाली के रग पर प्रेम की अवतारणा की गई है ।

१० छायावादी कवियो मे सौन्दर्य की व्यापक भावना है।

वास्तव मे छायावाद की विशेषता नवीन भाव का आन्तरिक स्पर्श है। आभ्यान्तर सूक्ष्म भावो की प्रेरणा नवीन लाक्षणिक पद शैली मे फूट पडी है। छायावाद अनुभूति और अभिव्यक्ति के विचित्र सयोग का प्रतिफल है। प्रसाद जी ने तो स्पष्ट शब्दो मे लिखा है– ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताए है।'

१ काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध—पृ० १४०।

अध्याय १०

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद

हिन्दी कविता की द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता एव साहित्यिक भौतिकता के प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी साहित्य मे छायावाद का जन्म हुआ। किन्तु जब छायावादी कवि मिट्टी की बोलती मूरतो के क्रन्दन, विषाद एव सनोष को छोड रजत-रानी के केश-पाश मे उलझ विहग-बालिका के प्रति कल्पनाशील गीत गाने लगे, तो छायावाद की प्रतिक्रिया या विद्रोह के रूप म प्रगतिवाद आया। सूक्ष्म आध्यात्मिकता एव अशरीरी-सौन्दर्य-कल्पना की उच्छृङ्खल प्रवृति पर प्रगतिवाद एक प्रश्नवाचक चिह्न की तरह टूट पडा। कारण यह था कि छायावादी कविताओ मे मानव-जीवन की कहानी नही, अन्त मन की व्यथा और कल्पनामयी भावुकता थी। प्रगतिवादी कवि जीवन के करुण क्रन्दन के गीत गाना चाहते थे। एक आदर्शवादी था, दूसरा यथार्थवादी। यद्यपि छायावाद की आदर्शवादिता मे यथार्थ की स्तव्धता थी फिर भी स्पष्ट रूप से कवि जीवन के गीत गाकर काव्य से जीवन का मेल करना चाहते थे। छायावादी युग मे साहित्य का जीवन से अलगाव हो गया था, प्रगतिवादी युग ने उस अलगाव को मिटाकर दोनो मे प्रेम और मिलन का बीज डाला। कुछ लोगो की धारणा है कि छायावादी साहित्य वस्तुत जीवन के प्रति एक अनन्य अनुराग एव मोह रखता है और वह जीवन के सघर्षो से पलायन नही, बल्कि सघर्षो से थक जाने का विश्रान्ति गीत है। किन्तु इस बात को कौन अस्वीकार करेगा कि जीवन की सामाजिकता से छायावादी साहित्य कोसो दूर है। इसके विपरीत प्रगतिवादी साहित्य जीवन की कठोर वास्तविकताओ से सघर्ष करने की प्रेरणा देकर मानव को सबल बनाता है। जीवन की परेशानियो से प्रगतिवादी साहित्य भागने का आदेश नही देता बल्कि उससे मुक्त करने का साहस और शक्ति देता है।

'प्रगति' शब्द का अभिधेयार्थ 'गतियुक्त' होना या आगे बढना है। आगे बढने की एक कला भी होती है। यह ठीक है कि सभी आगे बढना चाहते है। प्रत्येक

युग इस दृष्टि से प्रगतिवादी रहा है किन्तु आज का प्रगतिवाद एक निश्चित क्रम से एक निश्चित दिशा की ओर बढा है। यह निश्चित दिशा प्रगतिवाद का दर्शन है। पत जी ने प्रगतिवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है । 'प्रगतिवाद उपयोगितावाद का ही दूसरा नाम हे। वैसे तो सभी युगो का लक्ष्य सदैव प्रगति की ओर रहा ह परन्तु आधुनिक काल का प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन-समूह की सामूहिक प्रगति का पक्षपाती है, सामूहिक प्रगति, सामयिक नव-निर्माण जनता के चीत्कार की कहानी किसी दर्शन पर आद्धृत है और वह दर्शन है मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। इसी कारण आलोचको ने कहा है कि राजनीति मे जो स्थान समाजवाद का है। वही स्थान साहित्य मे प्रगतिवाद का है।

समाज का आर्थिक ढाचा बडा विषम है। जीवन को सरल सुन्दर और जीने के योग्य बनाने के लिये समाजवाद मे अर्थ-नीति की प्रधानता है। कार्ल मार्क्स का समाजवाद पूजीवाद के सारे दोष और कलुषता को सामने रखकर शोषक और शोषितो को दो वर्गो मे अलग-अलग बाट देता है। पूजीवाद के भयानक स्वरूप को सामने रखकर जनता को विद्रोह के अग्नि-कण देकर क्रान्ति की मशाल जलाता है। रूस ने मार्क्स के भौतिकवाद को खूँन से सीचकर पनपाया और उसकी सर्वभुक् ज्वाला देश-विदेश मे फैल कर शोषक पूजीवादियो की भयानक लोलुपता को खड-खड कर रही है। इस रोटी के राग ने मानव की सभी परम्परायें, रूढिया, अनाचार और अत्याचार को मसल डालने का बीडा उठाया है । पूजी-वादियो का बल अभी कम नही हुआ है। इसी कारण साम्यवाद और समाजवाद को अपनाने मे झिझक है किन्तु शोषित वर्ग के इस उत्थान और जागरूकता को पशुबल से दबाना असभव है। समाज की राजनैतिक, साहित्यिक, सास्कृतिक और धार्मिक उन्नति का आधार सुदृढ आर्थिक व्यवस्था ही है। बिना सुन्दर अर्थनीति के मानव का विकास सभव नही। फलत मार्क्स-दर्शन मे जीवन की आलोचना मे अर्थ की प्रधानता स्वीकृत है और आज शोषित मानवता चीत्कार करती हुई उस आर्थिक-चक्र की बेडी को तोड एक अर्थ-व्यवस्था द्वारा सामाजिक रीतियो, धर्मिक प्रवृत्तियो या साहित्यिक उत्कर्षो को उन्नति के चरम सोपान पर पहुचाना चाहती है।

प्रगतिवाद के मार्क्स दर्शन ने हिंसा और विध्वस द्वारा समाज-निर्माण का स्वप्न देखा था किन्तु काव्य की पवित्र त्रिवेणी तो शान्ति, क्षमा और प्रेम हैं। काव्य का आधार समन्वय है न कि सर्वनाश और विरोध। लोकरजन की प्रबल आकाक्षा ने प्रेम का बलिदान कर दिया है। फलत साहित्य मे हिंसात्मक स्वरो की भरमार आवश्यक है। मानव मानवता को छोड पशुत्व की तरफ बढना चाहता है । कटक को कटक से दूर करना न्याय-सगत हो सकता है परन्तु धर्म-सगत कदापि नहीं हो सकता। पूजीवाद की सडाध को दूर करने के लिये अतिशय भौतिकता की पाशवी

वृति को प्रोत्साहन देकर सहार और विनाश का आह्वान करना काव्य के लिये अपेक्षित नही। काव्य मे तो प्रेम का आलोक, कल्याण और सुन्दर की वाणी मुखरित होती है किन्तु इस 'वाद मे व्यक्ति मतवाला हो अपने उत्थान की कामना से पशुत्व को प्रश्रय देता है। सघर्ष की कठोर भावना का बीजारोपण कर हृदय-पक्ष को जर्जर बना प्रगतिवाद वर्बर मानव के स्वरूप को साकार करता है। प्रतिहिसा की भावना दया, ममता, स्नेह, प्रेम आदि उदात्त भावनाओ को कुचल डालती है और मनुष्य अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिये दानवी मायाजाल के चक्र मे फस जाता है।

हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य की कुछ अपनी मान्यताए है। डा० सुधीन्द्र के विचारानुसार प्रगतिवाद की मान्यताए ये हो सकती है—

(१) साहित्य और कला शोषित मानवता के उत्थान का साधन बने।

(२) पू जीवाद मानवता का शत्रु है, इसलिये पू जीवाद और उसके परिवार साम्राज्यवाद, नातसीवाद, पाशववाद (facism) आदि सभी विनाशक वादो का सर्वनाश किया जाय।

(३) शोषण (व्यक्ति द्वारा क्यक्ति का शोषण या समाज द्वारा समाज का शोषण) को मिटाने के लिये वर्ग-विद्रोह और वर्ग का सघर्ष को उत्तेजना दी जाय, उसका व्यापक चित्रण और प्रसार हो।

(४) जन-साहित्य और जन-कला द्वारा जन-सपर्क और जन-सस्कृति का निर्माण करके सामाजिक क्रान्ति की भूमिका प्रस्तुत की जाय।

प्रगतिवाद की यही मान्यताए कवि के जीवन की साध बनी। पू जीवादी आराम से शोषण कर अपने जीवन को सुखमय बना रहे है। मुट्ठी भर मनुष्य का आधिपत्य असीम असख्य जन-समूह पर छाया है। एक-एक पू जीपति किसान, मजदूर, क्लर्क, मास्टर आदि दलितो का शोषण कर पू जी की अट्टालिकाएं बनाते जा रहे है और दूसरी तरफ कठिन मेहनत करने के बाद भी अपने पेट की ज्वाला शान्त न कर पाने पर साध्वी बाजार मे अपना सतीत्व चादी के टुकडो पर बेच रही है। इस विषमता और भयानक असमानता को देख कवि का हृदय जलने लगता है और वह हल, हसिया, हथौडा, कुदाली और कलम का पक्ष ले समस्त शोषित वर्ग के उत्थान के लिए मचल उठता है। उसकी रगो मे खून, मुह पर क्रोध जन्य लाली और मुट्ठिया बध जाती है और वह दलितो और शोषितो की पुकार अपने कानो सुनने लगता है। दलित वर्ग के इस आर्त्तनाद को चित्रित करने वाले कवि नवीन, निराला, वर्मा सुधीन्द्र, पत और द्विवेदी आदि है। एक तरफ सुधीन्द्र की 'प्रलय वीणा' किसान

और मजदूर की दर्दनाक हालत देख क्रान्ति का आह्वान करते है तो दूसरी तरफ निराला 'पत्थर तोडने वाली' की मौन दरिद्रता का चित्र उतारते है। एक तरफ सर्व-नाशक ज्वाला का आह्वान दीखता है तो दूसरी तरफ भीषण दरिद्रता का क्रन्दन।

साहित्य समाज का दर्पण और युग का प्रतिविम्ब होता है। समाज की भाव-भङ्गिमा, विचार, भाव एव क्रिया प्रतिक्रियाओ का इतिहास साहित्य की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति और युग धर्म का निर्वाह प्रगतिवाद मे स्पष्ट है। धनी वर्ग के सुख-दुःख ही सुख-दुःख नही, उनके प्रेम ही प्रेम के वास्तविक स्वरूप नही, उनकी अभिलाषा आकाक्षा ही जन-जन की कामना नही, उनके सत्य, शिव और सुन्दर ही प्रत्येक के सत्य, शिव और सुन्दर नही होते अपितु निर्धन के भी प्रेम और सुख-दुःख होते है। प्रगतिवाद के पूर्व का साहित्य केवल धनिको की प्रवृत्तियो के विश्लेषण का साहित्य है। क्या कभी निर्धन के दिल की चाह का विश्लेषण साहित्य ने किया ? प्रगतिवाद इसी का उत्तर है। नये सिरे से नये ढग से सत्य, शिव और सुन्दर, प्रेम, करुणा, मैत्री, सुख-दुःख का मूल्याङ्कन किया गया। जीवन की धारणाए विज्ञान की आच मे बदल चुकी थी। नवीन युग की चेतना का नवीन मूल्याङ्कन सभव था और प्रगतिवाद ने वही किया।

ओ कलम कुशल ! ओ व्यग्य प्राण !
जिसने देखा हिन्दुस्तान,
हरियाली मे देखे है
जिसने सूखे-सूखे किसान
वह गावे कैसे प्रणय गान ?
मारो ठोकर निश्वासो मे,
अब आग लगा दो बासो मे,
वेशर्म बासुरी बहुत बज चुकी
बहुत बज चुकी,
भारत की आरत पुकारती लाशो मे
विगलित कल्पना विलासो मे।
ओ धनी कलम के आख खोल,
अब वर्त्तमान बन, सत्य बोल।

प्रगतिवाद हिन्दी काव्य मे यथार्थवाद को लेकर चला है। आदर्शवादी दृष्टि-कोण की मधुरता को अनसुनी कर वह फटी बासुरी की बेसुरी आवाज को ही सामने रखना चाहता है। वह परिस्थिति से भागता नही बिल्कुल उसके सामने आकर अपनी गरीबी दुर्दशा, पाखड, अन्याय आदि का ढोल पीटता है। वह समाज के दुर्गन्धित

स्वरूप को सामने लाकर आख मे अगुली गडा कर समाज का परिस्कार करना चाहता है। भले ही इस सत् प्रयास मे समाज की आखे ही फूट जाय। प्रगतिवाद सामाजिक विषमताओ को गोपनीय रहस्य बना कर रखना नही चाहता बल्कि वह सभी कुरूपताओ और वीभत्स दृश्यो को उधेड-उधेड कर सामने रख देता है। आज आर्थिक असमता के कारण पू जीपति और मजदूर मे आकाश-पाताल का अन्तर है। एक अपने बेटे की बीमारी मे लाखो लाख खर्च कर बेटे की जिन्दगी बचा लेता है दूसरा बेटे की बीमारी मे सिसक-सिसक कर अपनी आँखो की रोशनी खो देता है। जीवन के इस कटु सत्य और मानवता की सिसकियो का चित्रण 'सुधीन्द्र' की 'प्रलय वीणा' मे देखिए —

एक ओर समृद्धि थिरकती,
पास सिसकती है कगाली।
एक देह पर एक न चिथडा,
एक स्वर्ण के गहनोवाली।
उधर खडे है रम्य महल वे
आसमान को छूने वाले।
और बगल मे बनी झोपडी
जिसके छप्पर चूनेवाले।

इस पद की झकार असमानता की प्रतीक है। दलित, तिरस्कृत और शोषित मानवता का स्वरूप यदि देखना चाहे तो प्रगति शील कवि भगवती चरण वर्मा की 'भैसा गाडी' का चित्र देखे —

चूँ चररमरर, चरमर, चरमर
... ...
जा रही चली भैसा गाडी।
+ + + +
चादी के टुकडो को लेने,
प्रतिदिन पिस कर भूखो मर कर
भैसा गाडी मे लदा हुआ
जा रहा चला मानव जर्जर।

मानव और मानव के बीच अर्थ की दीवार खडी है। एक ओर वायुयान तीव्र गति से धावित है दूसरी ओर चरर मरर करती भैसागाडी जा रही है। एक ओर धन की चाह नही और दूसरी ओर प्यास है। एक भिखमगे का चित्र देखिए

चीथडो मे ले दुर्गन्ध कटी
रोगो से उनके देह सडी
उनके मुख मे है घूर रही
कलुषित वचनो की एक झडी

इस प्रकार आदर्शवाद का विरोधी प्रगतिवाद समाज की आखे खोलने का प्रयास करता है। हमारी दीनता, दरिद्रता, दुर्दशा, पाखड शोषण आदि को सामने रख समाज के उत्थान और परिवर्तन की कामना करता है। सचमुच मे समाज को ऐसे साहित्य की भी आवश्यकता है जो समाज के वास्तविक स्वरूप का खाका खीच कर रख दे। समाज की सडान्ध, दुर्गन्ध, बदबू जो कुछ हो आखो के सामने आ जाय, आवरण न रहे। वह ससार के सामने न्याय-अन्याय का विवेचन कर न्याय के पक्ष का समर्थन मागता है। दलित वर्ग की दयनीय दशा का एक चित्र प्रगतिवादी कवि के शब्दो मे देखिए —

यह देख 'पेट की आग देख,
इन डसे मुखो की आग देख।
अपनी मा के रज से पैदा,
अपनी बेशरमी मे नगे।
तू ये डागर की टाग देख।
फिर अपनी चिकनी माग देख।

कितनी वेदना और कितनी स्पष्टोक्ति इन पक्तियो मे फूटी है। 'पत' जी ने ताज' को देख कर शायद कल्पना की थी बडे बडे चट्टानो और पत्थरो को अपने सिर पर लाद कर ढोने मजदूरो के श्रम की और शोषण के इस चित्र से उनकी आखो में सवेदना फूट पडी और वे कह उठे —

"हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।
जब विषराण निर्जीव पडा हो जग का जीवन॥"

प्रगतिवादी साहित्य अपने अतीत की गरिमा से चमत्कृत नही होता, वर्तमान की कालिमा ही उसे भाती है। यह ठीक है कि अतीत को छोडकर हम अपना मार्ग निष्कटक और सफल नही बना सकते और परिणाम-स्वरूप इतिहास के पन्नो को उलट कर तथ्यो को देखना ही पड़ेगा परन्तु आज के प्रगतिवादी कवि के पास इतना समय कहा कि वह अतीत के तथ्यो का सग्रह करे और उसी आधार पर निर्माण की बात सोचे। वह तो तुरन्त और फौरन प्रस्तुत समस्या का समाधान

चाहता है। पूंजीवादियो की अर्थ-नीति का समाधान इतिहास के पुराने पन्ने नही देंगे बल्कि प्रतिहिंसा का बल मृतप्राय दलित जीवन को शान्ति और सुख का सदेश देगा। कवि के शब्दो मे.—

देख कलेजा फाड कृषक,
दे रहे हृदय शोणित की धारे।
और उठी जाती उन पर ही,
वैभव की ऊंची दीवारे।[1]

प्रगतिवाद का विश्वास समाज के सुधार या हृदय-परिवर्तन मे नही है उसका विश्वास है क्रान्ति मे जिसकी लाल लपटो मे सभी चीजे जल कर सुन्दर लाल हो जाती है। प्राचीन रूढियो और अन्ध विश्वासो को समूल उखाड फेंकने के लिये क्रान्ति अनिवार्य है। प्रगतिवाद चाहता है भस्मीभूत ससार और एक अभिनव सृष्टि, एक अभिनव सस्कृति जहा न कोई दुख हो, न दर्द हो, सभी समान हो, सब का जीवन सुखमय हो। उसका आधार होता है 'सर्वे भवन्तु सुखिन' परन्तु उपनिषद् के इस मत्र मे प्रेम द्वारा सुखी करने की भावना है किन्तु प्रगतिवाद मे मिटा कर बनाने की लालसा है। क्रान्ति की तेज आच मे प्रगतिवाद समाज को जलाकर 'स्वर्ण-सा-पावन' बनाना चाहता है। इसलिये प्रगतिवादी साहित्य मे महाविनाश प्रलय विस्फोट, विध्वस की रागिनी सिंघा बाजे पर बज उठती है।

गा कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।
पावक पग धर आवे नूतन।
हो पल्लवित नवल मानवपन।[2]

इस क्रान्ति के लिये प्रगतिवाद ने कुछ प्रतीकात्मक शब्दो को भी लिया है। क्रान्ति के लिये 'मशाल', महाजन के लिए 'जोक' आदि शब्द प्रयोग मे आये है। वस्तुत प्रगतिवादी साहित्य का कलेवर गीतात्मक है और भावानुकूल भाषा के प्रयोग के कारण अभि-व्यजना मे स्पष्टता के साथ प्रभविष्णुता भी पर्याप्त है।

वास्तव मे प्रगतिवादी साहित्य मे प्रगति के चिह्न है। प्रगति जीवन का चिह्न है, प्रगति रुकी और मानवता का दम टूटा। अगति तो मृत्यु है। प्रगति के बिना

१ दिनकर।
२ पंत-युगान्त।

जीवन जीवन नही। हमारे साहित्य की प्रगति, हमारी सर्वाङ्गीण प्रगति होती रहे यह कौन नही चाहता। हम उर्ध्वगामी रहें यही मानव की कामना है। प्रगतिवाद यही चाहता है। सर्वाङ्गीण जागरण और सर्वतोमुखी प्रगति। अध्यात्म की शुष्क चिन्ता मे तथा अशरीरी सौन्दर्य की व्यर्थ भावुकता भरी कल्पना मे दौड लगाना इसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। वह चाहता है जीवन मे समता समाज मे समता और राजनीति मे समता। वह बडे छोटे मे कोई भेद नही रखना चाहता, वर्ग वर्ग मे मनुष्य मनुष्य मे वह अन्तर नही मानता। शोषक के प्रति उसे एक घृणा है और शोषित के प्रति सहानुभूति। यह सहानुभूति स्पष्टता के साथ उसके स्वर मे गूंज रही है। वह वर्तमान की गोपनीयता को जन समाज के सामने उपस्थित करना चाहता है।

'इस दुनिया की भाषा मे कुछ
घर की कह
समझे घर वाले।
उनके जीवन की गाठ खोल।
उनकी सूखी रोटिया तोलें।
मत बन तू परदेशी घर मे'

वह तो 'काल-शास्त्र' का पंडित बन युगसमस्याओ को सामने रखता है। वह 'जिया और तू भी जी ले' (Let live and let others live) की व्यापक शान्ति भावना से उत्प्रेरित है। इस साधना मे साध्य पर ध्यान नही, लक्ष्य की प्राप्ति मे रुकावट असह्य है। दुख, दरिद्रता बेकारी और भुखमरी की अमर रागिनी गानेवाला प्रगतिवादी साहित्य जीवन की सत्यता को कटुता के साथ सामने रखकर जीवन की रक्षा की भीख नही मागता, आदेश देता है। उसकी वाणी मे आर्त का स्वर नही, सबल की धीर वाणी का गभीर उद्घोष है।

विचार करने पर मालूम होता है कि वर्तमान काल का प्रगतिशील साहित्य कई धाराओ मे विभक्त है। एक वह जिसमे शृङ्गार-प्रधान रचनाए है, दूसरा वह जिसमे राष्ट्रीयता और देशोन्नति की भावना है। राष्ट्रीयता-प्रधान कविताए भी दो ढग की है एक वह जिसमे प्रेम शान्ति और निर्माण की आशा रखकर कवि गीत की रचना करते है दूसरा वह जो विध्वस विस्फोट की भावना मे रचनाए करते है। 'पत' और 'नवीन' प्रथम वर्ग के और 'नरेन्द्र', 'वर्मा', सुधीन्द्र' दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते है। 'पत' जी जहा अपनी मधुर वाणी मे कहते है। 'नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन' वहा दूसरे खडन और विनाश मे विश्वास रख जाते है 'उर मे आज क्षुधा की ज्वाला दिल मे इन्किलाब का सपना'। तात्पर्य कि

राष्ट्रीयता और जन-जीवन के उत्कर्ष के लिये प्रगतिशील कलाकार का एक वर्ग नव-निर्माण के लिये क्रान्ति चाहता है और दूसरा वर्ग उग्र-क्रान्ति । एक मे आशा और विश्वास है दूसरे मे निराशा और अग्नि । शृङ्गार-प्रधान रचनाए भी प्रगतिवादी साहित्य मे मिलेगी और उनकी अश्लीलता पर काफी नाक भौ भी सिकोडा गया है, परन्तु ये रचनाए अश्लील नही । नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने ठीक ही लिखा है छायावाद की मजु मनोरम भावनाओ के रसपान के पश्चात् 'गदले गीत' अरुचिकर हो रहे थे' किन्तु 'जब मैने 'अचल' को अपने लिये पापी और विलासी विशेषण प्रयोग करते देखा । (जल जल उठते कितने पागल पापी प्राण विलासी) तब· · मैने उसे क्रान्ति का स्रष्टा लिखा । ' दुख और विषाद की पृष्ठभूमि पर ये तृष्णा लालसा और प्यास और भी खिलती है । ऐसी शृङ्गार पूर्ण रचनाओ के अन्तरतम मे 'प्रसुप्त और क्षीण नही, जाग्रत और प्रदीप्त अतृप्ति का विह्वल रोदन है'—

वासना बस कुछ न पूछो, हे विरग निष्फल जवानी,
प्रखर अनियत्रित महा विच्छेद की जलती निशानी ।
ले प्रलय की एक आकाक्षा विपुल बरबाद यौवन,
मिट रहा अतृप्त वचित राख न पाई तुम अचेतन ।

इन पक्तियो मे मालूम पडता है कि वियोग की अग्नि मे कवि माधुर्य, मादकता और उल्लास को क्रान्ति की आच मे जला रहा है कारण कि उसका प्रतिबिम्ब जीवन मे घटित नही होता । वह दुख और झझावातो से घबडाता नही क्योकि ये सुख-दुख की क्रीडाए तो चलती ही रहेगी । वह इसकी परवाह नही करता और 'उर मे आग नयन मे पानी, होठो मे मुस्कान सजाकर' दुख, दारिद्र्य और भुखमरी का आवाहन करता है । इस क्रान्तिगीत मे शृङ्गार कहा परन्तु आर्त और पीडित के प्रति यहा सहज सहानुभूति उठ सजग हुई है । इन पक्तियो मे शृङ्गार बरस पडा है जिसे अश्लील कह कर आलोचको ने नैतिकता की आड मे क्रान्ति के बीज को विनष्ट करना चाहा है । वह कितनी स्पष्टता के साथ धनी वर्ग की विशेष कामुकता से उद्विग्न हो कह उठता है —

और चली तूफान फूकती वे पथ-कन्याए सतप्त,
जिनको कृश जघाओ पर सघर्ष मनाते ये उन्मत्त ।
जिनकी छाती के गड्ढो पर दीप वासना के जलते,
जिनके नील कपोलो पर मतवाले गाहक मुख मलते ।

वस्तु-स्थिति का इससे सुन्दर परिचय क्या हो सकता है ? इन अश्लील चित्रो की आन्तरिक अभिलाषा है नैतिकता का पोषण । समाज के कोढ को दूर करने के

लिये कवि ने तेज शस्त्र से काम लिया है। नारी के सुन्दर शरीर के आकांक्षी ग्राहकों का परिचय देखिए —

जिनकी आँखों में मदिरा नस-नस में कामुकता उद्दाम
बर्बर पशुता से लथपथ जो पी जाते नारी के जाम।
किन्तु तनिक दिन ढलते ही ठुकरा देते जो भस्म समान,
तृषित सतृष्ण दृगों से लखने को जघन्य औरों का काम।

यह जघन्यता बड़ी व्यापक है और इसे दूर कर समाज को स्वस्थ करना प्रगतिशील कवि कवि-कर्म मानता है। यह ठीक है कि इन गीतों में वैयक्तिकता का रंग है और 'वैयक्तिक प्यास' है परन्तु यह 'वैयक्तिकता ऐकान्तिक नहीं है और न उसमें कोरी कल्पना की प्रधानता है'। तृष्णा की यह पुकार युग वाणी के रूप में प्रस्फुटित हुई है। कदाचित् ऐसी कविताओं को देख कर आलोचक कह उठते हैं कवि को शाश्वत साहित्य का निर्माण करना चाहिये। किन्तु युग-धर्म की कवि उपेक्षा भी कैसे कर सकता है ? युग का धर्म ही तो युग-युग का धर्म बनता है। आज की विषमता और असमानता को देख कवि उससे आँखें कैसे फेर सकता है ? क्या कबीर, तुलसी और सूर ने अपने युग की समस्याओं से आँखें मूँद ली थीं ? क्या उनका साहित्य सामयिक न था ? और उस दृष्टि से आज का साहित्य भी सामयिक है। यदि कबीर की वाणी आज भी मानव-मन को रस-सिक्त करती है तो कोई कारण नहीं कि आज के गीत कल प्राणों को उत्कंठित न कर सकेंगे। आज के कलाकार की आवरणहीनता युग की विशेषता है और इस सजीव चित्रण में जागरूक कलाकार के चेतन मन की अभिव्यक्ति है।

प्रगतिवादी साहित्य के अन्तर्गत जो रचनाएँ हुई हैं वे उच्च कोटि की नहीं हैं। न उनमें साहित्यिक सौन्दर्य ही आ पाया है और न भावों की कोमलता ही दिखाई देती है। कदाचित् इसी भावना से प्रेरित होकर प्रगतिशील साहित्य पर आक्षेप किये गये हैं। उन आरोपों का मूल निम्नलिखित है:—

(१) प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन का साहित्यिक माया-जाल है। यह विदेशी दर्शन भारतीय भावना के प्रतिकूल है।

(२) प्रगतिवादी साहित्य 'रोटी', 'कपड़ा', 'मजदूर', 'झोपड़ी', 'किसान' को लेकर चलता है इस कारण एकाङ्गी है कारण कि समाज में पंडित-मूर्ख, सती-कुलटा, मालिक-मजदूर सभी हैं केवल एक वर्ग का चित्रण उचित नहीं।

(३) प्रगतिवाद केवल युग-धर्म के प्रति सचेत है। चिरन्तन सत्य और स्थायी सौन्दर्य इसका विषय नही। अत इस काव्य का विषय अपूर्ण है।

(४) प्रगतिवाद शान्ति और प्रेम मे विश्वास नही रखता, सघर्ष और विनाश की भावना को प्रोत्साहित करता है।

(५) प्रगतिवाद हमारी साम्कृतिक परम्परा और मर्यादाओ के प्रतिकूल है।

(६) प्रगतिवाद आत्मा की अपेक्षा शरीर मे विश्वास रखता है, आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकता का पक्षपाती है। अत त्याज्य है।

(७) प्रगतिवाद का नैतिकता और आस्तिकता मे विश्वास नही। कुछ आलोचकों ने इसे चार्वक मत का नवीन साहित्यिक सस्करण भी कहा है।

(८) प्रगतिवाद अमर प्रेम-भावना और रोमान्टिक युग की सारी विशेषताओ को लाञ्छित करता है। यह प्रेमवाद का विद्रोही 'वाद' है।

(९) प्रगतिवाद स्वार्थी लोगो का साहित्य है जिनकी दृष्टि केवल रुपये-पैसे अथवा अर्थ पर रहती है। उसमे उच्च भावना का बिल्कुल अभाव है।

(१०) प्रगतिवाद मे सेक्स की भावना निराली और नगी है। आलोचको ने इसे घासलेटी माना है, क्योकि 'सेक्स' के अश्लील चित्रण का प्रगतिवाद लाईसेंस है। भाई-बहिन के वासनात्मक प्रेम का चित्रण करनेवाला यह साहित्य है।

(११) प्रगतिवाद निर्माण के स्थान पर उन्मूलन और विकास के स्थान पर आमूल परिवर्तन मे विश्वास रखता है अत अवाछनीय है।

(१२) प्रगतिवाद मे भावुकता और कला का बहिष्कार है।

(१३) प्रगतिवाद विज्ञान और बुद्धि का भरोसा रखता है प्रेम और श्रद्धा का तिरस्कार करता है।

(१४) प्रगतिवाद का कलेवर कुरूप है। गीतो मे माधुर्य का अभाव और कर्कशता का राज्य है। अत हेय है।

(१५) प्रगतिवाद के समर्थको मे अनुभूति नही बल्कि साम्प्रदायिक दर्शन का ढोग है।

वस्तुत इन आक्षेपो मे कुछ असगतिया है कारण कि आज हम जो कुछ सोचते है वह लगभग पूजीवादी आधार और ढग पर। फलस्वरूप इस प्रगतिवादी साहित्य को हिकारत की नजर से देखते है। प्रो० शिवबालक राय जी ने अपने निबन्ध मे इन

आक्षेपों का उत्तर देते हुए जो लिखा है वह दृष्टव्य है—"इन आक्षेपो के उत्तर मे सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' के प्रति किसी सहृदय को आपत्ति या विरक्ति नही होनी चाहिए। · · · क्षुद्र से क्षुद्र और महान् मे महान वस्तु काव्य का विषय बन सकती है। जिस कवि के हृदय मे विषय के प्रति सच्ची अनुभूति है वह हथौडे या हिमालय पर, ताडीखाना या अलकापुरी पर प्रणाली या आकाश-गगा पर समान सफलता के साथ काव्य सृजन कर सकता है।' तात्पर्य कि जहा प्रगतिवादी साहित्य मे सच्ची अनुभूति है, वह प्रशसा के योग्य है चाहे उसमे कैसी भी नग्नता या यथार्थता क्यो न हो परन्तु यदि उसमे साम्प्रदायिक रग रूप है और प्रोपेगण्डा (राजनैतिक) का माध्यम बना है तो वह प्रगतिवादी साहित्य अवश्य ही गर्हित और घृणास्पद है। काव्य का आधार दर्शन नही मानव की रागात्मक वृत्ति है इसे कलाकार को नही भूलना चाहिए।

चाहे जो कुछ भी आप प्रगतिवाद और प्रगतिवादी साहित्य के सबध मे अपनी धारणा बनाये परन्तु एक बात तो सच है कि यह साहित्य जीवन का साहित्य है और भारतीय साहित्य सदा से चिरन्तन काल से जीवनवादी रहा है। वैदिक साहित्य और कला से लेकर सूर-तुलसी तक का साहित्य इसका प्रमाण है। रवीन्द्र बाबू ने लिखा ' Poetic testament of a people is collective reaction to the wonder and of existence" और यह लिख कर भारतीय साहित्य परम्परा का जीवनवादी होना सिद्ध किया है। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है। वस्तुत विश्व साहित्य का आदि-ग्रन्थ शिशु मानवता की स्फूर्तियो का प्रतिबिम्ब मात्र है।' अत प्रगतिवादियो का जीवन-वाद हमारी साहित्यिक परम्परा के मेल मे है। डॉ० स्वामी[२] ने लिखा है कि साहित्य की ही नही वरन् समस्त भारतीय कला की उद्भावना सदैव जीवन के प्रश्न के उत्तर मे हुई है। ऐसी महती कला को उद्भूत करने वाली जाति मे कला प्रेम नही प्रत्युत जीवन प्रेम होता है। वास्तव मे प्रगतिवाद की सबसे बडी विशेषता यही है कि वह जीवनवादी रहा है और उसका रहस्य ही है साहित्य का जीवन से मेल। जो साहित्य गगनचारी हो गया था वह मनुष्य के गले मे बाहे डाल उसकी उसासो को समझने में तल्लीन हुआ।

१ प्रगतिवाद की रूप रेखा।

२ Introduction to Indian Art—'Indian art has always been produced in response to a demand . a race producing great art however, does so, not by its 'love of art," but by its love of life Page 68

अध्याय ११

हिन्दी-काव्य में विरह

चन्द्रकिरणो की दुग्ध-धवल कान्ति, उषा के सुन्दर लाल कपोल एव ऐहिक जीवन मे माधुरी का सृजन करनेवाली असीम सुन्दरी के प्रति मानव-मन, दीप-शिखा के शलभ की भाति सदा प्रेमाकृष्ट भाव से देखता आया है । मानव इन सौन्दर्य-राशियो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने तथा जीवन की सारी विभूतियां न्योछावर करने के लिये सदा तत्पर रहता है । इनके अभाव मे वह अपने हृदय मे एक अन्तर्दाह, एक टीस-सा अनुभव करता है उसकी यह कामना रहती है कि मन को मुदित और प्रफुल्लित रखनेवाले सौन्दर्य-दृश्य बराबर उसकी आखो के सामने रहे । इस अभाव-पूर्ति के लक्ष्य मे उसे सब कुछ होम करना अच्छा मालूम पडता है । किन्तु जब अपनी सामर्थ्य एव अपने एश्वर्य से अपने अभाव को वह पूरा नही कर पाता, तो उसका मन व्यथा से भर जाता है और उसकी व्यथा सहस्रगुणी तब बढ जाती है, जब वह इष्ट वस्तु प्राप्त कर पुन उससे वचित हो जाता है ।

यौवन की उत्तप्त दुपहरी मे जब पुरुष और नारी मे दृष्टि-विनिमय होता है, उस समय हृदय मे आनन्द की सरिता प्रवाहित होती है, उस रस-प्रवाह मे जीवन का प्रत्येक अश आलोकित हो उठता है । दोनो प्रेम के अटूट पाश मे बध जाते है और जीवन के सारे सघर्ष, जीवन की सारी कालिमा एव विषमताए प्रेममय जीवन से परे हो जाती है । ऐसे पवित्र प्रेम मे प्रवाह है, गति है, जीवन के बोझ को वहन करने की शक्ति है और इस तरह का मानवीय प्रेमगगा की पूत धारा से किसी भी तरह कम पवित्र नही है । नारी के प्रेममय सयोग-सुख को पाकर पुरुष अपने को धन्य मानता है और पुरुष के असीम प्यार को पाकर नारी अपने को बढभागिनी समझती है । परन्तु जब दैव, विधि, समाज आदि के हस्तक्षेप से दो प्राणियो के प्रेम मे व्याघात और अडचन पैदा होती है, तब दोनो के हृदय मे परस्पर मिलन के लिये जो छटपटाहट, तडप और पीर उठती है, उसकी

अभिव्यजना विरह-गीत के रूप मे कवियो ने की है। विरह प्रेम की कसौटी है, जीवन मे प्रेम, पवित्रता तथा सच्चाई का दृष्टान्त उपस्थित करने वाला एक प्रशसनीय साधन है। पाकर खोने मे दुख है, कष्ट है और खोकर पाने मे सुख है, आनन्द है। विरह मानव जीवन की एक स्वाभाविक दशा है और हमारे हिन्दी साहित्य के कवियो ने इस मनोदशा का बडा ही हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जिसे पढकर कभी आखो मे प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते है, कभी दग्धता का स्पष्ट यथार्थ अनुभव होता है और कभी होता है वियोगी की मर्मान्तिक पीडा का बोध।

काव्य-प्रेमी कवियो ने प्रेम और विरह को धूप-छाह के सदृश चित्रित करने का प्रयास किया है, जिसमे नायक के आते ही प्रेम और मिलन की स्वच्छ चादनी चारो तरफ छिटक जाती है एव नायक के प्रस्थान करते ही विरह का अन्धकार घनीभूत होकर नायिका के मस्तिष्क पर छा जाता है। वह चारो तरफ प्रकाश-पुज पर अठखेलियाँ करती हुई अन्धकार के विरह-सागर मे निमज्जित होने लगती है।

हमारे काव्य-साहित्य मे सर्वप्रथम मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' मे राजा रत्नसेन के विरह मे नागमती की दिली हालत का, प्रेम। परवशता का मार्मिक खाका खीचा है। हीरामन तोते से राजकुमारी पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की प्रशसा सुनते ही राजा रत्नसेन उस रूपवती नारी को प्राप्त करने के उद्देश्य से घर मे बाहर निकल पडते है। उनके जाने के पश्चात् रानी नागमती राजा के प्रेम मे कितना विलाप करती है, उसे आप उनके प्रसिद्ध बारहमासा मे देख सकते है।

"चढा असाढ गगन घन गाजा। साजा विरह दुन्द दल बाजा"

आषाढ मास मे विरहिणी मेघ की गर्जना मे विरह-युद्ध की घोषणा सुनती है। नागमती के विरहोच्छ्वास से ही चारो ओर आग लग जाती है।

"गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि सहि न सकहि वह आगि।
मुहमद सती सराहिए, भर जो अस पिउ लागी ॥"

उसकी आह का, विरह-ताप का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन यद्यपि कवि ने पाठक के सम्मुख चित्रित किया है, लेकिन उसकी उर्वर उष्णता का अनुभव दूसरी तरह से प्राप्त कर सकना भी असभव था। नागमती के आसुओ से सारी सृष्टि ओत-प्रोत दिखाई देती है—

"कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रक्त-आसु घुवची बन कोई"
बूद बूद महं जानहु जीऊ। गुजा गूजि करै, "पिउ पीऊ"

तेहि दुख भए पराम निपाते। लोहू-बूटि उठे होइ राते ॥
रोते बिब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहू ॥

नागमती को सारा ससार दहकते अगारे-सा मालूम होता है और सारी प्रकृति उसकी अनन्त वेदना मे सवेदनशील है। वह वियोग मे "हौ दिन राति विरह कोकिला" बन जाती है, जो निरन्तर हृदय को सालती रहती है, इसकी टीस मे दिल को हिला देनेवाली पुकार है। वह तो विरह की आग मे जलकर 'दहि कोयला भई कन्त सनेहा' हो गई थी। उसका शरीर तो विरह की विभीषिकाओ का केन्द्रस्थल-सा था। वह पाठक की करुणा, दया और सहानुभूति की पात्र हो जाती है। नागमती की मनोदशा विक्षिप्त-सी है। मरते के समय भी उस वियोगिनी स्त्री के हृदय मे अपने स्वामी मे परलोक मे मिलने की भावना थी।

"जियत, कन्त! तुम्ह तुम्ह गर लाई। मुए कठ नहि छोडहि साई ॥
औ जो गाठि, कन्त! जोरी। आदि अन्त लहि जाइ न छोरी ॥
यह जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम, नाह! दुइ जग साथी ॥"

विरहिणी ने मर कर भी दाम्पत्य जीवन की सुन्दर भावना को करुणा का रूप देकर साकर कर दिया है, जो युगो तक प्रकाशपूर्ण रहेगा! नागमती का विरह इतना रस-सिक्त हो गया है कि पाठक की आखे सहानुभूति से बरबस उमड आती है। मैथिल कोकिल विद्यापति की राधा की विरहावस्था मे प्रेम की एक अपूर्व झाकीहै, जिसमे अन्तस्तल की दाहक पीडा का सरल स्वरूप है, जो भिन्न-भिन्न गीतो मे अभिव्यजित हुआ है। राधा के हृदय की जलन पपीहे की 'पी' पुकार से किसी भी तरह कम नही और वह अपने प्रियतम के सामीप्य के लिए सदा प्रार्थिनी बनी रहती है। विद्यापति ने उसके हृदय की पुकार को कितने सुन्दर एव मार्मिक शब्दो मे व्यक्त किया है :—

"सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज, की सरजिस बिनु सूरे।
जीवन बिनु तन, तन बिनु जीवन, की यौवन पिय दूरे ॥"

इस पद मे प्रियतम के अभाव की सूचना है और है यौवन के सुखद विलास-क्रीडा के लिये आह्वान। राधा केवल इसलिये विकल है कि हृदय से निष्कासित स्नेह-रस, जो प्रेम-पुष्प होकर प्रवाहित हो रहा है, उसे अपने प्राण-प्रियतम कृष्ण के चरणो पर समर्पित कर आत्म-तुष्टि प्राप्त करे। राधा का विरह भावावेश, तन्मयता एव अनन्यनता से अभिभूत है। जागृतावस्था मे प्रियदर्शन की लालसा हृदय मे उठती है और सुप्तावस्था मे उसकी भावनाए साकार हो जाती है।

"लोचन धाए फेधायल हरि नहि आयल रे।
. .. ,
सपनहु सगम पाओल रग बढाओल रे।
से मोरा बिहि विघटाओल निन्दओ हेरायल रे।'

(प्रेम-पथ मे पथिक थकना नही जानता, हार मानकर बैठना नही जानता। विरह-कातरा राधा के जीवनाकाश मे (स्वप्न मे) जो सुख का सयोग होता है उससे भी वह वचित हो जाती है और उसकी दशा घायल हरिणी के समान हो जाती है।)

भक्त-शिरोमणि सूर की राधा भी विद्यापति की राधा से किसी भाति कम नही। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर सारा व्रजमण्डल अनाथ-सा हो गया, क्योकि वे ही उसके सच्चे सखा तथा स्वामी थे। उनके वियोग मे माता, पिता, परिजन, पुरजन, सखा, सखी और पशु-पक्षी सभी विरह-विवश हो गये थे और विरहानल मारे व्रजमण्डल को झुलसा रहा था। कृष्ण की छोटी-मोटी बाते सभी गोपियो को प्रिय थी। उनकी याद मे गोपियाँ रोती थी, विलखती थी, क्योकि उनके 'उर' मे माखनचोर गडे थे। पुर्नमिलन एव दर्शन दुस्साध्य जान प्रेम-विहारिणी गोपियो ने पत्र लिखकर अपने हृदय की अभिलाषाओ को प्रिय तक पहुचाना चाहा, किन्तु—

"मसि खूटी, कागर जल भीजे, सरदौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहो क्यो करि जो पलक कपाट अरे॥"

विरहिणी की मनोवैज्ञानिक अवस्था का कितना सूक्ष्म पर सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। स्मृति-पट पर सयोग के दृश्य उपस्थित होते ही आकुल प्राणी के हृदय मे जो भावो की सरिता बहने लगती है, उसके थपेडो को सहनकर पत्र लिखना सरल-हृदया गोपियो के लिए सभव नही था। उनका मन कृष्ण मे तन्मय था। उनकी दशा का कितना सुन्दर वर्णन है :—

'लखियत कालिदी अति कारी।
कहियो पथिक जाय हरि सो क्यो भई विरह-जुर-जारी॥
.. ..
सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गति भई हमारी॥"

तन्वगी यमुना के सदृश गोपिया कृश एव विरह मे विह्वल है। काले-काले मेघ को आकाश मे देखते ही गोपियो को घनश्याम का ध्यान हो आता है। बिजली

की तडप मे माधव की हसी का अनुमान वे करती है । स्मृति की प्रबलता आखो की राह बह जाती है और ऐसा मालूम पडता है कि सारे ब्रजमण्डल मे एकमात्र वर्षाऋतु ही है।

"निशि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस-ऋतु हम पै जब ते श्याम सिधारे॥
दृग अजन लागत नहि कबहु, उर कपोल भये कारे
कचुकि नाह सूखत सुनु सजनी, उर बिच बहत पनारे॥"

महाकवि सूरदास के विरह-वर्णन ने हिन्दी के अनेक कवियो को वियोग की तीव्रानुभूति की आच से तप्त किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत उनका विरह-वर्णन सर्वोत्कृष्ट हुआ।

कवि-कठहार नन्ददास जी ने भी अपने भँवर-गीत मे विरह की अन्तर्धारा बहाई हे। उन्होने सर्वत्र गोपियो की वियोगवस्था के ही चित्र दिये है, जहा हृदय की वेदी पर मन्मथ का राज्य है, पर अनल की विभीषिका प्रज्ज्वलित हो रही है।

"राम-रोम प्रति गोपिका ह्वै रही साँवर गात।
कल्प-तुरोरुह सावरो ब्रज बनिता भई पात॥"

इस पद की ध्वनि मे एकात्मभाव स्पष्ट प्रतीत होता है विरह साक्षात् मूर्तिमान हो रहा है। गोपिकाओ का रोम-रोम कृष्णमय है और कृष्ण-गोपी का सबध अविचल-अटूट है, वृक्ष के पत्त के समान।

सरस और प्रवाहपूर्ण भाषा मे नन्ददासजी जडिया ने गोपियो का विरह-वर्णन अत्युत्तम ढग से किया है :—

"कोऊ कहै अहो दरस देहु पुनि बेनु बजावो,
दुरि-दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावो।
हमको तुम पिय एक हौ तुमको हम-सी कोरी,
बहुत भाति के रावरे प्रीति न डारौ तोरी।
एक ही बार यो॥"

प्रीति में आत्म-विश्वास है, परन्तु समय-समय पर जब विरहिणी प्रेम में आकुल व्याकुल हो जाती, उस समय उसे यह भान लगता है कि शायद प्रियतम ने उसे विस्मृत तो नही कर दिया। उनकी पुण्य-स्मृति पुन विश्वास उत्पन्न कर देती है। कितनी सुन्दर व्यजना है —

विरह की एक झाकी कवि सत्यनारायणजी के 'भ्रमरदूत' मे भी मिलती है—

"विलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
स्याम-बिरह अकुलाती, पाती कबहु न पाई।।
जिय प्रिय हरि-दर्शन बिना, छिन-छिन परम अधीर।
सोचति मोचति निसि दिना, बिसरतु नैननु नीर।।
बिकल कल ना हिये।।"

बिलखती मा की स्नेह-विवशता आखो मे नीर बन कर अपने लाडले श्याम के लिए धावमान है। अन्तिम पक्ति मे हृदय की कारुणिक अवस्था का कितना सजीव चित्रण है। इसे पढ कर कृष्ण-विरह की वेलि ताजी हो जानी है। जहा एक तरफ सुन्दर शुद्ध स्नेह का वर्णन है, वहा दूसरी तरफ रत्नाकरजी ने पवित्र प्रेम की अश्रुगगा भी प्रवाहित की है।

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहि थिराती है।
कहै 'रत्नाकर' रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ विलखानी, विकलानी, बिथकानी है।
कोऊ खेद-सानी, कोऊ भरि छग-पानी रही
कोऊ घूमि-घूमि परी भूमि मुरझानी है।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ,
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है।।"

उद्धवजी की प्रेम-विरोधी बाते सुनकर गोपियो का हृदय-विदारक दृश्य आखो के सामने छा जाता है। गोपियो की प्रेम-विह्वलता, उनकी अधीरता तथा तन्मयता एक साथ ही पाठक को आक्रान्त कर देती है और क्षण भर के लिए पाठक रस-निमग्न होते हुए विरहिणी की व्यथा से मर्माहत से हो जाते है। विरहिणी गोपिया कितने सुन्दर ढङ्ग से कृष्ण तक अपनी विदग्ध दशा का सदेश पहुचाती है, उसे सुनकर कलेजा फटने लगता है और कवि की उत्कृष्ट कल्पना की वेगवती धारा मर्त्यलोक मे व्यथा-पीडित गोपियो का सदेश सुनाने मे सफलीभूत हुई है।

"औसर मिलै औ सरताज कछु पूछहि तौ
कहियौ कछु न दसा देखि सो दिखाइयो।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछु,
कहिब कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयो।।"

विद्यापति चित्रित राधा विरहाधिक्य से विकल होकर 'अनखन माधव-माधव सुमरइत' के भावोद्रेक के कारण कृष्णमय हो जाती है, तो उसे राधा का अभाव खटकने लगता है और वह 'अनुखन राधा-राधा रटतहिं' राधामय हो जाती है। तादात्म्य की इस भावना मे विरहिणी राधा की भावमयी मूर्ति का स्पष्ट चित्र मिलता है, जिसमे पीडा के मनमोहक पुष्प तिरोभूत हो जाते हैं। परन्तु हरिऔधजी की राधा विरहाधिक्य से विह्वल होकर भी सारे ससार मे कृष्ण की मूर्ति देखती है, विश्वात्म का अनुभव करती हुई अपनी विकलता का परिचय देती है

"पाई जाती विविध जितनी वस्तु है जो सबो मे।
मै प्यारे को अमित रग औ रूप मे देखती हू॥"

राधा का प्रेम विरह के झोको मे झूल कर भी उच्छ्वास बन कर नही बल्कि सेवा-भाव मे आन्दोलित हुआ है।

"गिन-गिन नभ-तारे ऊब आसू बहा के।
यदि निज-निशि कोई बाल होती बिताती॥
वह ढिग उसके भी रात्रि मे ही सिधाती।
निज अनुपम राधा नाम की सार्थकता से॥"

सच्चा प्रेमी प्रेम की पीर का अनुभव कर उसके स्वाद को चखता हुआ सन्तोष मानता है। ऐहिक जीवन मे भौतिक विलास सुख-क्रीडा की कामना करता हुआ भी उसके अभाव मे अविचल धैर्य धारण कर प्रेम के पुनीत पथ को प्रशस्त करता है। कवि के गान उस सत्य-प्रेम के प्रशस्ति स्वरूप है, जो निष्काम है। मीरा की प्रेम-साधना आसू के तप्त सागर उडेलती हुई भी शीतलमणि है, जिसके पावन स्पर्श मे प्रेम-पथ आलोकित रहता है। इस साधना-पथ पर अग्रसर होने वाली मीरा ने अच्छी तरह समझ लिया था कि कबीर के शब्दो में "सीस काट कर भुई धरे तापर रखै पाय" की असि धार पर चलना होगा। मीरा की आखो मे नन्दलाल की मोहिनी मूरत बसी थी, उसका प्रेम अनन्य था। राणा की पत्नी होते हुए भी अपने सुन्दर सलोने श्याम के प्रेम का ढिढोरा पीटने मे उसने कोई कोर कसर उठा न रखी। मीरा ने कुल-लज्जा और वश की मर्यादा को भूल कर शुद्ध प्रेम-परवश होकर जो गीत गाये है, वे सदा चिरस्मरणीय रहेगे। आसुओ के जल से सीच-सीच कर जिस प्रेम-बेलि को उसने बोया, वह प्रेम लौकिक दृष्टि से मर्यादाहीन होता हुआ भी निष्कलक है। आज घर-घर मे मीरा के गीत गूज रहे है —

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई ।
साधु सँग बठि-बैठि लोक-लाज खोई ।।"

ऐसे प्रेम मे विष का प्याला भी अमृत हो जाता हैं।

महादेवी वर्मा जो आधुनिक युग की मीरा समझी जाती है, उनमे मीरा जैसी ही कारुणिक व्यथा और प्रेम-विह्वलता है। आपने दुख मे ही सन्तोष माना है और उनकी यह अनुभूति नारी-जीवन के समस्त सरस सौन्दर्य को एक अनोखी देन है। अतृप्ति और असन्तोश मे सुख मान कर पीडा ही को अपनाया है । "हे री मै तो प्रेम दीवानी मेरा दरद न जाणे कोय'- को ही वर्माजी ने अपना आदर्श माना है । उनकी वेदना ने एक ऐसे ससार का सृजन किया है, जो प्रकृति की तरह चिरन्तन है। कवयित्री ने सपूर्ण चैतन्य प्राणियो मे एक विराट चेनना का अनुभव किया है । एक स्फुलिङ्ग की तडप उनके जीवन मे निरन्तर गतिमान है।

"सजनि ! मै इतनी करुण हू करुण जितनी रात।
सजनि ! मै उतनी सजल जितनी सजल बरसात।।"

जीव और प्रकृति, जड और चेतन, करुणा और वेदना एक रूप हो गये है।'रश्मि' की भूमिका मे आपने लिखा है,—'दुख मेरे समीप जीवन का एक ऐसा काव्य है, जो सारे ससार को एक सूत्र मे बाध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख चाहे हमे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी नही पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता"। वेदना की इसी धारा मे उनकी काव्य-नौका प्रिय-मिलन की लालसा लिए हुए झझावात के झकोरो को सहते हुए अभिसार कर रही है। 'विरह की घडिया हुई अलि मधुर मधु की यामिनी-सी"—"मै नीर भरी दुख की बदली" आदि गीतो मे आँखो का आँसू नही, जो आज उमडता है, कल मिट जाना है, बल्कि वैसा है जो आकाश के बादल के समान सम्पूर्ण जगत् पर छा जाता है।

प्रात स्मरणीय महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने अमर काव्य 'रामचरित मानस' तथा बरवे-रामायण' मे विरह के महत्व का निदर्शन किया है। सीताहरण के पश्चात् राम सीता के वियोग मे लता, गुल्म वृक्षादि से पूछते है —

'हे खग-मृग, हे मधुकर श्रेणी।
तुम देखी सीता, मृग-नैनी।।"

सूरदास जी चित्रित गोपियो की विरह-दशा सुन कर कृष्ण की अवस्था 'सूर स्याम भूतल गिरे रहे नयन जल छाय' मे राम की विरह दशा न्यून नही। राम के

वनगमन के समय माताओ के हृदय मे स्नेह का जो सचार हुआ, उसकी मर्मस्पर्शी तस्वीर रामायण मे पूर्ण रूप से है। 'बरवे-रामायण' मे तो विरह की ज्वाला का स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है।

"डहकनु है उजियरिया, निसि, नहिं घाम।
जगत जरत अस लागइ मोहि बिनु राम॥"

राम के वियोग मे शीतल चाँदनी की मदभरी ज्योत्सना प्रखर धूप के समान चलती हुई मालूम होती है और सारा ससार जलता हुआ उसका पिड-सा म.लूम पडता है।

उपर्युक्त विरह-वर्णन ससार के सुखभोग के प्रवर्द्धक रूप मे नही था, वरन् आत्म-सुख, आत्म-तृप्ति एव आत्म-शान्ति के लिए था, हिन्दी काव्य-गगन मे कतिपय कवियो ने सौन्दर्य और प्रेम को ही ऐहिक सुख का प्रेम-नक्षत्र माना है। प्यार के व्यापार मे उनकी नायिका विरह मे जलती हुई अङ्गारे-सी लगती हे, लेकिन जब किसी रूपाश्रय तरुण युवा की ललचाई आखे उसके उन्नत उरोज को चूमती है, तो वह एक अजीब शीतलता अनुभव करती हे। एक तरफ जहाँ भोग-भावना का परिष्कृत रूप है, आत्मिक-मिलन की उत्सुकता हे, वहाँ दूसरी तरफ दैनिक सुखभोग की विकार-युक्त भावना हे, दैहिक मिलन की उत्कठा हे। एक तरफ गगा की स्वच्छ निर्मल धारा का प्रवाह है, तो दूसरी तरफ स्रोतहीन सरिता का गदा जल। वास्तव मे कहना तो यो चाहिए कि एक प्रेम की ललित नीलिमा की मधुर आभा है और दूसरी विषय-वासना की उन्मुक्त आँधी। ऐसे कवियो का विरह-वर्णन अतिशयोक्ति-अत्युक्ति की सीमा को पार कर जाता है। बिहारी की विरह-विदग्धा नायिका का एक चित्र देखिए —

औधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललाति।
बीच ही सूख गुलाब गौ, छीटो छुई न गात॥"

यहाँ नायिका विरहाग्नि से जल रही है। उसकी एक दयार्द्र सखी नायिका के ऊपर गुलाबजल की भरी शीशी उडेल देती है, किन्तु विरह की उष्णता इतनी अधिक है कि गुलाबजल वाष्प बन कर हवा मे विलीन हो जाता है और जल का एक कण भी उस दग्ध शरीरधाली नायिका के शरीर पर नही पडता। इस प्रकार के अतिशयोक्ति पूर्ण अनेकानेक चित्र कविवर बिहारी मे मिलेगे।

'करके मीडे कुसुम लौ, गई विरह कुम्हलाय।
सदा समिपिनी सुखिनुहु, नीठि पिछानी जाय॥"

विरह से तडपती हुई नायिका की उपमा कितनी सुन्दर है। ए० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है "कोमलांगी नायिका की विरह विवर्णता को मसले हुए फूल की उपमा कितनी अनुरूप और सुन्दर है। परन्तु बिहारी की विरहिणी मे मार्मिकता का अभाव है, जिसमे दिमागी कसरत तो होती है, किन्तु रस का सचार नही होता।"

' इत आवति चलि जाति उत, चली छसातक हाथ।
चढी हिंडारै सै रहै, लगी उसासनु साथ ॥"

स्वाँस के झूले पर बिहारी ने अपनी नायिका को बैठाकर छ सात हाथ झुला दिया है। तात्पर्य कि नायिका विरह से इतनी कातर हो गई है कि केवल स्पन्दन ही शेष है, यही नही, कही-कही तो नायिका विरह से इतनी जल रही है कि माघ महीने मे उस ग्राम मे जब कोई पथिक आता है, तो उसे ग्रीष्म की लू का बोध होता है।

रीतिकालीन कवियो मे केशव, मतिराम, आलम और पद्माकर की विरहिणी नायिका भी कविवर बिहारी की विरहिणी से किसी प्रकार कम नही है। मतिराम की नायिका नायक के विछोह मे गर्म-गर्म श्वासे फेक रही थी कि इस दशा को देख कर उसकी कुछ सखियो ने नायिका के शरीर को शीतल करने के हेतु कमलिनी के चन्दन-चर्चित पत्तो को उसके शरीर पर रखा। शरीर-स्पर्श से ही वे पत्ते पापड सदृश हो गये।

"जागत ओज मनोज के, परसि तिया के गात।
पापड होत पुरैनि के, चन्दन पंकिल पात ॥"

केशव ने 'रामचन्द्रिका' मे भगवान् राम के विरह का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है। हनुमान द्वारा सीताजी सुन रही है कि भगवान् विरह-विवश हो गये है—

"अपनी दशा कहा कहौ, दीप दशा-सी देह।
जरत जाति वासर निशा, केशव सहित सनेह ॥"

इस पद मे अहर्निश जलन की सूचना मिलती है। जिस प्रकार दीपक मे तेल और बत्ती जलते है, उसी प्रकार शरीर-रूपी दीप मे प्रेम रूपी बत्ती जल रही है। कितना भावमय चित्र है।

आलमकेलि की नायिका का विरह अपनी चरमसीमा पर पहुँचा हुआ है—

"ऐरी पर-घर कित मागन को जैहै आजु
आगन मे चन्दा तै अँगार चारि झारि लै।

साँझ भये भौन सँझवाती क्यो न देत आलो,
छाती ते छुआय दिया-बाती क्यो न बारि लें।"

यहाँ कवि किसी को सबोधन करते हुए कहते है कि ऐ सखी ! तू आग मागने कहाँ जा रही है, यही वियोग मे जलती हुई नायिका के मुखचन्द्र से दो-चार अँगारे ले ले और सझा बाती देने के लिये दियासलाई को मत ढूढ इसी विरहिणी बाला की छाती मे बत्ती लगा कर दीपक जला ले। कवि के विरह-वर्णन मे ज्वाला की जोत है, जो जलती ही रहती है, बुझती नही।

आह से सतप्त जीवन की दशा का सुन्दर वर्णन 'पद्माकर' के 'जगद्विनोद' मे भी प्राप्त होता है। 'पद्माकर' को तो चारो तरफ खिले हुए लाल लाल फूल जो सुखदायी होते है, वे भी अगारे की तरह लाल चमकते हुए दाहक प्रतीत होते है। उनकी नायिका अनङ्ग के जागरण से कितनी बेचैन है, उसका अनुमान निम्न पक्तियो से कीजिये —

"घर ना सुहात, ना सुहात वन बाहिर हूँ, बाग ना सुहात न खुशाल खुश बोही सो। कहे पद्माकर घनेरे धन-धाम त्योंहो, चंद ना सुहात चाँदनी हूँ जोग जोही सो॥ साँझ ना सुहात न सुहात दिन माँझ कछु, व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सो। राति ना सुहाति ना सुहात परभात आली, जब मन लागि जात काहू निर्मोही सो॥"

जहाँ विरहिणी की दशा का इतना सुन्दर चित्र है, वहाँ 'ग्वाल' कवि के अतिशयोक्ति और अत्युक्तिपूर्ण चित्र है। उनकी नायिका ऊपर लिखित सभी विरहणियो से बाजी मार ले जाती है। देखिए—

"तादुर ले आई तिया आगने मे ठाढी भई
करके पसारिबे मे भात हाथ मे भयो"

विरह की ज्वाला मे जलती हुई नायिका हाथ मे चावल लेकर खडी ही होती है कि वे चावल हाथ मे पककर भात हो जाते है। कवि की विरह-कल्पना कितनी प्रशसनीय है।

इस प्रकार के अनेकानेक पद हिन्दी काव्य मे भरे पडे है। विरह मे दुबले हो जाना, कृश तथा क्षीण दिखाई पडना एकदम स्वाभाविक है। रीतिकालीन प्राय सभी कवियो ने इस दशा का वर्णन किया है। बिहारी की नायिका क्षीण शरीर वाली इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि यमराज को भी उसे खोजने के लिए चश्मे की जरूरत आ पडती है।

"करी विरह ऐसी तऊ गैलु न छाँडतु नीचु ।
दीने हु चश्मा चलनि, चाहै लखै न मीचु ॥"

हिन्दी काव्य मे भक्ति-युग और रीति-युग के कवियो ने अपनी अपनी विशेषता के साथ मानव के अन्तर मे बास करने वाले प्रेम और विरह का बडा ही मार्मिक एव रोचक रूप पाठको के सम्मुख रखा है । भक्ति-युग मे विरह की तीव्रता नायक एव नायिका की सत्यानुभूति एव सत्य-प्रेम पर आश्रित है, किन्तु रीति युग के कवियो का विरह बाह्य एव स्थूल दृष्टि से रोचक है, जिसमे गाभीर्य नही । एक मे हृदय की अनन्त धारा का प्रवाह है, दूसरे मे कल्पना द्वारा मानसिक विरह का वर्णन । एक आध्यात्मिक शृङ्गार की रङ्गभूमि मे अनन्त को स्पर्श करने के लिए उत्सुक है, दूसरा भौतिक शृङ्गार के दलदल मे वासना की तृप्ति के लिये प्रयत्नशील है । एक आह की आँधी मे चिरन्तन सत्य का दर्शन है, दूसरा विरह की ज्वाला मे उद्दाम वासना का उद्दीपन है । नारी के रूप मे आकर्षण है । उसे देख कर छटपटा जाना, ममहित हो जाना, सुध-बुध खो देना एक बात है और नारी के सौन्दर्य, रूप-रङ्ग को देख कर उसके अन्तर का सौन्दर्य आँकना तथा उसके कुसुम-से कोमल हृदय का अनुरागी बनना दूसरी बात है ।

अग-प्रत्यग के सौन्दर्य मे यदि मानव के शाश्वत सौन्दर्य का परिचय प्राप्त हो, तो कितना सुन्दर है । आधुनिक युग मे भी आकर विरह-विषय की उत्कृष्टता के कारण कवि आकृष्ट हुए है । विरह एक ऐसी मनोदशा है, जिसका बोध प्राय सभी को हुआ करता है । भारतेन्दु जी ने चन्द्रावली के विरह का जो सूक्ष्म अन्वेषण किया है, उसके प्रेम को देखकर कौन ऐसा पाठक होगा, जिसका हृदय बेचैन नही हुआ होगा ।

चन्द्रावली मनमोहन से बिछुडकर दिन रात आसुओ से अपने मुखकमल को विभूषित किये रहती है । प्रेम की गली मे आने के बाद उसकी दशा ऐसी हो जाती है कि न तो उसे जागते चैन है, न सोते । वह दिन-रात प्रिय-मिलन की आकाक्षा दिल मे सजाये उनकी राह ताकती रहती है । उसकी दीन दशा का चित्र कवि की तूलिका ने कितना सुन्दर चित्रित किया है —

"छरी सी छकी सी जड भई सी जकी सी घर,
हारी सी बिकी सी सो तो सब ही घटी रहै ।
बोले ते न बोलै छग खोलै ना हिडोले बठि,
एकटक देखै सो खिलौना सी धरी रहै ॥
हरिचद्र औरो घबरात समुझाये हाय,
हिचकि हिचकि रोवै जीवति मरी रहै ।

याद आये सखिन रोवावै दुख कहि-कहि,
तौ लौ सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै ॥

नायक की स्मृति आते ही वियोगिनी की दशा का सर्वाङ्गपूर्ण चित्र कवि ने चित्रित किया है, जिसकी दर्दनाक तस्वीर, नेत्रों मे आसुओ का प्रवाह, कपोलो पर लाली एव तन्मयता की भावना का सामूहिक दर्शन पाठक उपर्युक्त पक्तियो मे कर सकते है।

अपने परम की पीर को आत्म-विश्वास मे सहेजती हुई चन्द्रावली जीवन के कटु एव विषाक्त दिनो को व्यतीत कर रही है। आसुओ की अबाध धारा के प्रवाह मे वियोगिनी बाला वर्षा ऋतु के महात्म्य का अनुभव करती है, आकाश-मण्डल मे घनश्याम को देख कर घनश्याम की याद आना स्वभाविक है पर एक नारी के लिए, जो जीवन की समस्त लालसाओ को अपने साथ लेकर यौवन-प्रेम के कटकाकीर्ण पथ पर अग्रसर हो चुकी है, उसकी तृप्ति कैसे हो ? वह समझ ही नही पाती कि उसके पापी प्राण न जाने क्यो टिके है, किस उम्मीद मे उलझे है। लोक-लाज और शिष्टाचार आदि की भावनाए जो जीवन के कर्त्तव्य एव सघर्ष मे सहायक होती है, वैसे विचार उसको स्पर्श तक नही कर पाते। भावना की वेगवती सरिता जीवन की अकथ कहानी चलती ही रहती है। भारतेन्दु की विरहिणी नारी भावुकता के आकाश पर चढी हुई प्रियतम की प्राप्ति मे दत्तचित्त रहती है। चन्द्रावली का प्रेम कवि ने कितनी मर्मिकता तथा रसात्मकता से दर्शाया है।

आज के कवियो ने इस दार्शनिक पर सरल तथ्य को अच्छी तरह समझ लिया है कि मिलन मे प्रेम का अन्त है और चिर-वियोग मे जीवन की गति। प० रामनरेश त्रिपाठीजी ने विरह का वर्णन बडी सतर्कता से किया है। पथिक-पत्नी अपने प्रियतम के वियोग को सहन करने मे असमर्थ-सी होती हुई वन-प्रान्तर मे जीवन सगी की खोज मे निकल पडती है। परन्तु उसका बटोही घर लौट चलने को उत्सुक नही है, निराश होकर सात्वना न पाकर वह घर लौट आती है आशा और विश्वास के साथ —

"मार्ग बुहार बुहार थकी मै प्रतिदिन साझ सबेरे।
हार गई मै बाट जोहती आये नाथ न मेरे ॥
कोई आकर प्रियतम का कुछ सदेशा कह जाता।
जाते हुए प्राण मे आग्रह आखो का रह जाता ॥"

इन पक्तियो मे कवि ने नायिका के उर मे जो अभिलाषा है, उसे चित्रित कर विरह को साकार कर दिया है । विरह-वेदना से जली हुई विरहिणी रोज घर के पास का मार्ग साफ-सुथरा रखती थी कि काश ! उनके जीवन की ज्योति कभी आ जाय ।

घायल-सी वह व्यथा मे तडपती रहती है और मजुल मूर्ति को आखो का विषय बनानी चाहती है । भूख-प्यास-नीद का कष्ट उसे नही सताता । उसकी कामना कितनी ऊची है, भावना कितनी मधुर है । देखिए —

"हे भगवान ! घास मै होती, प्रिय उस पर पग धरते ।
अति कृतज्ञ होती, प्रिय-पद की धूलि मुझे तुम करते ।।"

प्रिय-स्पर्श के सुख को ही वह अभागिनी आनन्द मान कर बैठी है । ग्रीष्म की जलती लू मे वह अपने पति-पथिक को किसी पेड की छाया मे देखना चाहती है तथा सावन-घन की घनघोर रिमझिम मे भीगते देखती है ।

"ईर्ष्यावान दुरात्म-हृदय-सा जेठ लगा अब जलने ।
....
मेरे पथिक सघन छाया मे होगे कही जुडाते ।।"

प्रेम के उन्माद मे विरहिणी की विचार-धारा कितनी सुन्दर है ।

'साकेत' तथा 'यशोधरा' काव्य मे गुप्तजी ने सुन्दर विरह-गीत लिखे है, जो आधुनिक भाव-धारा की पृष्ठभमि एव प्रतिफल न है । 'साकेत' की उर्मिला देवी पर जब राम-वनवास का वज्रपात होता है, तो वह जडीभूत-सी हो जाती है और अवधि-शिला के गुरुभार को लक्ष्मण के वियोग मे तिल-तिल जल-जल कर काट देती है । परन्तु सीमित अवधि के भीतर भी उसकी सारी अभिलाषाए कुचली-सी थी और यौवन के ज्वार मे वह अपनी कामनाओ को किस प्रकार दबाती होगी, उसकी कल्पना से करुणा उद्भूत होती है । अपने प्राणदेव की स्मृति मे मतवाली उर्मिला सुखानुभूति की पीडा का अनुभव करती हुई जो अभिव्यजना करती है, उसे वाणी देकर कवि ने विरह का दहकती आच को और भी प्रोज्ज्वलित कर दिया है ।

"मै निज अलिन्द मे खडी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदे पडती थी, घटा छाई थी,
गमक रही थी केतकी की गन्ध चारो ओर,
झिल्ली-झन्कार यही मेरे मन भाई थी ।

आगे लगी मै अनुकरण स्वनूपुरो मे,
चचला थी चमकी, घनाली घहराई थी,
चौक देखा मैने चुप कोने मे खडे थे प्रिय
माई ! मुख-लज्जा उसी छाती मे छिपाई थी ।।

एक तरफ जहा, इस छोटी-सी घटना ने उन्मादिनी उर्मिला के जीवन को प्रेम के सुगन्धि पूर्ण सौरभ से परिपूर्ण किया है, वहा दूसरी तरफ अशान्ति और वेदना का बीज-वपन भी किया है। नीलम के प्याले मे विष भी विष है, चाहे उसका बाह्य-रूप कितना भी सुन्दर क्यो न हो, पर अन्तर मे हालाहल की काल-कालिमा भी भयावह है। उर्मिला भी उसी दुख का अनुभव कर रही है। उसकी तो—

"मेरी छाती दलक रही है,
मानस-शफरी ललक रही है,
लोचन-सीमा छलक रही है,
आगे नही सहारा।"

जीवन मे उर्मिला को न कही सहारा दिखाई पडता है, न प्रकाश। उसे चारो तरफ अन्धकार ही अन्धकार दीखता है। पति-वियुक्ता रमणी का अन्तस्तल सतप्त है, परन्तु उनकी पुनीत स्मृति मे प्राण से टक्कर लेने की सामर्थ्य है। यथार्थ जब स्वप्न मे परिवर्तित हो जाता है, तो उर्मिला का कराहना अनुचित नही मालूम देता, उसके नयन-नीर चिरन्तन नारी के व्यथा-भार-सहन के प्रतीक स्वरूप है। वह स्वय करुणा की मूर्ति हो गई है। उसका सदन तडप और त्याग से ग्रथित है, जिसे देखकर पत्थर भी रोने लगता है और वज्र की भी कठोर छाती फट जाती है।

प्रणयिनी यशोधरा के जीवन मे ज्वाला और जलधारा ही देखने को मिलती है। वियोग मे जलन और पवित्रता दोनो है। गोपियो की विरह-व्यथा के समान उसका प्रेम समतल भूमि पर विचरण नही करता, वरन उसमे द्वन्द्व की पथरीली ककडिया है, जिसमे चोट का दुख बढ जाता है। प्रेम मे जीवन का सौन्दर्य है। पति-परित्यक्ता यशोधरा पति से बिछुडते ही अपने अजन और अगराग को तिलाजलि दे देती है। सुख-सेज पर सोई हुई नारी का स्वप्न जब बिखर जाता है, तो असीम वेदना मे उसकी आँखे भर जाती है और—

"ढलक न जाय अर्घ्य आँखो का, गिर न जाय यह थाली।
उड न जाय पछी पाखो का, आओ हे गुणशाली।।

इन पक्तियो मे मिलन की कितनी दर्दभरी पुकार है। निराशा के निशीथ के झोके मे भी वह प्रियतम को पाने की इच्छा रखती है।

वियोगिनी गोपा की अभिलाष-व्यजना बहुत ही चुटीली एव मर्म-स्पर्शी है—

सखि, प्रियतम है वन मे ?
किन्तु कौन इस मन मे ?

दिव्य-मूर्ति-वचित भले चर्म-चक्षु गल जाय,
प्रलय ! पिघल कर प्रिय न जो प्राणो मे ढल जाय।

जैसे गन्ध पवन मे !
सखि, प्रियतम है वन मे !

अनुरागिनी को दृढ विश्वास है उनके प्रेम पर और अपने अनुराग पर। गन्ध और पुष्प की तादात्म्य भावना मे गोपा और गौतम के एकीभाव का दर्शन है।

गुप्त जी ने नारी-हृदय की वेदना का सच्चा इतिहास कहा है, जिसमे दर्प की दीप्ति है और मान का रोष भी।

———

अध्याय १२

हिन्दी-काव्य में नारी

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल मे
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल मे ।[1]"

मानव सभ्यता और संस्कृति के उपकूला मे सबद्ध है, नारी का प्रश्न । नारी चिरन्तन जीवन की ज्योति, प्रेरणा और शक्ति की प्रति-मूर्ति तथा उन्लास और आनन्द की केन्द्र विन्दु है । वह एक ऐसी धुरी हे, जिसके चतुर्दिक मानव-ससार अपने जीवन के रगीन सपनो को देखता हुआ कला और सौन्दर्य साधना की नई नई कोटिया वनाता हुआ कभी तृप्ति का अनुभव नही करता । इस अतृप्ति और दीप्ति के पीछे जागरण और सघर्षो का मीलित इतिहास है जिससे हमारी चेतना प्रबुद्ध और जीवन गतिमान होता हे । परिवर्तनशील मानसिक चेतनाओ के साथ कवि की आन्दोलित भाव-भूमि जिस नारी की परिकल्पना करता है वह शाश्वत और चिरन्तन नारी की की प्रतीक हे । कवियो की कल्पना मे वह पीयूष की धारा रही है तो दार्शनिको के चिन्तन मे विष की ज्वाला ।

भारत के गौरवपूर्ण प्राचीन काव्य मे नारी विकास की मूल शक्ति रही है किन्तु कालान्तर मे जव वही विलास की पुतली बन जाती हे तो उस पर अनेक प्रतिबन्ध लग जाते है । एक तरफ वह प्रेम की मूर्ति ममता, त्याग, तपस्या, बलिदान, सेवा और स्नेह की प्रतिमा है तो दूसरी तरफ वह प्रतिबन्धो मे जडित एक व्यथित नारी भी है । नारी जहा स्वस्थ मानव स्नायुओ के लिये बल-स्वरूप है वहा लक्ष्य-प्राप्ति'

१ 'प्रसाद'—कामायनी सर्ग—३०

के मार्ग से च्युत करने वाली 'माया' भी है। कदाचित् इसी भावना की चरम-सीमा अथवा कामाध मानव का अपनी शक्ति और सयम के प्रति अविश्वास का उद्घोष है—

पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने ।
वार्द्धक्ये पुत्र रक्षति, न नारी स्वतन्त्र्यमर्हति ॥

बन्धन मे पडी नारी का यह रूप कटु सत्य है परन्तु हम यह भी नही भूल सकते कि नारी सारी सृष्टि की सचालिका शक्ति है, जीवन का रहस्यमय उल्लास है और है अनन्त प्रेरणा की धधकती ज्वाला। उपर्युक्त कारणो से महापुरुषो की दृष्टि मे नारी महान एव गरिमामय है और धार्मिक ग्रथो मे आदि-शक्ति है। गेटे ने कहा कि 'स्त्री जाति की सगति अच्छी आदतो की नीव है' तो मुहम्मद साहब ने फरमाया 'तेरा स्वर्ग तेरी माता के चरणो मे है।' सिद्धार्थ ने यदि कहा 'दुख और बलिदान नारी की कीमत है' तो मनु ने दृढ स्वर मे घोषित किया कि 'जिस घर मे नारी की प्रतिष्ठा है उसमे देवता बसते है। (यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता) अत' उदात्त विभूतिओ के कथन और धार्मिक ग्रथो मे नारी वन्दनीया रही है और उसका स्थान 'स्वर्गादपि गरीयसी है।

वैदिक काल के प्रबल नैतिक आध्यात्मिक काव्य मे नारी सर्वोच्च सिहासन पर आसीन सौदर्य और गौरव मे अन्त सौदर्य की अनुभूति रही है परन्तु विरक्ति और मोक्ष की धार्मिक चेतनाए जब उग्र और विकृत हुई तो वही नारी 'नरक का द्वार'[1] घोषित की गई। तात्पर्य कि प्राचीन काव्य मे नारी मानव-जीवन की ज्योति और पतन के पथ को प्रशस्त करने वाली समझी गई। इन दो रूपो मे नारी अभिव्यक्ति पा सकी है। महाभारत और रामायण जैसे ऐतिहासिक और जातीय ग्रन्थो मे, स्मृतियो जैन ग्रन्थो और धर्म-नीत सूत्रो मे एव सस्कृत के महाकाव्यो मे नारी सम्बन्धी दोनो प्रकार की उदार और अनुदार भावनाए उपलब्ध होती है।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल मे बौद्ध धर्म की दार्शनिक जटिलताओ और कुसस्कारो का विकृत प्रभाव काव्य मे परिलक्षित होता है। सिद्ध सम्प्रदाय के सन्तो ने नारी को विलास की सामग्री, मोक्ष का साधन और साधना की शक्ति के रूप मे स्वीकार कर 'महासुखवाद' का प्रणयन किया। फलस्वरूप इन सन्तो मे वर्णित नारी मर्यादाहीन और व्यक्तित्व-रहित है। मद्य, मासादि के अबाध सेवन पर जोर देकर जो आह्वान गीत इन सन्तो ने गाये वे नारी जाति के उच्च गौरवमय इतिहास के सर्वथा विपरीत है।

१—द्वार किमेक नरकस्य नारी।

मद्य मास च मीन च मुद्रा मैथुनेव च ।
एते पचे मकारस्यु मोक्षदायिनी युगे युगे ।।

काव्य मे नारी का यह रूप साधना का केन्द्र बना और नारी, महामहिम नारी, विलासिनी वनिता बन गई ।

इन साधको ने नारी-सेवन को महत्ता देकर, मोक्ष के साधन के रूप मे स्वीकार कर परम्परागत सामाजिक नैतिकता को छिन्न-भिन्न कर एक नवीन सामाजिकता की पृष्ठभूमि तैयार की । इस अस्त-व्यस्त सामाजिक जीवन की समस्त त्रुटियो और व्यभिचारपूर्ण स्थितियो को दूर करने का सफल प्रयास गोरखनाथ जैसे हठयोगियां ने किया । गोरखनाथ ने कहा --

धन जोबन की करै न आस,
चित ना रापै कामिनी पास ।
नादविद जाकै घटि जरै,
ताकी सेवा पारवती करै ।।[1]

इस उद्धरण मे वज्रयानियो के उद्दाम अनाचार की प्रबल प्रतिक्रिया का स्वरूप प्रतिविम्वित है । गौरखनाथ के 'कौलज्ञान' मे नारी के परित्याग और उसके विलासमय रूप की निन्दा स्पष्ट है । इन्द्रियो का सबसे बडा आकर्षण नारी है । इसी लिये इस पथ मे नारी की बडी निन्दा की गई है ।

भोगिया सूते अजिहु न जागे । भोग नही रे रोग अभागे ।।
भोगिया को मत भोग हमारा । मन इस नारी किया तन छारा ।।[2]

इस निन्दा से नारी का महत्व कम नही होता बल्कि नारी का एक सहज स्वस्थ सौदर्यमय स्वरूप प्रत्यक्ष होता है जो परवर्ती बौद्ध सन्तो के विलासी जीवन मे अपना अस्तित्व खो चुका था । हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है— इस मार्ग मे कठोर ब्रह्मचर्य, वाक्सयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आचरणो के प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि और मद्य मासादि के पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया गया है । ··· ·· इस दृढ कण्ठ-स्वर ने यहा की धार्मिक साधना मे कभी भी गलदश्रु भावुकता और ढुलमुलपन नही आने दिया । उत्तर भारत के साहित्य मे दृढता और आचरण शुद्धि भुलाई नही जा सकी है[3] ।

अपभ्रश काल की नारी भावना त्याग और विलास के विन्दुओ से सिमटी है ।

१—गोरख वाणी (पृ० ५६)
२—गोरख वाणी सग्रह (पृ० १३८)
३—नाथ सम्प्रदाय–हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृ० १८७)

परन्तु वीर गाथा काल की नारी केवल प्रेयसी और प्रियतमा नही, अपितु जीवन के विनाशकारी समय मे साथ देने वाली कर्त्तव्यशीला नारी भी है। 'रासो' काव्य मे वर्णित नारी प्यार की पुतली तो रहती है, परन्तु तलवार की धार पर खेलना भी जानती है। उस काल में देश, जाति, धर्म और सतीत्व की रक्षा मे जीवनोत्सर्ग करना नारी जीवन का लक्ष्य दीखता है, तभी तो वह समराङ्गण मे स्वय अपने कोमल हाथो से पति को रण-सज्जा से युक्त कर उत्साहवर्द्धन करती हुई कहती है —

पाछा फिर मत झाकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट मत जाज्यो खेत मे, पर मत आज्यो हार॥

नारी की यह वीर-दर्प-पूर्ण ओजस्विनी वाणी उसके पूर्ण विकसित व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन के दायित्व की स्पष्ट करनेवाली है। ऐसी वीर नारिया पति की मृत्यु का समाचार पाकर गौरव का अनुभव करती हुई कहती है —

अच्छा हुआ जु मारिया बहिणी म्हार कतु।
लज्जेज तु वय सिअहु अह भग्गा घर एतु॥

सयम और वीरोल्लासपूर्ण उक्तिया वीर गाथा काल के काव्य की मार्मिक अनुभूति है। नारी वहा केवल पैरो की बेडी नही अपितु धर्म-साधना एव सामाजिक जीवन के विकास की मूर्ति है। 'रासो' काव्य की नारी वस्तुत वास्तविक नारी है जिसमे जीवन के प्रति निर्मोह और कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा दोनो वर्तमान है।

वीर गाथा काल के कवियो का नारी के प्रति दृष्टिकोण कर्त्तव्य और भावना का मिश्रित दृष्टिकोण है। एक तरह वह कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाली प्रेरक शक्ति है तो दूसरी तरफ यौवनोन्माद से आकर्षित करने वाली विह्वला नारी भी। एक तरफ वह धर्म और कर्त्तव्य के लिए प्राण विसर्जन के मान स्थिर करने वाली है, वहा दूसी तरफ वह पथ भ्रष्ट कर जीवन के आनन्दोपभोग की कामना से अभिशप्त भी होती है। एक तरफ वह जहा शौर्य का मागलिक दीप जला कर अरमानो की होली खेलती है वहा दूसरी तरफ वह आकाक्षाओ की ज्वाला मे स्वय दग्ध होती है। वह कर्त्तव्य और प्रेम की सजीव शिखा है जिसकी लाल लपटो मे अनुराग मिट-मिट कर यौवन पाता है।

वीर गाथा काल के पश्चात् भक्ति काल के निर्गुण सतो ने नाथ पथी नारी भावना का स्वाभाविक विकास किया है। आचार की शुद्धता पर अधिक जोर डालने

वाले योगियो ने नारी के विलासमय रूप को अस्वीकृत कर लक्ष्य प्राप्ति के स्वस्थ मार्ग की ओर सकेत किया है। सच तो यह है कि इन योगियो ने नारी के सामाजिक गौरव को उपेक्षा की दृष्टि से नही देखा अपितु सात्विक गुणो से आपूरित नारी पर तामसिक प्रवृत्तियो की प्रबलता के प्रति घृणा प्रकट की। इसी भाव-धारा का क्रमिक विकास कबीर तथा निर्गुणियाँ सतो मे दिखाई पडता है। वे नारी मनोविज्ञान से यथेष्ट परिचय रखते हुए भी गार्हस्थ्य जीवन के प्रति अनुदार एव नारी के प्रति अन्यमनस्क से दीखते है। उदाहरण स्वरूप दो तीन पद देखिए—

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फासि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।
केसव के कमला ह्वै बैठी सिव के भवन भवानी।
पडा के मूरत ह्वै बैठी, तीरथ हू मे पानी।
जोगी के जोगिन होई बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होई बैठी, काहू के कौडी कानी।
भक्तन के भक्तिन होय बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भई साधो, यह सब अकथ कहानी।[1]

अन्यत्र कहते है :—
इक डाइनि मेरे मन मे बसे रे,
नित उठि मेरे जिय को डसे रे।[2]

इन पदो के आधार पर कतिपय विद्वान् आलोचक कबीर की नारी भावना को सकुचित एव समाज के लिए अहितकर मानते हैं। कदाचित् उनकी धारणा है कि कबीर ने अपने पदो मे, साखियो मे 'छोटी मोटी कामिनी सबही विष की बेलि' कह कर नारी जाति को कलकित और अपमानित किया है। उनकी दृष्टि मे नारी की न तो कोई अपनी मर्यादा है और न अपना कोई व्यक्तित्व है। वह पुरुष की चेतना को भ्रान्त करने वाली पथभ्रष्ट नारी हैं। इन धारणाओ मे औचित्य नही। मेरा विश्वास है कि कबीर ने नारियो के प्रति न तो अनुदार भावनाए अपनाई हैं और न अन्याय ही किया है। कबीर नारी को वस्तुत. प्रेम और त्याग की आदर्श प्रतिमा के रूप मे देखते होगे और यदि वे नारी के प्रति वैसी गर्हित भावना रखते तो

१ कबीर-वाणी— पद सख्या, १३४।
२ वही — ,, ,, १३६।

स्वयं आनन्द की चरम-सीमा मे पहुच कर वे 'हरि मेरा' मै राम की बहुरिया' न कहते। वास्तविक प्रेम की अत्यधिक प्रबलता मे आत्मा नारी का रूप धारण कर अत्यन्त भावुक हो जाती है। इसी आदर्श प्रेम और भावुकता का निखार होता है वियोग मे। वे कहते हैं —

"आसिक होकर क्या रे।
पाया हो तो दे ले प्यारे,
पाय पाय फिर खोना क्या रे।
जब अँखियन नीद घनेरी,
तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर प्रेम का मारग,
सिर देना तो रोना क्या रे।
आसिक होकर सोना क्या रे।'[१]

इस आदर्श प्रेम की पूर्ण परिपक्वता दिखाई पडती है वियोग मे। वियोग की मार्मिकता देखिए —

"तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नही चैन रात नहिं निदिया,
तलफ तलफ के मोरभै जिया॥
नैन थकित भये पथ न सूझै,
साई बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर किया॥[२]

कबीरदास जी स्वय गृहस्थ थे और घर मे रह कर अन्तस्साधना के पक्षपाती थे।

"अवधु, भूले को घर लावै।
सो जन हमको भावै॥
घर मे जोग भोग घर ही मे, घर तज बन नहिं जावै।
घर मे युक्त मुक्त घर ही मे, जो गुरु अलख लखावै॥[3]

१. कबीर वाणी—जिल्द १, पृ० ७५।
२. कबीर वाणी— "पद-सख्या" १७३।
३. कबीर वाणी— "पद-सख्या" ४०।

स्पष्ट है कि कबीर ने नारी की अभिव्यक्ति दो रूपो मे की है । नारी जहाँ लक्ष्य प्राप्ति में बाधक है वहा वह निन्दा के योग्य है, परन्तु जहा नारी जीवन मे प्रेम, सेवा, त्याग आदि अमूल्य भावो को उदबुद्ध करती हुई प्रेम-पथ को प्रशस्त करती है वहाँ कबीर ने उसकी प्रशसा शब्दो मे न कर स्वय आत्मा से नारी बन कर की है। वियोग और सयोग के दु ख-सुख की वही अनुभूति कबीर की प्रेम-परक भक्ति का आदर्श हे ।

माई बिन दरद करेजे होय ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासे कहू दुख होय ।
आधी रतिया पिछले पहरवा, माई बिना तरस रही सोय ।
कहत कबीर मुनो भाई साधो, साई मिले सुख होय ।।[1]

इन पदो से मालूम होता है कि कबीर नारीमनोविज्ञान से सर्वथा परिचित थे और नारी-स्वभाव के अत्यन्त सन्निकट पहुच चुके थे । नारी के अन्तरतम का पूर्ण प्रकाश उनके जीवन पर फैल चुका था । इसी नजर से उन्होने महान् शृगार-पट पर अपना काव्य प्रस्तुत किया है । कबीर ने प्रियतमा बन कर प्रियतम के रूप-लावण्यादि के जो ताने-बाने बुने है वे शाश्वत और चिर-नवीन है । अत कबीर की भावना नारी के प्रति अत्यन्त उदार और सामाजिक है । उनका प्रेम जितना महान् है, नारी की महत्ता उससे बढती ही है । कबीर की नारी सब कुछ खोकर सब कुछ पा लेती है । त्याग, बलिदान, उत्सर्ग की उच्च सात्विक भूमि पर कबीर ने नारी को प्रतिष्ठित कर नारी की गरिमा और महानता की प्राचीन धारा को अपने काव्य-कलेवर मे सुरक्षित रक्खा है ।

वीर गाथा काल की नारी निर्गुण काव्य मे अपना सामाजिक गौरव खोकर आध्यात्मिकता के पक मे फस जाती है । धरती पर रहनेवाली वास्तविक नारी कबीर की भावना मे सात्विक प्रेममयी नारी बन कर जायसी मे ईश्वर का प्रतीक बन जाती है ।

कविवर जायसी और सूफी सतो की नारी-भावना लौकिक प्रेम मे अलौकिक प्रेम की मार्मिक व्यजना है जायसी की नारी वास्तविक नारी की प्रतिरूप भी है और अलौकिक शक्ति का सकेत भी । वह एक साथ लौकिक और रहस्यमयी है । जिस प्रकार नारी का आकर्षण उसकी रहस्यमयता मे निहित है उसी प्रकार 'पद्मावत' की रहस्यमता उसका आकर्षण है । सूफी सतो द्वारा वर्णित नारी लौकिक होते हुए भी

१. कबीर वाणी— जिल्द १, पृष्ठ १२० ।

अलौकिक है। प्रेम और व्यथा को सुन्दर कथा मे पिरो कर सूफी सतो ने नारी को एक अलौकिक व्यक्तित्व दिया है। उसकी सामाजिकता तो अक्षुण्ण रहती ही है, उसकी आध्यात्मिकता भी प्रेरणा और स्फूर्ति देने वाली होती है। जायसी के सयोग और वियोग के चित्रो मे आप सूफियो की नारी भावना का रूप अकित कर सकते है। रत्नसेन और नागमती का मिलन वास्तविक मिलन है, बिछुडी हुई सारस की जोडी के मिलन के समान ही।

"तस रोई मिले पुरुष औ गोरी।
जैसे बिछुरी सारस जोडी॥

पद्मावती के रूप वर्णन मे जायसी ने अनन्त सौन्दर्य का सकेत किया है जिसके वियोग मे सारी सृष्टि व्यथित व्याकुल है —

बरुणी का बरनौ इमि बनी। साधे बान जनु दुई अनी॥
जुरी राम रावण कै सैना। बीच समुद्र भए दुई नैना॥
बारहिपार बनावरि साधा। जा सहु हरे लजा विष-बाधा॥
उन्हे बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ ससारा॥
गजन् नखत जो जाहि न गने। वै सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ देहि सब साखी॥
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढे। सूतहि सूत बेधि अस गाढे॥ [1]

इस आध्यात्मिक परिकल्पना के साथ काम-चतुरा नारी-हृदय का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। इन चित्रो के साथ वेदना का भी बडा मार्मिक और गभीर चित्र उपलब्ध है और वह 'बारह मासा' मे अभिव्यक्ति पा सका है।

पिउ सौ कहेहु सदेसडा, हे भौरा, हे काग।
सो धनि बिरहे जरि मुई, तेहिक धुआ हम्ह लाग॥ [2]

कितनी मार्मिक पक्तिया है। वियोगिनी का मार्मिक स्वर मानव-हृदय को हिला देने मे समर्थ है। सयोग-वियोग के दामन मे वात्सल्य के फूल तो और भी सुन्दर लगते है। मा का इकलोता बेटा सात समुद्र पार सिहल द्वीप जा रहा है। मा इस दारुण कथा को सहने मे असमर्थ है, वह करुण स्वर मे कहती है —

राजपाट दर, परिगह, तुम्ह ही सौ उजियार।
बैठि भोग रस मानहु, कै न चलहु अँधियार॥ [3]

१ जायसी ग्रन्थावली—नख-शिख खड पृ० ५३।
२ वही —नागमती-वियोग खड पृ० १५४।
३ वही —जोगी खण्ड पृ० ५४।

मा की दुनिया अधेरी हो रही है। उसकी आखो का तारा और जीवन की ज्योति जा रही है। उसकी वेदना की परख कौन कर सकता है ?

अत सूफी सन्तो की नारी जीवन की वास्तविक सत्ता से प्राणवन्त होती हुई आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर है। कबीर ने आत्मा को नारी के रूप मे ग्रहण किया तो जायसी आदि सन्तो ने नारी को पृथ्वी और स्वर्ग दोनो की विभति मान कर शृङ्गार-मडित किया। सूफी सन्तो की नारी भावना वास्तव मे लौकिक और पारलौकिक नारी को सस्पर्श करती हुई एक अभिनव आलोक प्रदान करती है।

नारी के प्रति वैष्णव भक्त कवियो की धारणा अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय रही है। कबीर और जायसी आदि निर्गुणवादी कवियो के आध्यात्मिक पर्दे से निकल कर नारी मानवी रूप धारण कर जन-जीवन की सामाजिक और धार्मिक चेतना को उन्नत करती है। विद्यापति चित्रित राधा, सूर की राधा और गोपिया तथा तुलसी की सीता, कौशल्या आदि नारिया कवि के मनोभावो को स्पष्ट करती हैं। विद्यापति की राधा जन सम्पर्क से दूर सौंदर्य और विलास की प्रतिमा है। वह रूप की ज्योति और परमात्म शक्ति का मूर्त रूप है। विद्यापति की नारी वास्तव में चडीदास और जयदेव की नारी से भिन्न नही, फलत दृष्टिकोण मे वास्तविक अन्तर नही है। चण्डीदास की नारी जहा जीवन के प्रेम-सौदर्यं, भावुकता और नारीत्व के प्रति जागरूक है वहा जयदेव की नारी शारीरिक मासलता और चपलता की प्रतिनिधि है। विद्यापति की राधा मे वस्तुत इन दोनो भावो का सतुलित रूप दीख पडता है। डा० दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है "विद्यापति की राधा कई चित्रो का समष्टि रूप है। जयदेव की राधा की भाति उसमें शरीर का भाग अधिक है. हृदय का कम।" विद्यापति की नारी मे सम्मोहन और आकर्षण के साथ रूप-लावण्य की प्रचुरता हे।

'देख देख राधा रूप अपार।
अप्रसब वे बिहि आनि मिलाओल, खिति तन लावनि सार ॥
अगहि अग अनग मुरछायत, हेरए पडए अबीर।
मन्मथ कोटि-मथन कस जे जन, से हेरि महि-मधि गीर ॥
कत कत लखिमी चरन-तल नेओछए, रगिनि हेरि बियोरि।
करु अभिलाख मनहि पद-पकज' अहोनिसि कोर अगोरि ॥"

नवयौवना की सरलता और आकर्षण देखना हो तो यह पद देखिए —

"सुन्दर बदन चारु अरु लोचन काजरे रञ्जित मेला।
कनक कमल माथे काल भुजङ्गिनि शिरियुत खञ्जन खेला ॥"

श्रौर भी .—

"सारङ्ग नैन वयन पुनि सारङ्ग सारङ्ग तसु समुधाने।
सारङ्ग उपर उगल दस सारङ्ग केलि कदत मधुपाने ॥"

विद्यापति की नारी सुन्दरी है जो जीवन की उद्दाम लालसा की पूर्ति मे समर्थ है। नारी अपनी समस्त ऐन्द्रिकता के साथ विद्यापति की पदावलियो मे उभार पा सकी है। विद्यापति की नारी किशोरी है, मुग्धा है और है आनन्द केलि मे विभोर रहने वाली। उसके अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग दोनो सुन्दर है। दाम्पत्य प्रेम और रति के साथ वियोग और सयोग की अनेक अन्तर्दशाओ की व्यजना कर विद्यापति ने नारी को मानवी रूप मे ही रखा है। एक तरफ वे सयोग शृङ्गार द्वारा नारी के रति-प्रेम की अभिव्यजना करते है तो दूसरी तरफ वियोगक्रान्त नारी के अन्तरतम मे पैठ उसकी मार्मिक अनुभूतियो को अभिव्यक्त करते है। तात्पर्य कि विद्यापति का नारी के प्रति दृष्टिकोण सहज, स्वाभाविक और मानवी है।

महाकवि सूरदास की नारी सलज्ज मुस्कान के साथ जीवन को सुखमय बनाती हुई आध्यात्मिक है। एक तरफ वह जीवन के विकास की मूल शक्ति है तो दूसरी तरफ पारलौकिक जीवन की कुहेलिका भी। कदाचित् इसी कारण विद्यापति और सूर की नारी-भावना मे अन्तर है। विद्यापति की नारी मे वासना और ऐन्द्रिकता का चोखा रग है। किन्तु सूर की राधा मे प्रणय और समर्पण की गरिमा है। विद्यापति की नारी समाज की लाज लगाम को ऐहिक जीवन के सुख के लिए छोड अभिसारिका बनती है, सूर की नारी जीवन के समस्त आकर्षण और सुख से मुक्त होकर समाज के बन्धन को कुचल कर चिरन्तन पुरुष से मिलने बावली हो कुजो की ओर दौड पडती है। सूर की नारी वास्तव मे ब्रह्म पुराण की नारी है। वह साख्य दर्शन की 'प्रकृति' है।

"विना मृदा घट कर्त विना स्वर्जैन कुण्डलम्।
कुलाला स्वर्णकारश्चय नहि शक्त कदाचन्।
तथा त्वचा बिना सृष्टि न च कतुमह एक।
सृष्टेराधार भूतात्व बीज रूपो अहमच्युत।

सूर की नारी एक अलौकिक सगुण रूप धारण करती है। सूर नारी को जगज्जननी मानते है और इसी जग-जननी राधा से भक्ति की याचना करते है —

'कृष्ण भक्ति दीजै श्री राधे सूरदास बलिहारी।'

स्पष्ट है कि सूर ने नारी को उच्च गुणो से आभूषित कर नारी-जाति को उचित गौरव देकर नारी के प्रति न्याय किया है। कुछ आलोचक सूर की नारी 'राधा' पर परकीयत्व का आरोप करते है और इस असामाजिक धारणा के लिए सूर की निन्दा करते है परन्तु सूर की राधा परकीया नही, स्वकीया है। राधा वास्तव मे कृष्ण की प्रेयसी नही, पत्नी है। रासलीला के प्रसङ्ग मे राधा का कृष्ण के साथ विवाह कराकर सूर ने राधा के स्वकीयत्व की रक्षा कर नारी जाति को गौरव दिया हे। यशोदा के रूप मे मातृत्व के गौरव और आह्लाद, राधा के रूप मे स्वकीया के समपर्ण और अनुराग एव गोपियो की प्रेम-व्यजना मे हृदय की मार्मिक अनुभूतियो का दिग्दर्शन कराकर सूर ने नारी जाति के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और आस्था प्रकट की है।

गोस्वामी तुलसीदास चित्रित नारी और विद्यापति, सूर चित्रित नारी मे थोडी भिन्नता हे। तुलसी ने नारी की महानता को स्वीकार कर उसकी यथेष्ठ प्रशसा की हे परन्तु जहा नारी समाज, जाति, देश और धर्म के मार्ग मे बाधा उत्पन्न कर जीवन को विश्रृङ्खल करती है अथवा उच्छृङ्खल हो समाज और धर्म के नियमो की अवहेलना करती है। वहा तुलसी ने नारी को निन्दनीय ठहराया है। वे अयोध्यावासियो के कठ-स्वर में कहते है —

"सत्य कहहि कवि नारी सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रति विम्बु बसकु गहि जाई। जानि न जात नारी गति भाई॥ [१]

इस तरह के वृतान्तो की मानस मे कमी नही। तुलसी के आदर्श पात्र भरत जहा नारी के सम्बन्ध मे कहते है :—[२]

"विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
सरल सुशील धरमरत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥

वहा 'मानस' का अधम पात्र रावण भी वही कहता है —[3]

"नारि सुभाउ सत्य कवि कहही। अवगुन आठ सदा उर रहही।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥

यहा तक ही नही, नारी की निन्दा स्वय नारी ही करती है [४]

'अधम ते अधम अधम अति नारी।'

---

१ रामचरित मानस—अयोध्या कांड, ४०।
२ रामचरित मानस—अयोध्या काड, १६२।
३ वही —लका काड, १४।
४ वही —अरण्य काड, ३५।

मानस मे नारी निन्दा के स्थल सर्वत्र देखे जा सकते है। डा० माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है,[1] "प्रत्येक युग के कलाकार नारी-चित्रण मे प्राय: उदार पाए जाते है, किन्तु नारी-चित्रण मे तुलसीदास बेहद अनुदार है। ·····किसी भी नारी पात्र से यदि कही कोई भूल हो जाती है तो हमारे कवि के अनुसार सारी नारी-जाति उसके लिए भर्त्सना का पात्र हे।" इस आलोचना के साथ हमे यह अवश्य ध्यान में रखना होगा कि तुलसीदास जी की ये उक्तिया किस प्रसङ्ग और परिस्थिति की है। प्रबन्ध काव्य लेखक को उतनी स्वनन्त्रता नही होती जितनी गीतिकाव्य लेखक को। राम के वनवास पर ग्रामवासियो की नारी के प्रति और क्या धारणा हो सकती थी ? वृद्ध पति की तरुणी स्त्री के जो चित्र और उसके दुष्परिणाम तुलसी ने चित्रित किए है वे सर्वथा सत्य है।

तुलसीदास जी का नारी के प्रति दृष्टि कोण स्वस्थ और सबल है। उनकी नारी-भावना मे जहा सीता और कौशल्या के आदर्श है वहा कैकेयी, मन्थरा और मन्दोदरी मे वास्तविक मर्यादा का उल्लघन तुलसी को सह्य नही। कैकेयी राजरानी रहते हुए भी तुलसी का कोप-भाजन बनी, मन्दोदरी राक्षस-पत्नी होते हुए भी प्रशसा के योग्य ठहराई गई क्योकि प्रथम ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राम को वन भेजा तो दूसरी ने रावण को सत्पथ पर ले आने के लिए सतत प्रयत्न किया। एक मे मातृत्व का विकृत स्वरूप है दूसरे मे कर्तव्य-निष्ठा का अतिरेक। तुलसी की नारी-भावना सीता की लज्जा-शीलता, सुशीलता, विनम्रता, पतिव्रता और सरलता मे, कौशल्या की सेवा-परायणता, पति-प्रेम, त्याग और क्षमा मे मूर्त हो उठी है। हा, जहाँ नारी अपने पथ से च्युत होकर अवगुणो के पक मे जाकर दूसरो के लिए कष्ट का कारण बनी है वहा तुलसी ने नारी की भरपूर निन्दा की है। तुलसी की नारी-भावना में यथार्थ और आदर्श का सतुलित स्वरूप है। तुलसी की नारी आदर्श कुल वधू, आदर्श पत्नी और आदर्श माता है। वह आदर्श समाज की सुन्दर उपज है। तुलसी ने नारी को महान् विभूति समझ कर नारी के साथ न्याय करते हुए अपने उदार हृदय का परिचय दिया है।

रीति-युग के कवियो की नारी-भावना अत्यन्त सकुचित एव अमर्यादित है। नारी का बाह्य सौन्दर्य, उसके शरीर का प्रत्येक अङ्ग काव्य का विषय बना। नारी का विकृत रूप जीवन की चरम अभिलाषा के रूप मे अभिव्यक्त हुआ। नारी भोग्या बनकर अलकरण के भार से नत हो गई। वही नारी जो वीर गाथा-काल में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती थी, वही रीति-युग मे भाव-विरह, प्रेम के स्थूल रग मे डूबी है।

---

१ तुलसीदास—'कला', पृष्ठ ९९।

वह नारी जो भक्ति-काल मे प्रेरणा और शक्ति का स्वरूप धारण कर चेतन मानव को प्रणव मे दीक्षित करती थी वही रीति-युग मे वासना के कीचड मे बुझती शिखा के समान दीख पडती है। रीति-युग की नारी चकाचौंध उत्पन्न करती है परन्तु उसमे महिमा और गौरव नही है। इस युग मे नारी का अन्त सौन्दर्य उपेक्षित किया गया और स्थूल सौन्दर्य की अवतारणा की गई। नारी की सामाजिक मर्यादा नष्ट हो गई और नारी केवल भोग का साधन बनी।

रीति-युग की इस कलुष भावना का परिहार भारतेन्दु जी और उस युग के कवियो ने किया। भारतेन्दु जी ने नारी को बन्धन से निकाल कर उसे उसका गौरव पुन देने की चेष्टा की। नारी के उत्थान और पतन के साथ पुरुष के उत्थान और पतन होते है। भारतेन्दु जी ने अपने काव्य मे प्रेम के गीत गाये परन्तु 'नील देवी' जैसी क्षत्राणी की कल्पना कर केवल सोये भारत को उठाने मे सन्नद्ध ही नही हुए बल्कि नारी जाति को उठाने और जागृत करने मे सतत प्रयत्नशील रहे। नारी मानव जीवन के प्राण की रागिनी और तेज की प्रतिमा बनी। भारतेन्दु जी के इस प्रयत्न से नारी केवल स्थूल सौन्दर्य की सुप्त भावना नही रही बल्कि उसमे अभिनव जागृति के लक्षण दीख पडे। नारी सामाजिक मर्यादा से गौरवान्वित और लोक-कल्याण की भावना मे परिपूर्ण हुई। इस युग मे नारी के प्रति कवियो के दृष्टिकोण मे महान् परिवर्तन हुआ। गुप्त जी एव 'हरिऔध' जी की नारी भावना मे वही परिवर्तित नारी—युगो से अभिशप्त नारी—अपनी वेदना और व्यथा के बोझ से दबी अभिव्यक्ति पा सकी है। गुप्त जी ने लिखा —

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आचल मे है दूध और आखो मे पानी॥[1]

हरिऔध की नारी विश्व-कल्याण और लोक के लिये अपने प्रेम का बलिदान करती है। वह समाज-सेविका और राष्ट्र-प्रेमिका है। हरिऔध की नारी मे जीवन की गति और देश का मान सन्निहित है। त्रिपाठी जी ने जागरूक नारी का चित्र 'स्वप्न' की सुमना और 'पथिक' की प्रिया मे दिया। इस युग मे नारी को रीति-युग से भिन्न एक नई परम्परा मिली। इस युग की नारिया रीति-युग की नारिया नही, मान-विरह की प्रतिमा नही, बल्कि समाज की कर्णधार और राष्ट्र के महत् कार्यो मे हिस्सा बटाने वाली नारिया है। इस युग मे नारी राष्ट्रोद्धार के लिए मर मिटने की प्रेरणा देने वाली शक्तिमती माता और दुर्गा बन जाती है। वह रीति-युग की अबला नही, सबला है, भारत माता है।

१ यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ १।

त्रिंश कोटि कठ कलकल निनाद कराले
के बोले मा तुमि अबले।
बहु बल धारणीम् नमामी तारणीम्
रिपुदल वारणीम् मारतम् ! बन्दे मातरम्।

बन्दिनी नारी उन्मुक्त आकाश मे साँस लेती दीख पडती है। राष्ट्रीय युद्ध सग्राम मे वह वीरता की प्रतीक बनी। सुभद्रा कुमारी चौहान की ये पक्तियां —

चमक उठी सन् सत्तावन की वह तलवार पुरानी थी।
खूब लडी मरदानी वह तो झासी वाली रानी थी॥

नारी के प्रति कवियों के दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक सामने रख सकी है।

नारी की इस स्वाभाविक् गरिमा के साथ छायावादी युग की नारी का मेल नही। इस युग के कवियों की नारी कवि कल्पना-लोक की सृष्टि है जिसमे जीवन का स्पन्दन नही। नारी का अस्तित्व केवल भावुकता के लिये, नारी का सौन्दर्य केवल कल्पना के लिये स्वीकार किया गया। नारी का अतीन्द्रिय सौन्दर्य जीवन का सत्य बना और इस कुठा ने नारी को न मर्यादा प्रदान की और न उसका गौरव अक्षुण्ण रखा। फिर भी इस गहन कालिमा के बीच कवि का अन्तर पुकार उठा है —

"मुक्त करो नारी को मानव,
चिर बन्दिनी नारी को।
युग युग की निर्मम कारा से,
जननी, सखि प्यारी को।"

इस आशा की दीप्ति प्रतिफलित होती है श्री जयशकर प्रसाद जी मे। 'प्रसाद' में नारी सार्वजनीन शक्ति की प्रतीक है। कवि की मौलिक प्रवृत्तियो ने नारी को पुरुष की प्रेरणा और शक्ति के रूप मे चित्रित किया। नारी जीवन को गति देने वाली शक्ति बनी। किन्तु कामायनी के बाद जैसे आधुनिक नारी-भावना का ह्रास-युग आ गया। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद मे नारी को न तो वह परम्परागत मर्यादित गरिमा प्राप्त हो सकी, न उसका युगोचित वीर बलिदानी स्वरूप ही स्थिर रह सका। प्रगतिवाद मे नारी का विकृत रूप ही दिखाई पडता है। प्रयोगवाद में नारी के लिये नये मानो की खोज हो रही है।

सारांश कि हिन्दी काव्य मे नारी के प्रति कवियो का दृष्टिकोण सदा बदलता रहा है। सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुकूल ये परिवर्तन हुए हैं। इसी वजह से नारी कभी नारी ही रही, कभी परमात्मा की प्रतीक के रूप मे आई और समय पडने पर वह दुर्गा और भारतमाता बनी। सच तो यह है कि नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण के मूल्याङ्कन द्वारा किसी देश और जाति के सामाजिक स्तर, सभ्यता और संस्कृति की झांकी पा सकते है।

अध्याय १३

हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण

युग एव काल के स्वर्ण सोपान पर सतत् प्रगतिशील मानव ने जब सर्व-प्रथम ज्ञानरश्मि की एक झाकी देखी, तो वह भावावेश के प्रथम झझावत को रोकने मे असमर्थ-सा हो गया, उसे अपने चारो तरफ एक पुलक, रमणीयता तथा नूतनता का मनोरम दृश्य आलोक के साथ दीख पडा। हर्ष से आक्रान्त विस्मय से विमुग्ध, तथा आकाक्षा से उन्मत्त होकर उसका हृदय-प्रात अपने सम्पूर्ण वेग मे प्रकाशित होने के लिये लालायित हो उठा, और कवि एक दिन अपने भावो का टटोलता, सम्हालता और बिखराता चल पडा। भावो की अभिव्यजना का वह दिन धन्य है क्योकि उसी दिन मानव ने अपनी प्रगति का प्रथम पद रखा, उसी दिन भावी-सौन्दर्य-जगत् के शिलान्यास-समारोह को उल्लासपूर्वक सपन्न किया तथा उसी दिन उसने उषा की स्निग्ध मुस्कान, नारी के दमकते यौवन, कोयल की हृदय हिला देने वाली कूक, पपीहे की 'पी कहा' और वर्षा की रिमझिम मे प्रकृति-परी के सुन्दर अवयवो का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कवि ने जब अपनी आखे खोली और उसने जगत् के नाना रूपो के बीच प्रकृति के नाना व्यापारो को देखा तो अकस्मात् युग-युगो से मूक वाणी ने अपने स्वर की झकार से मानव हृदय के सुसुप्त तार को झकृत कर दिया, उस दिन से आज तक कवि विस्तृत नीलाकाश, स्वर्णिम प्रभात और साध्यकालीन रक्तिम गगन के बीच नक्षत्रमय दीप्ति को देखता आया है। पक्षियो के कलरव, पुष्पो की मादक मदभरी सुगन्ध, पशुओ का गर्जन, मृग-शावक के नयन, भ्रमरो की गुजन तथा मधु-मक्खियों के भनन् भनन् ने उसके हृदय मे अज्ञात कम्पन और हर्ष का सृजन किया है। उसका हृदय बुद्धि के विवेकाकुश को निरादृत कर, सौन्दर्य को निर्जीव और जड न समझ कर अपनी भाव-विकलता की आकुलता को आवरण मे न रख सका और तब कवि की वाणी भावो को सप्राण करती हुई जीवन के माधुर्य और उल्लास को सवेग पल्लवित करती हुई सौन्दर्य की झाकी देने मे समर्थ हुई। तात्पर्य, उसी समय

कवि अपनी तूलिका से चित्र देने मे समर्थ हुआ जिसका चित्र उसके मानस चित्रकार ने प्रकृति के भिन्न रगो से पूरित देखा था ।

काल के व्यवधान को चीरती हुई काव्यधारा ने यह स्पष्ट कर दिया कि कवियो ने प्रकृति का अवलोकन कर प्रकृति दर्शन के परिणाम को भिन्न-भिन्न ढग से अभिव्यजित किया है । प्रकृति के रम्य-रूपो का दर्शन कर, जो मानव मात्र के लिये सुलभ है, और जो निर्मल, सहज एव स्वच्छ आनन्द देने वाला है । कुछेक कवि ऐसी प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करते है, तो कुछेक कवि प्रकृति को उपमा या उदाहरण के रूप मे ग्रहण कर काव्य-रूप देते है, कभी-कभी तो केवल प्राकृतिक दृश्यो का सुन्दर वर्णन तथा प्राकृतिक वस्तुओ का निदर्शन ही अभीष्ट होता हे किन्तु कभी-कभी कवि प्रकृति को मानवीय मनोवेगो के अनुसार रग कर चित्रित करते है । साराश यही कहा जा सकता है कि प्रकृति के बाह्य और सूक्ष्म सौन्दर्य का अभिव्यक्तिकरण कवि की भावनाओ, मनोवृत्तियो एव स्वभाव के आश्रित हे ।

हिन्दी साहित्य मे यद्यपि प्रकृति के भावात्मक रूप का निर्माण प्रचुर मात्रा मे हुआ हे परन्तु आधुनिक काल के थोडे से कवियो को छोडकर सस्कृत साहित्य जैसा रुचि-सस्कार का परिचय देने में हिन्दी के कवि असफल रहे है । सस्कृत साहित्य मे प्रकृति का चित्रण जितनी उच्च कोटि का हुआ हे उतना सुन्दर और उत्कृष्ट वर्णन हिन्दी मे बहुत कम हे । इस दिशा मे अग्रेजी साहित्य मे भी कुछ कम विशेषता नही । अग्रेज कवि कीट्स (Keats). शेली (Shelly), कोलरिज (Coleridge), टेनीसन (Tennyson', वर्डस्वर्थ (Wordsworth), आदि की कविताओ मे प्रकृति की सुन्दरता का स्पष्ट दर्शन तथा उसका निर्मल प्रकाश वातावरण को मनमोहक बनाता हुआ आप सहज रूप में देख सकते है । कीट्स की प्रतिभा तो वास्तव मे प्रकृति के बीच ही जागरुक होती थी । उसके विषय में कितने सुन्दर विचार व्यक्त किये गये है "He was in his glory in the fields. The humming of a bee, the glitter of the sun, seemed to make his nature tremble; there his eyes flashed his cheeks glowed and his mouth quivered." उसी प्रकार वर्डस्वर्थ (Wordsworth) के प्रकृतिदर्शन के विषय मे मैथ्यू आर्नोल्ड (Mathew Arnold) कहता है 'The nature took hold of his pen and wrote for him", उस कवि ने यह उक्ति प्रशसात्मक रूप से कही हे जो स्वय प्रकृति के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण रखता था तथा प्रकृति का अनन्य पुजारी था । वर्डस्वर्थ Wordsworth सचमुच मे प्रकृति मे एक जीवित जाग्रत शक्ति तथा आलोक को देखकर जो कह उठता है उससे प्रकृति के जीवन-महत्त्व का पता लग जाता है, "The slightest impulse in the vernal wood

would tell you more of man and the world than any sage or volumes of book can tell you" मृत-शिला (Epitaph) पर जो कवि यह उद्धृत करने की इच्छा प्रकट करता है "Here lies one whose name was writ on water" वह वास्तव मे प्रकृति का अनन्यतम पुजारी रहा है।

हिन्दी के आदिकाल मे जिस समय हिन्दू जातीयता की नाव मझदार मे लहरो से प्रतारित होकर अपने अस्तिव की रक्षा मे लगी थी उस समय हिन्दी के कवि-गण रण-चण्डी का आह्वान स्नेह-सुर मे कर रहे थे, किन्तु जब उनकी महत्वाकाक्षाओ पर प्रश्नवाचक चिह्न लगने लगे और वे पराजित होकर परमुखापेक्षी बन गये तो उस समय कवियो ने अध्यात्म की वाणी से रस का सचार कर जीवन को परितृप्त किया। राज्य को सुरक्षित रखने प्रेम के पनपने तथा जीने की इच्छा ने कवियो को प्रकृति दर्शन से रोक रखा। इसलिये सिद्ध साधुओ की वाणी मे प्रकृति के रहस्यात्मक एव चमत्कार उत्पादन करने वाले रूप की ही रेखा अकित की गई है। इसके उपरान्त कबीर आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियो ने प्रकृति से उपदेश ग्रहण कर जीवन को सुधार कर ले चलने के लिए साखी, सबदी कहे है। कबीर, रैदास, दादू दयाल, मलूकदास हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि है, और इन लोगो ने प्रकृति चित्रण मे प्रकृति का अद्भुत रूपक बाधा हे जो जनता के मन पर अपना प्रभाव जमाने के लिए तथा उनको अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए अनिवार्य था। सुन्दरी प्रकृति के सुन्दर रूप को वे नही देख सके, प्रेम-मार्गी कवियो ने भी प्रकृति के सुन्दर स्वरूप का पूर्ण अवलोकन न कर, केवल कथा की रसात्मकता तथा प्रेम-गाथाओ मे प्रेम-तत्व का प्रदर्शन कर विरह को साकार करने के हेतु प्रकृति-तत्त्व का आश्रयण किया है और कही २ वृक्षो अथवा फूलो की एक लम्बी सूची ही बनाकर दे दी हे। भक्तिकाल के दो कविरत्न सूर और तुलसी जिनकी रचना के आधार पर हिन्दी मे कृष्ण-शाखा तथा राम-शाखा चली तथा जो हिन्दी के श्रेष्ठ महाकवि है उनके काव्यो मे भी प्रकृति की रूप-माधुरी अपने असल रूप में नही दिखाई पडती। उन लोगो ने यद्यपि प्रकृति का दर्शन भरपूर किया था और तुलसी का तो देश-पर्यटन मे भी काफी समय व्यतीत हुआ था किन्तु प्रकृति का सहज रूप काव्य मे प्रस्फुटित नही हो सका। सस्कृत साहित्य के कवियो मे प्रकृति का जैसा सश्लिष्टात्मक चित्र कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति आदि कवियो की रचना मे पाया जाता है वैसा सुन्दर और आकर्षक प्रकृति-वर्णन सूर और तुलसी नही कर पाये। सस्कृत साहित्य की यह विशेषता रही है कि उसके कवि प्रकृति के रम्य रूपो की सुन्दर मूर्ति नेत्रो के सामने उपस्थित करने मे सफल हुए है और उसका मूर्तिमान रूप मन को आनन्द देने वाला होता है जो काव्य का एक विशिष्ट गुण है। सतोष की बात केवल यही है कि हिन्दी के प्रारम्भिक काल से लेकर तुलसी

के समय तक राजनैतिक परिस्थिति के कारण कविगण प्रकृति की तरफ से उदासीन थे, पर फिर भी तुलसी ने चित्रकूट का बडा ही सुन्दर वर्णन 'रामचरित मानस' मे किया है तथा 'गीतावली मे प्रकृति के सुन्दर चित्र उपलब्ध है। वैसे तो तुलसी के चित्रण मे प्रकृति का शुद्ध सदया, निठुरा और आलकारिक रूपो मे प्रयोग हुआ है पर वे अनुसन्धान के विषय है। साफ तौर मे केवल उपदेशात्मक रूप ही हम उनकी कविताओ मे देख पाते है —

'दामिनी दमक रही घन माही।
खल के प्रीति यथा थिर नाही॥'

रीतिकालीन कवियो ने तो अनन्त असीम रूप-सुन्दरी प्रकृति के बाह्य रूप-सौदर्य का दर्शन किया है। निस्सीम सौंदर्य को देखने-परखने की योग्यता ही उनमे नही थी। यद्यपि उनकी प्रतिभा अप्रतिम थी किन्तु इन मेधावी कवियो ने अपने आश्रयदाताओ के गुनगान और परम्परा-निर्वाह मे अपनी प्रतिभा एव क्षमता का अनावश्यक दुरुपयोग किया था। प्रकृति के स्वतत्र शुद्ध रूप की वे झाकी नही देख सके थे। बिहारी ने प्रकृति को नायिका के रूप मे देख कर विरह, हास और रुदन तक ही सीमित पाया था। यही नही, यह भावना प्राय उस समय के सभी कवियो मे काम कर रही थी। तभी तो पद्माकरजी की नायिका को खिले हुए गुलाब के फूल भी जलते हुए लाल अगारे से दिखाई पडते है और उनकी नायिका "बिज्जु छटा-सी अटा पै चढी सुकटो छनि घालि कटा करती है।" रीति काल के कवियो ने षट्ऋतु का जो वर्णन किया है उसमे प्रकृति का भव्य तथा चेतन रूप दृष्टिगोचर नही होता बल्कि उसमे उनकी काम-भावना और शब्द-चमत्कार की परितृप्ति दिखाई पडती है। पद्माकरजी ने वसन्त का जो आलकारिक वर्णन किया है उसमे वसन्त का मोहक रूप सामने न आकर शब्दो की कलाबाजी तथा उसका मायाजाल स्पष्टत सामने आ जाता है।

'कलिन मे केलि मे कछारन मे कुञ्जन मे,
क्यारिन मे कलिन कलीन किलकत है।
कहै पदमाकर परागन मे पानहु मे,
पानन मे पीक मे पलासन पगत है॥
द्वार मे दिसान मे दुनी देस देसन मे,
देखौ दीप-दीपन मे दीपत दिगत है।
बीथिन मे ब्रज मे नबेलिन मे बेलिन मे,
बनन मे बागन मे बगरो बसन्त है॥'

इस वर्णन मे वसन्त के व्यापक शरीर का आभास मिलता है उसका आन्तरिक सौदर्य नही। हा रीतिकालीन कवियो के बीच एक सुनहरी चमक के साथ सेनापति जी ने प्रकृति की ओर निहारा है पर उनका प्रकृति-प्रेम ऐश्वर्य की सीमाओ को

पार नही कर सका और उनकी प्रकृति चाँदी भी चम्मचो के साथ खेलती रही, धनियो तक ही सीमित रही तथा महलो के हास मे ही विलमी रही, परन्तु फिर भी और कवियो की अपेक्षा उनके षट-ऋतु वर्णन मे प्राकृतिक दृश्यो की स्वाभाविकता तिरोभूत नही होती और उनका वर्णन तथा प्रकृति-चित्र उस काल के सब कवियो से आगे निकल जाता है और साहित्य मे अपना एक गौरव रखता है। कार्तिक मास का वर्णन देखिए :—

"कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति,
'सेनापति' को सुहाति सुखी जीवन के गन है।
फूले है कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन है॥
उदित बिमल चद-चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध-ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भयो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर—सागर मगन है॥"

इस कविता मे कार्तिक रात्रि का कितना सुन्दर स्वाभाविक चित्र हे। वर्षा-ऋतु के पश्चात् आकाश की निर्मलता मे सुन्दर चादनी अपनी रूप-सुधा विकीर्ण कर रही है और सारा अग-जग राम की उज्ज्वल कीर्ति के समान धवलता से परिव्याप्त है। कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो सारा जगत् छीर-सागर मे डूबा है। अलकार वर्णन मे परिपाटी निर्वहण के साथ ही साथ कवि ने प्रकृति के रूप-जगत की आभा ज्यो की त्यो ही रखी है। सेनापति जी के ऋतु वर्णन सुन्दर हुए है और अलकारो ने उनके वर्णन मे चार चाद ही लगाये हैं। इस सिलसिले मे यह कहना उपयुक्त ही होगा कि देव कवि का प्रकृति वर्णन भी उच्च कोटि का हुआ है। वसन्त' पर उनका प्रसिद्ध कवित्त यह है —

डार द्रुम पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन-झिंगुला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै 'देव'
कोकिल हलावै-हुलसावै कर-तारी दै॥
पूरित पराग सो उतारो करै राई लोन,
कज कली-नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन-महीप जू को बालक बसन्त ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

बसन्त का वर्णन कितनी सुन्दरता के साथ इसमे कवि ने किया है कि मालूम पडता है सारी प्रकृति ही बसन्त को आकर्षित करने मे लगी है। यहा बसन्त कामदेव के नन्हे से बालक-रूप मे चित्रित किया गया है। वह फूलो का झगला पहनकर, नवीन पल्लवो के बिछावन पर, वृक्ष के पलने पर सोया हुआ है। उस छोटे बालक को पवन झुला रहा है, कीर-केकी बच्चे के मनबहलाव के लिये तरह-तरह की बातें कर रहे है और कोयल ताली बजा-बजा कर बच्चे का मन आनन्दित कर रही है। कज-कली नायिका बच्चे को कही नजर न लग जाए इससे भयभीत होकर, बच्चे की सुरक्षा के लिए एक मा की तरह, लताओ की साडी पहन कर राई-नोन उतारती है और गुलाब चटक कर बच्चे को प्रातःकाल जगाता है। रूपक कितना सुन्दर बन पडा है जिसकी प्रशसा करनी ही पडेगी।

लगभग ६००, ७०० वर्षो के बीच कवियो ने प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण कैसे रखे है इसकी चर्चा मैंने ऊपर की है। स्वर्गीय बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने लिखा है "कविता वह साधन है, जिसके द्वारा प्रति प्रकृति के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह होता है। कविता उन मूल और आदिम मनोवृत्तियो का व्यवसाय है जो सजीव सृष्टि के बीच सुख-दुःख की अनुभूति से विरूप परिणाम द्वारा अत्यन्त प्राचीन कल्प मे प्रकट हुई और मनुष्य जाति आदि काल से जिनके सूत्र से शेष सृष्टि के साथ तादात्म्य का अनुभव करती चली आई है। वन, नदी, नाले, पर्वत, कछार तो मनुष्य के आदिम सहचर है ही, पर खेत, पगडडी, हल, बैल, झोपडे भी मानव अन्तःकरण मे दीर्घ परम्परा के कारण मूल-रूप से बद्ध है। रागो या वेग स्वरूप मनोवृत्तियो का सृष्टि के साथ उचित सामजस्य स्थापित करके कविता मानव जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करने का प्रयास करती है।" इस दृष्टि-बिन्दु को सामने रखकर परीक्षा करने पर विदित होता है कि हिन्दी के कवियो का दृष्टिकोण प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के पूर्व तक अस्वाभाविक रहा है, हा, कही-कही पर इसके अपवाद हुए है। आधुनिक काल के सूत्रपात होने पर भी भारतेन्दु जी का प्रकृति के प्रति वही दृष्टिकोण रहा जो रीतिकाल के कवियो का था। इस युग मे भाव, वस्तु तथा भाषा सम्बन्धी समस्याओ का निदान हुआ, और जातीयता ने राष्ट्रीयता का बाना पहना, पर नवयुग की आलोकरश्मिया प्रकृति के अन्तर्तम मे नही प्रवेश पा सकी। भारतेन्दु-युग के कवि प्रकृति के बाह्य रूप पर ही लोभित रहे उसके हृदगत सौन्दर्य का रसास्वादन नही कर सके। भारतेन्दु का 'हरिश्चन्द्र' मे 'गगा-वर्णन' और चन्द्रावली मे 'यमुना-वर्णन' इसके प्रमाण है।

परिवर्तन जीवन का लक्षण है। जब एक वस्तु चलते-चलते रूढिगत हो जाती है तो उसके प्रति स्वाभाविकतया विद्रोह तथा अनिच्छा की भावना प्रबलता धारण

करने लगती हे। काव्य मे भी स्थूलता जब अपन वैभव की महानतम मधुरिमा मे आप्लावित रहती है तो सूक्ष्मता विद्रोह का सृजन करती है और इस विध्वसात्मक विद्रोह के कारण स्थूलता की राख पर सूक्ष्मता का विकास होने लगता है। यह परिवर्त्तन प्रथम-प्रथम ठाकुर जगमोहन सिह मे दिखलाई पडता है। उनके वर्णन मे प्रकृति की भव्य किरणे हिन्दी काव्य-भाल पर चमक उठती है। प्रकृति के क्षेत्र मे यह एक नवीन प्रयास था तथा नवीनता के मार्ग का प्रदर्शन था। ठाकुर साहब ने प्रकृति के विविध सुन्दर रूपो तथा भारतीय ग्राम्य जीवन का बडा ही रमणीय रूप 'श्यामा-स्वप्न' मे खीचा है। आप के नैसर्गिक प्रकृति-प्रेम को देख कर ही पडित रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है "विध्याटवी के रमणीय प्रदेश मे निवास के कारण विविध भावमयी प्रकृति के रूप-माधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति उनमे थी वैसी उस काल के किसी कवि या लेखक मे नही पाई जाती"। इसके पश्चात् नवीन धारा के कवियो की दृष्टि केवल प्रकृति के परम्परागत रूपो तक ही सीमित नही रही बल्कि उन लोगो ने अपनी आँखो से प्रकृति की आत्मा को भी देखना सीखा। हरिऔध जी के 'प्रिय-प्रवास' मे सध्या का आखो देख रूप ही वर्णित है।

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरु-शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा

यही नही, हरिऔध जी ने अपने महाकाव्य मे प्रकृति को मानवीय रूपो मे भी देखा है। कही शुद्ध, कही अनुकूल तथा कही प्रतिकूल पृष्ठाधार के रूप मे प्रकृति चित्रित हुई है। उनके प्रकृति-वर्णन मे कल्पना की प्रधानता है और कही-कही कल्पनाए बडी ही सुन्दर हो गई है। बादलो का गरजना, बिजली का चमकना तथा रिमझिम बून्दो का बरसना 'प्रिय प्रवास मे सर्वत्र मिलेगा। जूही, चमेली, बेला आदि पुष्पो तथा लताओ मे ममत्व रख कर कवि ने उनमे भी जीवन का स्पन्दन पाया है और वे भी मानवीय दुखो मे सहानुभूति दिखलाते है। उनके कल्पना समन्विन प्रकृति-वर्णन का एक सुन्दर चित्र देखिए—

"था क्वार मास निशि थी अति रम्य राका।
पूरी कला सहित शोभित चन्द्रमा था।
ज्योतिर्मयी-परम सर्व दिशा वना के।
सौदर्य साथ लसती छिति मे सिता थी।
.. ..

प्यारी प्रभा रजनि रजन पर्वतो को।
जो थी असख्य नव-हीरक से लसाती।
तो बीचि मे तपन की प्रिय कन्यका के।
थी चूर्ण-चारु मणि-उज्जवल को मिलाती॥
अत्युज्ज्वला पहन तारक-मुक्त माला।
दिव्यावरा बन–अलौकिक–कौमुदी से।
भावो – भरी परम मुग्धकरी हुई थी।
राका – कला कर–मुखी रजनी–पुरन्ध्री॥"

कल्पना की वेगवती धारा वर्णन की कोमलता से द्विगुणित हो गई है।

प्रकृति के निर्मल सौदर्य का प्रत्यक्षीकरण प० रामनरेश त्रिपाठी जी के 'स्वप्न' 'पथिक' 'मिलन' मे आप कर सकते है। इस वर्णन मे 'प्रिय-प्रवास' की तरह काल्पनिक प्रकृति का सुन्दर स्वरूप नही वर्णित किया गया है, न वह सदया और निठुरा चित्रित की गई है वरन् गावो, पर्वतो और उदधि–तीर पर दीखने वाले नाना चित्रो को कवि ने अपनी खुली आखो देखकर चित्रकार के सदृश लेखनी-बद्ध किया है।

"इन्द्रधनुष खेला करता है,
झरनो से हिल मिल कर दिन भर।
तृप्त नही होते है दृग, यह,
दृश्य देख अनिमेष अवनि पर॥
होता है इस नील झील मे,
श्यामा का आगमन सुखद अति।
जल क्रीडा करते है तारे,
लहरें लेता है रजनीपति॥"

इस तरह के सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो मे सभी पुस्तकें भरी पडी है। स्वप्न का ए. दृश्य देखिए —

"चारु चन्द्रिका से आलोकित,
विमलोदक सरसी के तट पर।
बौर-गन्ध से शिथिल पवन मे,
कोकिल का आलाप श्रवण कर॥
और सरक आनी समीप है प्रमदा,

करती हुई प्रतिध्वनि ।
हृदय द्रवित होता है सुनकर,
शशिकर छूकर यथा चन्द्रमणि ।।"

प्राकृतिक दृश्यो का बडा ही मर्मस्पर्शी चित्रण कवि ने किया है जिसमे सौंदर्य का आलोक है और है वर्णन का माधुर्य ।

आज का कवि तो रोटी के राग मे तथा अपनी बुभुक्षा मिटाने के उपाय मे लगा है, जीवन के लिये सघर्ष करने की आवश्यकता ने प्रकृति की स्पन्दनशीलता छीन-सी ली है । नगरो के निर्माण, मशीन की धड्ड धडड के बीच प्रकृति का चिन्मय सुन्दर रूप छिपता जा रहा है किन्तु कवि के जीवन मे राग फूंकने वाली अमर प्रकृति किसी न किसी रूप मे कवियो को मोहित कर रही है तथा उनमे प्राण और रँग भर रही है । 'प्रसाद', 'पत' 'निराला' 'महादेवी' आदि की कविताओ मे प्रकृति के नाना रूपो का विकसित चित्र आप देख सकते है । छायावादी युग ने प्रकृति की ओर एक नये ढग से देखा है और यही कारण है कि प्रकृति के सुन्दर चित्र छायावादी कवियो में निखरे है । 'महादेवी' ने 'आधुनिक कवि' मे स्पष्ट ही कहा है "छायावाद ... मे प्रकृति के सूक्ष्म सौदर्य मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौदर्य पर चेतनता का आरोप भी।" नवयुग के कवियो ने जीवन की कलुषता और कटुता मिटाने के लिए प्रकृति के सौदर्य की माधुर्यमयी अनुभूति की है । 'प्रसाद' जी प्रभात के समान इन सबो मे अग्रणी है और 'आसू', 'झरना', 'लहर', कामायनी', मे उनका प्राकृतिक-चित्रण तथा दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है । प्रभातकालीन ऐश्वर्य की सुन्दर झाकी प्रसाद जी ने जो हिन्दी जगत् को दी है वह आजन्म उसकी एक अनुपम निधि रहेगी ।

"बीती बिभावरी जागरी ।
अम्बर पनघट मे डुबो रही,
तारा घट उषा—नागरी ।
.. ..
लो यह लतिका भी भर लाई,
मधुकुल नवल रस गागरी ।'

'कामायनी' का प्रारम्भ भी प्राकृतिक वर्णन मे ही होता है—

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छॉह ।
एक पथिक भीगे नयनो से,
देख रहा था प्रवल प्रवाह ।। ...."

प्रसाद जी प्रकृति को चेतन और विश्वात्मा की अनुभूति मानते है अत' मानवता के व्यापकत्व की ओर ध्यान रखकर प्रकृति से जीवन ग्रहण करते है, उनकी सौन्दर्यानुभूति मे जीव और जीवन, दृश्य और द्रष्टा, प्रकृति और पुरुष मे स्थापित तादात्म्य हो जाता है। वे कहते है —

"नील नीरद देख कर आकाश मे
क्यो खडा चातक रहा किस आश मे ?
क्यो चकोरो को हुआ उल्लास है ?
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है ?

चातक नील नीरद को आकाश मे देख कर किस आशा मे खडा है, कलानिधि को आकाश मे देख कर चकोर क्यो उल्लास से भर गया है ? कवि भावना करता है कि मानव भी फिर क्यो नही चेतन प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत होकर उल्लसित हो। प्रसाद जी ने अपनी रचनाओ द्वारा स्पष्ट सिद्ध कर दिया हे कि प्रकृति मे सौन्दर्य की न्यूनता नही है और उनके चित्र कभी बासी और फीके नही होते। आज कवियो मे रस-बोध की शक्ति ही कम है जिससे वे प्रकृति की कमनीयता को देख रस-सिक्त नही हो पाते। कवि प्रसाद ने प्रकृति को कही स्वच्छ रूप मे कही उद्दीपन रूप मे कही मानवीय रूप मे और कही मगलमय रूप मे देखा है। उसका शिवत्व रूप देखिए :—

"उषा सुनहले तीर बरसती
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल मे अन्तर्निहित हुई।
....
सिंधु सेज पर धरा बधू अब
तनिक सकुचित बैठी सी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐठी सी।"

प्रकृति का मागलिक रूप कितना स्पष्ट है। उषा स्वर्ण की वर्षा कर रही है और लक्ष्मी की जय द्वारा मानव की समृद्धि और जय की सूचना है। दूसरे उदाहरण मे सौन्दर्य-भावना कितनी सुन्दर है। कवि के सामने प्रकृति का विधान विशाल चिन्तन का क्षेत्र प्रस्तुत करता है और उसकी सौन्दर्य-भावना दर्शन मे बदल जाती है।

"महानील इस परम व्योम मे
अन्तरिक्ष मे ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युतकण
किसका करते से सधान"

दर्शन की शुष्कता कही नही दिखाई पडती, प्रकृति के प्रति जिज्ञासा की भावना कवि मे सर्वत्र है और यही भावना एक ओर रहस्यवाद को जन्म देती है तथा दूसरी ओर प्रकृति-शोध के प्रति तत्परता रखती है।

नीले जलधर दौड रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने
प्रवहमान थे निम्न देश मे
शीतल शत शत निर्झर ऐसे
महाश्वेत गजराज गण्ड से
बिखरी मधु-धारा जैसे॥"

(कामायनी)

'प्रसाद जी' के उपरान्त 'गुप्त जी' को लीजिए। गुप्त जी राष्ट्रीय कवि है और प्रकृति की तरफ उनका दृष्किोण प्रकृति के कवि 'पत' और 'प्रसाद' जी के समान नही है, परन्तु प्रकृति के सुन्दर चित्र यत्र-तत्र अवश्य मिलेगे। 'पचवटी' मे प्रकृति का स्वच्छ शान्त रूप देखिए —

"चारु चन्द्र की चचल किरणे
खेल रही है जल थल मे,
स्वच्छ चादनी बिछी हुई है
अवनि और अबरतल मे।"

'पचवटी' प्रकृति-निकेतन है, कवि ने उसके सुन्दर स्वरूप का चित्रण कर उसकी मोहकता को स्थायित्व प्रदान किया है। मानव-प्रकृति का सुन्दर निरूपण तो सारी पुस्तक की विशेषता है। इसी प्रकार 'साकेत' मे स्वर्णिम प्रभात का कितना सुन्दर चित्रण है।

"सखि, नील नभस्सर मे उतरा
यह हस अहा! तरता तरता
अब तारक-मौक्तिक शेष नही,
निकला जिनको चरता चरता।

अपने हिम बिन्दु बचे तब भी
चलता उनको धरता धरता
गड जाए न कटक भूतल के
कर डाल रहा डरता डरता ॥"

'यशोधरा' मे विरह-वर्णन करते हुए प्राचीन परिपाटी के अनुसार कवि ने जो षट-ऋतु का वर्णन किया है उसमे भी प्रकृति की सुन्दरता मागलिक रूप मे दिखाई पड़ती है।

"सखि बसन्त से कहाँ गए वे
मै उष्मा-सी यहाँ रही ।
मैने ही क्या सहा सभी ने
मेरी बाधा व्यथा सही ॥...
सूखा कण्ठ पसीना छूटा, मृग तृष्णा की माया ।
झुलसी दृष्टि, अधेरा दीखा दूर गई वह छाया ॥"

ग्रीष्म की उत्तप्त ज्वाला का एक स्वाभाविक रूप पक्तियो मे फूट रहा है। उषाकालीन आकाश का वर्णन कवि ने कितना सुन्दर किया है —

"उलट पडा यह दिव-रत्नाकर
पानी नीचे ढलक रहा
तारक रत्नहार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा ॥"

फारसी प्राकृतिक अभिव्यजना पद्धति को अपनाकर कवि ने एक नवीन ढग की प्राकृतिक कल्पना का विधान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा की कविताओ मे (नीहार से दीप-शिखा तक) प्रकृति-वर्णन बहुलता से मिलता है। चन्द्र, सूर्य, किरण, वायु, अग्नि, उदधि, पुष्प, नक्षत्र, लता, गुल्म, ओस आदि का वर्णन इनकी रचनाओ मे सर्वत्र है। आपके दुख और नैराश्य के कारण आपका काव्य-प्रवाह दुख और पीडा का उद्बोधक होते हुए भी प्रकृति से अनुप्राणित है। अवनितल पर गिरते हुए ओस-बिन्दु के समय से लेकर दीप-शिखा के प्रज्ज्वलित होने तक महादेवी प्राकृतिक सौन्दर्य के मधुर गान गाती रही हैं ।

उनके गान मे अभाव की वेदना है जो अनन्त की जिज्ञासा के लिए प्रकृति का सहारा लेती है। उनकी अनुभूति कितनी सरस है।

"तैरते घन मृदुल हिम के पुंज-से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।
सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे,
नीद के उच्छ्वास-सा-वह कौन है ?

विशाल प्रकृति के हृदय मे निवास करनेवाली शक्ति का वे दर्शन करती है और यही कारण है कि प्रकृति में सर्वत्र वेदना का ही सचार होता है।

"तेरी महिमा की छाया-छबि
छू होता वारिध अपार
नील गगन पा लेता घन-सा
तम-सा अन्त हीन विस्तार॥"

प्रकृति को मानवीय भावनाओ से सिक्त करनेवाली महादेवी का एक उदाहरण और देखिए —

"सिन्धु का उच्छवास घन है
तडित–तम का विकल मन है
भीति क्या नभ है व्यथा का
आसुओ से सिक्त अचल।
दीप मेरे जल अकपित घुल अचचल" ।

प्रकृति के चित्रण के साथ साथ वेदना की चमक और हृदय की कसकपूर्ण रूप से लक्षित होती है।

"छायावाद तत्त्वत. प्रकृति के बीच मे जीवन का उद्गीत है" इस दृष्टिकोण से विचार करने पर महादेवी की करुणा मे डूबी कोमल गीतमयी भावधारा लोकगीतो की मार्मिकता आदर्श की ओर बढती हुई प्रकृति-पथ पर आरूढ हुई है। कृतियो के नाम रूपी बाह्य आवरण से लेकर भावना रूपी अन्तर्जगत के कण कण मे प्रकृति के ही गीत है।

"पत जी' प्राकृतिक सौदर्य के नन्दन वन मे रहनेवाले कवि है; उनकी अनुभूति एव मनोभाव प्रकृति के रमणीय रूपो को लेकर उद्भूत हुए है, प्रकृति के सुन्दर चित्रों को देखकर उनकी सौदर्यानुभूति सर्वप्रथम 'वीणा' मे अभ्यिजित होती है —

"प्रथम रश्मि का आना रंगिनि ! तूने कैसे पहिचाना ? कहाँ कहाँ हे बाल विहगिनि ! पाया तूने यह गाना"

प्रकृति-निरीक्षण 'पत जी' की सब से बडी विशेषता है; प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप और व्यापार उनकी आखो से ओझल नही हुए है; फलस्वरूप प्रकृति की बाह्य और आन्तरिक शक्तियो का परिचय प्राप्त करके ही वह प्रकृति-पारखी बने है। उनकी प्रकृति में प्रकृति इस तरह घुल मिल गई है कि अगर उनकी रचनाओ से प्रकृति को निकाल दे तो कवि निष्प्रभ और कविता निष्प्राण हो जाती है। हिमालय-प्रदेश मे स्थित अल्मोडे के प्राकृतिक सौदर्य का आभास कवि ने 'नक्षत्र' 'परिवर्तन', 'मधुवन', 'छाया', 'बीचिविलास', 'चादनी', आदि कविताओ मे मुख्यत तथा अपनी रचनाओ मे सर्वत्र दिया है। कवि का प्रकृति से तादात्म्य हो गया है और प्रकृति उसके लिए जड पदार्थ नही, सप्राण है। सौदर्य-शोध में कवि की दृष्टि प्रकृति की तरफ जाती है, और जिज्ञासा के भाव आप से ही आप फूट पडते है —

"मै चिर उत्कंठातुर—
जगती के अखिल चराचर
यो मौन मुग्ध किसके बल।"

यहा पर कवि ने प्रकृति को सकेत के रूप मे ग्रहण किया है तथा वह उसकी शक्ति का अजस्र स्रोत्र है। उसमे एक अनन्त शक्ति का दर्शन कर प्रकृति की स्पन्दनशीलता का अनुभव करता है तभी तो —

"शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चचल चंचल ?"

कवि ने बसन्त का वर्णन किया है जिसमे प्रकृति की तरुणाई दीख पडती है और प्रकृति के वास्तविक स्वरूप की निखार है। 'गु जन' के आमुख में प्रकृति के बाह्य रूप तथा बसन्त के क्रमिक विकास की मनोहर छटा है।

"गु जन गु जन, छाया उन्मन उन्मन गु जन
नव-वय के अलियो का गु जन
....
वन के विटपो की डाल डाल
कोमल कलियो से लाल-लाल
फैली नव-वध की रूप ज्वाल ...."

मधुमास की रूप ज्वाला चारो ओर फैली है। अल्मोडे मे बसन्त का रूप देखिए —

"यह अल्मोडे का बसन्त
खिल पडी निखिल पर्वत घाटी..."

कितनी सरस तथा भाव पूर्ण अभिव्यक्ति है। प्रकृति के विराट रूप का दर्शन करके कवि ने अपनी रचनाओ मे विराटत्व का प्रदर्शन किया है।

कवियो ने प्रकृति को दो रूपो मे देखा है, कोमल और उग्र। पंत जी ने कोमल रूप का चित्रण तो हर स्थान पर किया है पर उग्र रूप का चित्रण एक दो स्थल पर हुआ है, किन्तु कवि की आत्मा कोमल रूप-चित्रण मे ही रमी है। कोमल रूप का चित्रण —

"वह मृदु मुकुलो के मुख मे,
भरती मोती के चुम्बन,
लहरो के चल-करतल मे,
चादी के चंचल उडुगण।"

कितना सुन्दर कोमल वर्णन है पर कठोरता और भयानक प्रकृति के दर्शन भी उपलब्ध है —

"अहे वासुकि सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर,
छोड रहे है जग के विक्षत वक्षस्थल पर।"

कवि के लिए प्रकृति उसकी बाल सहचरी है, तथा वह अपनी भावनाओ के अनुरूप ही प्रकृति को देखता है। 'भावी पत्नी के प्रति' 'रूप–तारा तुम प्रकाम' 'तुम्हारी आँखो का आकाश' आदि कविताओ मे प्रकृति के शाश्वत सुन्दर रूप का विश्व-व्यापी प्रभाव कवि देखता है और स्वय प्रकृति ही उसकी प्रेयसी-सी जान पडती है।

"है मुकुल मुदे डालो पर
कोकिल नीरव मधुबन मे,
कितने प्राणो के गाने,
ठहरे है तुमको मन मे!"

यौवन की उत्तुग उर्म्मिमय आकाँक्षा का रूप मधुमास मे कवि देख पाता है और उसका कार्य प्रकृति का कार्य हो गया है तभी तो —

"मुकुल मधुपो का मृदुमास
स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार
मनोभावों का मधुर विलास,"

'एक तारा' और 'नौका विहार' प्राकृतिक कविताओ मे श्रेष्ठ है । नौका-विहार मे रूप-चित्रण कितनी भव्यता से कवि ने किया है। किन्तु अन्त मे जाकर कवि दार्शनिक हो गया है क्योकि इस निखिल ससार मे अपार सौदर्य को देख कवि अपनी शाश्वतता को भी परख लेता है। दर्शन के कारण कविता मे कही नीरसता नही है। पूर्ण कोमल भावनाएँ ही सर्वत्र है।

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भूतल ?
सैकत शैय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वगी गगा,
ग्रीष्म-विरल लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल ?"

तापसी-बाला गगा की पवित्रता और शान्ति का अनुभव करते हुए ग्रीष्म की नदी का बोध कितना सुन्दर है । कवि के वर्णन में कितना माधुर्य और आकर्षण है।

हिन्दी साहित्य का मूलाधार है अध्यात्मवाद और इस अध्यात्मवाद मे प्रकृति का स्थान अक्षुण्ण है क्योकि प्रकृति ब्रह्म की श्रेष्ठतम रचना है और मानव मन सौन्दर्य की चोट के कारण उस ओर सतत आकर्षित रहता है। कदाचित् इसी कारण प्रकृति कवियो के लिए अत्यन्त आकर्षक और मनमोहक रही है । प्रेम-मार्गी कवियो की प्रेम-व्यजना, राम और कृष्ण काव्य की सगुण-धारा, रीतिकाल की शृगार-धारा, रहस्यवाद, छायावाद तथा प्रगतिवाद प्रभृति वादो में प्रकृति-चित्रण कवि और काव्य की प्रेरिका रही है। हिन्दी काव्य मे ऐसे बहुतेरे प्रकृति चित्रण है विशेषत छायावादी कवियो के, जिन्होने प्रकृति के, सुन्दरतम स्वच्छ स्वरुप के चित्रण प्रस्तुत किए है यद्यपि उस पर बगला काव्य और अग्रेजी कविताओ का प्रभाव प्रच्छन्न रूप से अवश्य है। प्रकृति के स्वतत्र स्वरूप को यदि आप देखना चाहते हो, तो 'कामायनी' की निम्नाकित पक्तिया देखिए —

'उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी-सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि जल मे अन्तर्निहित हुई।
वह बिवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हसने फिर से
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से ।।

प० श्रीधर पाठक जी की रचनाओ मे प्रकृति-प्रेम स्वतत्राभिव्यक्ति पा सका है। प्रकृति स्वरूप के निखार और चित्रण या स्वच्छ वर्णन पाठक जी की विशेषता है। छायावादी कवियो की नवीन प्रकृति चेतना ने रीतिकालीन उद्दीपनकारी प्रकृति को उलट पलट कर साध्य रूप मे प्रकृति को उपस्थित कर रोमान्टिक कवियो की भाति पुकार उठे है (Back to Nature)। वास्तव मे आज के प्रकृति-चित्रण मे सौन्दर्य के स्वरूप का अलिखन-सदेश अभिमन्त्रित है और प्रकृति की नई झलक नये ओसकणो के समान कवियो को आकर्षित करती हुई काव्य के स्वरूप निखारने मे पूर्ण सफल हुई है।

हिन्दी साहित्य के प्रकृति-चित्रण मे आज का साहित्य एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चारण काल से लेकर भारतेन्दु तक जिसकी धारा क्षीण हो गई थी और शायद वह विलुप्त ही हो जाती उस धारा को प्रसाद पत, निराला, और महादेवी के प्रवाह से अवश्य प्रगति मिली है और इन कवियो का प्रकृति-प्रेम साहित्य मे अपना निजत्व रखता है।

अध्याय १४

हिन्दी काव्य में गीति

आवेगो और मनोवेगो से उच्छ्वसित होनेवाले गीतो का निर्माण किस भावुक ने कब किया, यह कहना अत्यन्त कठिन है, किन्तु गीतो की रचना अनादि काल से होती आ रही है, यह असदिग्ध है। जिस प्रकार ससार की समग्र वस्तुओं का उद्गम धूमिल और रहस्यमय है, उसी प्रकार गीतो के जन्म की कहानी भी गोपन भाव से परिपूर्ण है। हा, अनुमान और कल्पना के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि आनन्द की अपरिसीम भाव-भूमि पर अथवा व्यथा की विषादमयी घडियो मे गीतो की रचना हुई होगी। सभवत· गीतो को वाणी की रसमयता तब प्राप्त हुई होगी, जब किसी कोकिलकठी रमणी ने वात्सल्य स्नेह के उभार मे अपने नवल पाटल सदृश पुत्र को पालने में झुलाते समय लोरी गाकर सुलाने का प्रयास किया होगा या प्रकृति के नग्न दृश्यो को देखकर आकाक्षा से उत्प्रेरित होकर किसी कवि-हृदय ने गीतो की व्यजना की होगी अथवा प्रेम के असफल होने पर कवि-कठ से मादक रस धारा फूटी होगी। मेरी दृष्टि मे गीतो का सृजन कदाचित् हर्ष और विषाद की मनोभूमि पर हुआ है।

कविता के जन्म की कहानी मे निम्न श्लोक को मान्यता प्राप्त है —

"मा निषाद प्रतिष्ठाम त्वं गमा शाश्वति समा
यत्क्रौच मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।"

इस छन्दवद्ध गीत मे आदि-कवि बाल्मीकि के हृदय-तार की झकार है, जिसमे काम मोहित क्रौच पक्षी की मृत्यु की सवेदनात्मक अनुभूति का सकेत शामिल है। इस स्थल विशेष पर करुणा की उत्पत्ति विशेष रूप से हुई है क्योकि यह वध साधारण नही अपितु आनन्द की तन्मयता में डूबे हुए एक पक्षी का करुणवध है। आनन्द और वेदना के विलक्षण संयोग ने कवि को वाणी दी और गीत मुखरित

हुआ । इसी भाव की पुष्टि निम्न पक्तियो से भी होती है —

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान ।
उमड कर आखो से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ।"

गीतो के जन्म की यह कहानी दर्दनाक होते हुए भी रोचक और सत्य के समीप है । इन गीतो में व्यक्त भाव मानवता के प्रतीक है ।

कलाप्रिय सौन्दर्य-द्रष्टा और स्रष्टा मानव-जीवन के अन्तराल मे उठती हुई भाव-लहरियो को वाणी देकर जिस पवित्र रस-स्रोत का सचार करता है, उसका न अर्थ है 'न इति'। प्राचीन से प्राचीनतम एव नवीन से नवीनतम गीतों मे नूतनता का रस और सौन्दर्य है क्योकि मानवीय सुख-दु.ख की भावनाए चिरन्तनता मे प्रतिफलित होकर मानव मन को मोहती है। मनुष्य अपने समीप की सभी वस्तुओ से आकर्षित होता है और प्रत्येक वस्तु उसे प्रिय होती है। कलरव करते हुए पशु-पक्षी, आलिङ्गन मे आवद्ध वृक्ष-लता, चौकडी भरते हिरण, चिग्घाडते हुए हाथी और शेर, गरजता हुआ समुद्र, सभी उसे प्रिय होते हैं। प्रियजन का बिछोह, दरिद्रता और अभाव का ताडव नर्तन, यौवन की उद्दाम उमङ्गे, तीज, त्यौहार और पर्व सभी जीवन के अग बन जाते है। परदेशी प्रियतम का आगमन, प्रियतम का प्रवास मे जाना, समाज और धर्म की चोटे, चौपाल की बाते, आम की सुखद सुशीतल छाया मे जीवन की मधु-पूर्ण घटनाएँ एक अलौकिक रस का सचार कर मानव-मन की अन्तरङ्ग बन जाती है। भावुक सहृदय मानव इन्ही साधारण एव असाधारण विषयो से आकर्षित हो जो गा उठता है, उसी से गीत के स्वरूप निखर उठते है और उसमें समाज के जीवन की झाकी अंकित हो जाती है। भाव मे विभोर हो जाने पर गीतो को सजाने का ख्याल नही रहता। उस समय न अलकार की शोभा की ओर ध्यान रहता है न छन्द विकास की ओर। उस समय अनुभूति के वेग मे सभी बाह्य बन्धन टूट जाते है और मानव अपनी भावुकता में भावो के साथ तदाकार हो जाता है। ऐसे गीतो की शक्ति अपरिमेय होती है और रसोपलब्धि व्यापक।

सामान्य रूप से गीतो के दो स्वरूप हो सकते है, एक लोक-गीत दूसरा साहित्यिक-गीत। लोक-गीत का स्वरूप निर्बन्ध होता है, उसकी स्वाभाविकता, सरसता और स्वच्छन्दता हृदय को आनन्दित कर प्रभाव उत्पन्न करती है। जिस तरह लहराता हुआ सागर गम्भीर एव गहन है, जिस तरह गगा की धारा पवित्र एव स्वच्छन्द है, जिस तरह नीलाकाश मे उडने वाले पक्षी स्वतन्त्र एव सरल है, उसी प्रकार हमारे लोक-गीत स्वच्छन्दता, सरलता एव सरसता की पीयूष-धारा हैं।

किसी राष्ट्र अथवा जाति के इतिहास मे लोक-गीतो का एक सास्कृतिक महत्व है जिसमे मानवता के पक्ष विकसित होते है। इन गीतो के तार मे साधारण जन की चेतना की झकार की झाँकी मिलती है। लोक-गीत जन-पदीय होते है जन-जीवन के आधार और जब कभी हमारी कविताए जड, पकिल और बोझिल हो जाती है, उस समय युग-स्रष्टा साहित्यकार जनपदीय लोक-गीतो की स्फूर्तिदायक औषधि देकर कविता मे नव-चेतनता का सचार कर सजीवन देता है। अतः लोक-गीत जन-जीवन के प्राण है और साहित्यिक-गीतो की शक्ति है। ये लोक-गीत हमारे सामाजिक-जीवन के प्रतिबिम्ब है और राष्ट्र के वास्तविक इतिहास और सस्कृति, समाज के सस्कार, प्रतिमा एव आदर्श आदि के निरूपक है। वास्तव मे लोक-गीत "मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते है। वे कण्ठ से गाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए है।"

जनता के अन्तस्थ भावो का, आवेगो का, आशा और निराशा का, घृणा और प्रेम का, दुख और सुख का एव आकाक्षा और उनके घात-प्रतिघातो का सुन्दर स्वरूप लोक-गीतो की मधुरिमा है। इन गीतो मे प्रेम का आन्तरिक स्वरूप, पीडा और उद्वेग के इतने सुन्दर उदाहरण मिलते है जो अन्यत्र सभव नही। अगाध अन्तर्वेदना के साथ मदमाता उल्लास ग्रामीण जीवन का आन्तरिक चित्रण है। लोक-गीतो के सम्बन्ध मे डॉ० अमरनाथ झा जी का कथन सर्वत्र स्तुत्य है। "इन सरल पदो मे देश की यथार्थ दशा वर्णित है, यहा की सस्कृति इनमे सुरक्षित है। सभ्यता तो बाह्य आडम्बर है, कल तुर्कों की थी आज अग्रेजो की है। भारतीयता हमारे गॉव के रहनेवालो मे है, जो शहरो के क्षणभङ्गुर आभूषणो से अपने स्वाभाविक रूप को छिपा नही चुके है, जिनमे युगो से वेदना को सहन करने की शक्ति है, जो सुख दुःख मे, हर्ष-विषाद मे, जगत-स्रष्टा को भूलते नही है, जो वर्षा के आगमन से प्रसन्न होते है, जो खेतो मे, जाडे-गर्मी मे, प्रकृति देवी के निकट अपना समय बिताते है। इन गानो मे हम मनुष्य जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते है, कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते है, पुत्र के जन्म पर माता-पिता के आनन्द की ध्वनि पाते है, खेतो के बह जाने पर हताश किसान के क्रन्दन, ब्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूक वेदना—अर्थात् मानविक जीवन की नैसर्गिक कविता का रसास्वादन करते है।"

भारतवर्ष भिन्न भिन्न भाषाओ और बोलियो का अजायबघर है किन्तु सभी भाषाओ और बोलियो में भारत की सस्कृति लोक-गीतो के रूप में सुरक्षित है। गुजराती, मराठी, काश्मीरी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, तामिल, तेलगु, कन्नड,

आसामी आदि भाषाओं के लोक-गीतो मे वेदना का एक तान स्वर और उल्लास की मधुर झकार है। गीतो की अनुभूति प्राय सभी भाषाओ मे एक-सी है। बेटी को विदा करते समय जो भावना एक भाषा-प्रदेश मे काम करती है वही उद्वेग दूसरे भाषा-प्रान्त मे दिखाई देती है। विवाहोपरान्त जब बेटी मायका छोड ससुराल जाने लगती है तो पुर-परिजन के मोह के कारण बरबस उसकी आखो से गगा-यमुना प्रवाहित होने लगती है। एक चित्र देखिए —

'सोवत रहाउ मैय। के कोरवा निदिया उचटि गई मोरि।
केकरा दुआरे मैया बाजन बाजै केकर रचा है बियाह॥
तुही बेटी आउरी तुही बेटी बाउरी तुही बेटी चतुर सयानि।
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै तुमरई रचा है बियाह॥
नाही सिखेन मैया गुन अवगुनवा नाही सिखेन राम रसोई।
सासु ननद मोरी मैया गरियावै मोरे बूते सहि नहि जाई॥
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवा सिखि लेउ राम रसोई।
सासु ननद तोरी मैया गरियावै लै लिहौ अचरा पसारि॥"

इस गीत की मर्मस्पर्शिता अनुपमेय है। भोली बालिका को दी गई शिक्षा मे बडो के प्रति सम्मान, सास ननद के प्रति आदर एव उत्तरदायित्व के निर्वाह का आग्रह है। इस गीत द्वारा हमारी सामाजिक स्थिति बाल-विवाह, सास ननद का सम्बन्ध आदि अभिव्यक्त है। क्षमा भारतीय नारी का आभूषण और सम्मिलित परिवार की रीढ है। बालिका के सरल प्रश्न और माता के गठित उत्तर में कुतूहलता के निवारणार्थं सुखसौजन्य का सौरभ है। गीत की ध्वनि सफल गार्हस्थ्य जीवन की ओर इगित करती है। हमारे सास्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति गार्हस्थ्य जीवन मे सफलता के साथ हुई है। अत इस गीत में हमारी सास्कृतिक सुरक्षा के लिए सफल पारिवारिक जीवन गृह-चर्य्या की ओर सकेत है। वाल्मीकि और व्यास जैसे महर्षियो ने कदाचित् इसी कारण अपने काव्य मे भारत की समस्त साधना, आराधना और कल्पना का इतिहास गार्हस्थ्य जीवन मे गुफित किया है। बेटी की विदागी पर कौन ऐसा पत्थर दिल मानव होगा जो न पसीजा होगा, जिसके नयनकोर न भीगे होगे ? तप पूत तपस्वी कण्व भी जब शकुन्तला के विदाजन्य दु.ख से कातर हो उठे तो साधारण जन दु.ख से क्षुब्ध हो उठे तो आश्चर्य ही क्या है ? इस भाव के गीत तो प्राय सभी बोलियो मे मिलेगे।

बेटी ससुराल पहुँच कर प्रियतम की जीवन-सगिनी बन जाती है और अपने प्यार भरे गीतो से जीवन के नवीन पृष्ठ का निर्माण करती है किन्तु पति की मधुर मुस्कान में क्या वह अपने मायके को भूल पाती है ? ससुराल में ऐसा कौन है जो

उसके सुख-दुःख की बात सुन सके, जिससे बिना सकोच के वह अपने जी की हर बात कह सुन सके ? कोई नही। फिर उसका मन मायके के लिये तडप उठता है, भाई से मिलने के लिये वह छटपटाने लगती हे, पिता की याद मे आँसू की माला पिरोती है और माता की ममता तो उसके हृदय को मथ ही डालती है। प्रत्येक प्रात मे इस भाव के गीत मिलेगे। भाई-बहन के स्निग्ध स्नेह की सरिता गाँव-गाँव मे बहती रही है। न जाने कब से बहन भाई के लिए व्याकुल बैठी है—अनन्त प्रतीक्षा मे भाई के आगमन की। एक पजाबी गीत देखिये जिसमे बहन भाई को काग द्वारा सदेश भेजती है –

उड्डदा ते जाई कावो बैहँदा जाई
बैहँदा जाई मेरे पियाकडे
इक्कनाँ दस्सी मेरी माँ रानी नू
रोऊगी अडिया मेरियाँ गुड्डिया फोलके, मै बारी
इक्क ना दस्सी मेरी भैणा प्यारी नू
रोऊगी अडिया भरिया त्रिजन वेखके, मै वारी
इक्क नाँ दस्सी मेरी भावी नू
खिड खिड हस्सूगी अडिया या पकडे जाके, मै बारी
इक्क नाँ दस्सी मेरे धम्मी बावल नू
रोउगा अडिया भरीयो कचहरी छोड कै, मै बारी
दस्सी, वे कावा, मेरे वीर प्यारे नू
आऊ गा अडिया नीला घोडा पीड के, मै बारी ॥"

इस गीत की कातर ध्वनि और स्मरण-जन्य दुःख से कौन द्रवित न होगा ? इस भाव के गीत किस बोली मे नही ? अनुवाद देखिए —

'काग' उडते बैठते जाना,
मेरे नैहर मे पहुँच जाना।
एक तो मेरी बात मा से न कहना,
मै तुम पर कुरबान जाऊं, वह मेरी गुडिया उठा उठाकर आँसू गिरायेगी।
मेरी प्यारी बहन से भी न कहना,
मै तुम पर कुरबान जाऊं, वह सखियो सहित चरखा कातती होगी।
बीच मे मुझे न पाकर रो देगी।
मेरी भावज से भी न कहना,
अपने नैहर जाकर वह व्यङ्गय पूर्ण हंसी उडायेगी।
धर्मी पिता से भी न कहना,
मै तुम पर कुरबान जाऊ, वह भरी कचहरी से बाहर आकर रो देगा।

काग, मेरे भाई से—'वीर' से कहना,
मैं तुम पर कुरबान जाऊ , वह नीले घोडे पर सवार होकर आयेगा ।

बहन का यह गान कितना मर्मस्पर्शी है । कागा सन्देश ले जाय अथवा नही परन्तु बहन अपने अन्तर की बाते कह कर उससे चिरौरी करेगी ही । कल्पना के पख लोकगीत मे खुल जाते है । इस गीत की सच्चाई और मार्मिकता दर्शनीय है । अनन्त प्रतीक्षा मे खडी बहन मायके का स्नेह-जाल बुनते थकती नही । लोचन भर भर आते है, जीवन की डाल २ हिल जाती है फिर भी वह मायके का सपना देखती रहती है । बहन की आत्मा कितनी महान् है । ससुराल के बदी जीवन की शिकायत किससे करे ? अतीत का यह अमर क्रन्दन शाश्वत क्रन्दन है जो प्रत्येक नारी के जीवन मे सार्थकता से परिपूर्ण होता है । बहन का हृदय वृक्ष के झडते पत्ते के सदृश काँप उठता है तब कही भाई का नीला घोडा वह देख पाती है । मायके आती है तो प्रियतम की झाकी के लिये तरसती है । सावन की घनघोर घटाएँ जब आकाश को आच्छादित कर लेती है, दामिनी की दमक और कडक से आँखे चौंधियाने लगती है और दिल धडकने लगता है तो वह पति के सयोग की कामना करती है ।
देखिए —

घिरि आइलिरे बादरिया सावन की ।
सावन की मनभावन की, घिरि आइलि बादरिया सावन की ॥
रिमझिम रिमझिम बुनवा बरसे, आजु अवधि पिया आवन की ॥
घिरि आइलिरे बादरिया सावन की ॥
बादर बरसे बिजुली तडपे ।
आवत मोहि डरावन की ॥
घिरि आइलि रे बादरिया सावन की ।
कड कड गरजे, पडपड बरसे ।
धीरज मोर नसावन की ।
घिरि आइलि रे बादरिया सावन की ।
बन मे आज पपीहा बोले ।
पी, पी, नाहि सुहावन की ।
घिरि आइलि रे बादरिया सावन की ।

इन पक्तियो मे विरहिणी की करुण अधीरता के साथ वर्षा का सुन्दर दृश्य-चित्रण है । ग्राम कवि की भाषा-वक्रता द्वारा वर्षा की टपकती बूदे तथा बादलो की गरज की आवाज साफ सुनाई पडती है । इन बूदो के साथ तरुणी के कपोलो पर क्या मोती की लडिया नही है ?

ग्राम-गीतो की धारा अजस्र धारा के रूप मे प्रवाहित दीखती है। जिस तरह महाकवि सूरदास ने गोपियो के हृदय मे वास करनेवाले देवता के अभाव से सारा ब्रजमण्डल जलता हुआ दिखलाया है, उसी तरह वेदनापूर्ण गीतो में, ग्राम-वधू की सारी मोहकता भरी हुई है। विरह का दुखान्त सगीत जीवन के निविड अन्धकार में धनीभूत होकर हृदय के तार को जब झकृत कर देता है, तो ग्रामवासी नारी गा उठती है —

आयल काटी-काटी रे धन गरिजय बादल
थर थर काँपय काँपय रे सखि उर अब हारी।
. .. .
लहरल लहरल मोहि अब रे विरहा अगियारी।

विरहिणी वसुन्धरा मेधो के आलिङ्गन से शीतल हो रही हे किन्तु विरहिणी बादल की गरज से आग की लहर का बोध करती है। कितना मर्मबेधक सगीत है, किन्तु इस दर्द के भीतर सच्चाई का सार भी है। इस प्रकार के गीतो की कमी नही। राजस्थान के गीतो मे जो भाव निहित है वही मिथिला प्रदेश की अन्तर्वेदना है। प्रिय-प्रवास-जन्य दु ख का एक चित्र देखिए :—

"पिया गये परदेस नैना टपके नीर।
ओलू आवै पीव की जिवडो धरे न धीर॥
चदा थार चानणे सूती पिलग बिछाय।
जद जागू जद एकली मरू कटारी खाय॥
ओ उमराव म्हारो जीवन अलो जावे मेरी जान ओ।
उमराव जी वो रसिया॥
पिव पिव करती मै फिरू पिव न मेरे पास।
सूनी सेजा मे पडी रात्यू मारू सास।
ओ उमराव थे धाटी की प्रीत पिछाणो मेरी जान
उमराव जी वो रसिया॥

इन पक्तियो की वेदना और मीरा की वेदना में साम्य है। यहाँ भी प्रेमिका मे वही तडप है जो गिरिधर-नागर के अभाव मे मीरा की तडप है। प्रवासी परदेसी प्रीतम की याद आते ही मन का धैर्य छूट जाता है और लोचन मोती की लडिया पिरोने लगते है। चन्द्र की किरणें उद्दीपन का कार्य करती है और अत्यधिक चिन्ता के कारण उच्छ्वास निकलते है। शब्द और भाव का सुन्दर सामजस्य सगीत के मधु मे लिपट कर और भी मधुर हो गया है। विरहिणी नारी का रूप-चित्र ग्राम-गीतो में साकार हो सका है। ऐसे ही गीत जीवन के मेरुदण्ड है जो अपनी मार्मिकता

से हृदय को खीचते है और उल्लास से मन को मदपूर्ण करते है ऐसे ही गीतो में अनश्वरता की गति है, चिरन्तनता का अभार है । 'राकेश' जी ने ठीक ही लिखा है— "विरह की सरिता युग-युगान्तर से अनुप्राणित होकर हृदय से हृदय मे ओर• प्राण से प्राण में अपनी विकलता बाटती हुई चली आ रही है । ग्रामीण स्त्रियो के सरल कठ से निकलने वाली अमर पक्तियो मे जाने कितनी ही वियोगिनियो के कोमल हृदय तडप रहे है ।" एक विरह-विदग्ध नारी के हृदय में झाक कर देखिए क्या हो रहा है ? —

' फोर बई मे शखा चुरी फोर बई मे चोलिया ।
से घरबई जोगिनिया के वेष ।।"

प्रिय के पावन स्पर्श से पवित्र नारी शख की बनी चूडियो को तोड कर एव कचुकी फाड प्रेमयोगिनी का रूप धर प्रियतम से एकाकार हो जाना चाहती है । प्रेम की यह दुर्वारता ओर विह्वलता करुणाजनक है । प्रियतम के प्रवास-काल मे एक स्त्री कहती है ·—

'अचरा के फारि फारि कगदा बनइतो
लिखितो मे पिया के सन्देश ।'

आचल को फाड फाड कर कागज बनाना और प्रियतम को सन्देश लिख भेजना कितना कारुणिक, मार्मिक एव सहज स्वाभाविक है ।

"कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खाइयो मास ।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस ।।"

ऐसे ही भाव-चित्रो को देख कर किसी आलोचक ने कितना ठीक कहा है— "इन शब्दो में गम की तस्वीर खीची गई है । इतिहासो पर स्याहिया पुत जायगी, युग-युग के सस्कार धुल जायेगे और तकदीर की लिपि भी मिट जायगी, लेकिन लोक-हृदय की यह सवेदनशील वाणी युग युग तक अमर रहेगी ।" वास्तव में ऐसी मार्मिक उक्तियाँ प्रभाव उत्पन्न करने मे, संस्कार बनाने में एव वियोगिनी की आन्तरिक व्यथा का आलेखन करने मे पूर्ण समर्थ है ।

प्रेम और विरह के जोडे मे ही हमारे लोक गीतो की मधुरिमा सीमित नही बल्कि सम्पूर्ण जीवन के व्यापक क्षेत्र मे इन गीतो का प्रसार है । विवाह-प्रेम, हास-परिहास, व्यङ्गय, लगन, जनेऊ, प्रेमोत्सव आदि अनेक अवसरो पर गाये जाने वाले गीत उपलब्ध है जिन मे भारत के सर्वा ·ीण सामाजिक कृत्यो एव पर्वो के सुन्दर

सरस और मार्मिक गीत है। यदि मानव-जीवन बहुधधी है तो उसके गीत बहुरङ्गी होने ही चाहिए। स्वाधीनता सग्राम मे हसते २ मा की जजीर काटने के लिए फाँसी के तख्ते पर झूल जाना दाने-दाने के लिए कलपते हुए शिशुओ का चीत्कार और क्रन्दन, भूख, गरीबी, दुर्भिक्ष और अत्याचार, व्यभिचार और अनाचार आदि के सहस्रो गीत जनपदीय भाषा मे मिलेगे। अत इन लोक गीतो की मार्मिकता और शक्ति अपरिसीम है। लोकगीत मे अमर शहीद क्रान्तिकारी भगतसिह की अतिम भावनाओ का चित्र देखिए —

दुष्ट मुए मोरे पल पल होत अवार,
क्यो डरो डाल गले फासी।

सूधा सूरा स्वर्ग को जाऊ,
धरम राय को बिथा सुनाऊ

और हर से माग भगत सिह को लाऊ।
भारत को हजार

क्यो डरो डाल गले फासी
. . . .

जलेगी लास हम यही भसमेगे,
....

हाड रक्त सब ही फल देगे।
बैरी, भारत देश हमार
क्यो डरो डाल गले फासी।'

इन पक्तियो मे भगतसिह की निर्भयता, स्वदेश प्रेम और शत्रुओ के चगुल से भारत को मुक्त कराने की प्रबल चाह दिखलाई पडती है। वह भारत की करुण शोकमय दशा का हाल फौरन देवराज को सुनाना चाहता है और यदि वे उसका क्रन्दन न सुनेगे तो भी कदाचित् उसकी जलती लाश के भस्म से धरती पर हाड-मास के फल निकलेगे जो सदा चिल्लायेगे—भारत देश हमारा है।

भारत की सस्कृति और सामाजिक जीवन की झाकी लोकगीतो की मर्यादा है। किसान और मजदूर के गीतो से लेकर प्रेम तथा प्रकृति के मधुर गीत लोक-गीतो के प्राण है। वास्तव मे सत्यार्थी जी ने ठीक ही लिखा है—'भारतीय लोकगीत के सुविस्तृत कुटुम्ब कबीले की एकस्वरता, भारतीयता और राष्ट्रीय एकता की अमर विभूति है।

राणा प्रताप सिह पर एक राजस्थानी गीत देखिए —

'अस लेगो अणदात्र, पाध लेगो अणनामी।
गो आडा गबडाय, जिको बहतो धुर बामी॥
नवरोजे नहँ गयो न गो आतसाँ नवल्ली।
न गो भरोखाँ हेठ, जेठ दुनिया न दहल्ली॥
गहलोत राणा जीती गयो, दसण मूद रसना डसी।
नीसास मूक मरिया नयण, तो मृत साह प्रताप सी॥

इस छप्पय मे राणा के निष्कलक चरित्र की सुन्दर व्याख्या है। उसने अपने घोडे को दाग नही लगने दिया और अपनी पगडी किसी के सामने नही भुकाई। जो आडा गवाता चला गया, जो भारत के भार की गाडी का वाहक था। जो नव-रोजे के जलसे मे कभी नही गया, जिसका रोब ससार पर था। इस तरह गहलोत वश का राणा प्रताप ससार से जीत कर चला गया, जिस कारण बादशाह ने दाँतो तले जीभ दबाई, और निश्वास लेकर आखो से आसू गिराये। प्रतापसिह ! तेरे मरने पर ऐसा हुआ।

विविध प्रकार के भाव पूर्ण गीत लोक-गीतो की महत्ता को बढा रहे है। भारत की प्रत्येक जनपदीय भाषा मे हृदय की सूक्ष्म, पर सार्थक अभिव्यक्ति को देख कर दग रह जाना पडता है। ये गीन स्वत. कठ से फूट पडे है, इस कारण इन गीतो में सरलता और सरसता दोनो है। ऐसे ही सुन्दर और सर्वश्रेष्ठ गीतो को देख प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा—ग्राम-गीत हृदय का धन है। ग्राम गीतो में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिम्ब है। गीतो मे रस की मात्रा सस्कृत और हिन्दी के रस-सिद्ध कवियो की कविता से कही अधिक है। गीत कविता के वास्तविक स्रोत है। लोक-गीतो की यह परम्परा केवल आनन्द का हेतु नही, अपितु जन-समाज की हृदय तत्री की धडकन और भकार से आबद्ध है। इन गीतो के स्वर मे हमारी शाश्वत अनुभूतिया सप्राण हुई है।

साहित्यिक गीतो की परम्परा का अनुसन्धान और मनन साहित्य का एक प्रमुख विषय है। गीत-काव्य के इस इतिहास का मनन श्रम-साध्य होते हुएँ भी रोचक है। हमारे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य मे गीत भरे पडे है। तत्त्व और दर्शन-संबधी गूढ विचारो से लेकर साधारण और हल्के फुलके विचार गीतो के ताने-बाने मे बुने गये है। वैदिक ग्रन्थो के आदि गीत ब्रह्म जिज्ञासा से पूरित एव देवताओ की स्तुति से ओत-प्रोत है। 'मैत्रायणी सहिता' मे जो गीत है वे विवाह के अवसर पर गाये जानेवाले सरस, रसोपम गीत है। प्राचीन काल मे वाद्य यत्रो पर भी, विशेष रूप से वीणा पर गीत गाये जाते थे उसका उल्लेख 'परास्सर गृह्यसूत्र' और 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' मे हुआ है। प्रथम मे विवाह के गीत है दूसरे मे उपनयन सस्कार के।

वैदिक ग्रन्थो मे गीतो का होना यह सिद्ध कर रहा है कि समाज मे गीत का स्थान सर्वोपरि है। देव-स्तुति से लेकर विरह-व्यथा निवेदन आदि तक गीतो मे प्रभावशाली रूप से सभव है।

गीत के मुख्यत· दो रूप हो सकते है एक लौकिक जिसमे हमारे जीवन की समस्याएँ, इतिहास, सभ्यता आदि की झलक हो, दूसरे पारलौकिक जिसमे जीवन की गहनतम अनुभूतियो पर विचार हो। इसी कारण हमारे महर्षियो ने गीत के लिये दो शब्दो का विशेष रूप से प्रयोग किया है । वह है 'ऋक्' और 'गीत'। 'ऋक्' मे ईश्वर-सबधी तत्व-ज्ञान के गीत होते हैं और गीत मे मानवीय भावो और व्यापारो के गीत। प्राचीन साहित्य गेय गीतो मे ही है। ऋग्वेद का मनीषी गाता है— 'गीर्भी वरुण सीमाई ·· ·· हे मेरे वरणीय ! मै तुम्हे अपने गीतो से बाधता हूँ।" वाल्मीकि रामायण का निर्माण भी तो राम के समक्ष गाने के उद्देश्य से हुआ था और गीता तो कृष्ण के गीत ही है जो उन्होने गाये थे। अत गीतो की यह परम्परा स्पष्ट बतला रही है कि उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य का पूर्ववर्त्ती साहित्य भी गेय पदो या गीतो से पूर्ण होगा।

पूर्वोत्तर वैदिक काल और वैदिककाल के गीतो के पश्चात् ब्राह्मण-काल एव बौद्धकाल आता है। उपनिषद की गाथाएँ, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, जातक, गाथा-सप्तशती आदि मे गीत के स्वर ही गूजते दिखाई पडते है। ब्राह्मण काल के ग्रन्थो में ब्रह्म की खोज के गीत है और बौद्ध काल के ग्रथो मे सन्यास और वैराग्य के। अतएव इन दो युगो के ग्रन्थो मे ससार की क्षणभगुरता एव लघुता तथा ब्रह्म की विराट भावना और अलौकिकता के गीत है।

सस्कृत के गीति काव्यो मे विशेषत शृगार, नीति, वैराग्य तथा प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन सगीतमय छन्दो में उपलब्ध है । सस्कृत गीति-काव्य, मुक्तक तथा प्रबन्धक दोनो प्रकारो से उपलब्ध होता है। नारी हृदय का सुन्दर वर्णन, शृगार की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ का मार्मिक चित्रण एव वाह्य एवं अन्त प्रकृति का परस्पर प्रभाव पूर्ण वर्णन मधुर पदो में व्यजित हुआ है। पशु-जगत तथा पादप-जगत मानव-जगत से बहुत कुछ साम्य रखता हुआ प्रदर्शित किया गया है । चातक स्वाभिमान का प्रतीक है तो चकोर का प्रेम दृढ अनुराग का द्योतक है। चक्रवाक विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम की मूर्ति के रूप मे उपस्थित किया गया है।

सस्कृत में लौकिक तथा धार्मिक दो प्रकार के मुक्तक है। इन गीतो मे सबसे पहले हमे सातवाहन हाल की गाथा सप्तशती महाराष्ट्री प्राकृत मे मिलती है जिसमे सात सौ गाथाएँ सग्रहीत है। ग्राम जीवन का एक सरल तथा स्वाभाविक चित्र देखिए :—

"रन्धनकर्म निपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपारामसुगन्धम्
मुखमासत पिबन् धूमायते शिखीन प्रज्वलति ।"

संस्कृत के गीति-काव्यो का महत्वपूर्ण ग्रन्थ मेघदूत है । यह मानव तथा मानवेतर प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर उदाहरण है । ग्रीष्म-कालीन मन्द-प्रवाहिनी नदी पति-वियोग-मलिन-वसना प्रोषितपतिका के समान प्रतीत होती है । यत्र-तत्र प्रेयसी की विरहावस्था मे मानव-हृदय का मनोहर मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है । मेघदूत की गीति-पद्धति पर अनेको सन्देश काव्य लिखे गये । कतिपय कवियो ने हस-दूत, पवन-दूत भेजे । यह गीति के प्रभाव की विशेषता थी कि उसके अनुकरण/पर अनेक कवियो ने रचना की । रूप गोस्वामी ने राधा की ओर से कृष्ण को प्रेम का सन्देश भेजवाया था ।

गीति-काव्य के रचयिताओ मे अमरूक का स्थान ऊचा है । बिहारी की तरह उन्होने अपने मुक्तको मे इतने रस और भाव भरे है कि वे प्रबन्ध से समता रखते है । प्रेम का जीता जागता चित्र तथा कामिनी का विह्वल भाव देखिए —

"प्रस्थान वल्लयै कृत प्रियसखैक सुरैजसंगत
धृत्या न क्षणमासित व्यवसित चित्तेन गन्तु पुर ।
दातु निश्चित चेतसि प्रियतमे सर्वे सम प्रस्थिता
गंतव्ये सति भीवित ! प्रिय सुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते ॥"

भर्तृहरि ने श्रृङ्गारशतक में परकीया श्रृङ्गार का चित्रण किया है । वैराग्य शतक मे आसक्तों का सजीव वर्णन गीत में है —

"धन्याना गिरि कन्दरेषुवस्ता ज्योति पर ध्यायत ।
मानन्दा श्रुकणाम् पिवन्ति शकुना नि शक मक्रेशयाः ।
अस्माक तु मनोरथोपरचित प्रासाद वापी तर
क्रीडा कानन केलि कौतुकजुषामायु पर क्षीयते ॥"

गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती हाल की सप्तशती के आदर्श पर है । आर्या की रचना मे गोवर्धनाचार्य ने चारुता और सुन्दरता ला दी है । नागरिक स्त्रियो की श्रृंगारिक चेष्टाओ का चटकदार चित्रण तथा ग्रामीण महिलाओं की स्वाभाविक उक्तियां बडी सुन्दर है । जयदेव के 'गीत गोविन्द' में माधुर्य की पराकाष्ठा है, प्रेम की उदात्त भावना है, राधा-कृष्ण के निर्मल आध्यात्मिक प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है ।

अत. संस्कृत के गीति काव्यो में मधुर पदावली के साथ संगीतमय छन्दो का कोमलता के साथ प्रयोग किया गया है ।

हिन्दी कविता धारा मे गीतो की रचना कई रूपो मे हुई है। समस्त साहित्यिक गीतो की गति-विधि को ध्यान मे रख कर यह कहा जा सकता है कि मुर्ध्यते गीतो के तीन रूप है। एक श्रृङ्गार-प्रधान, दूसरा विचार-प्रधान और तीसरा उपदेश-प्रधान। प्रथम मे विद्यापति कवि के सुन्दर श्रृंगारिक पद हैं, दूसरे मे मीरा, महादेवी, निराला, प्रसाद और पत के गीत है और तीसरे मे कबीर, सूर, तुलसी के गीतो की गणना की जा सकती है। यद्यपि इस प्रकार का विभाजन वैज्ञानिक नही किन्तु सरलता की दृष्टि से ऐसा विभाजन गीति-काव्य को समझने मे सहायता प्रदान करेगा।

महाकवि विद्यापति के गीतो की श्रृगारिक आध्यात्मिकता भावमयी नारी मूर्ति के हृदय से निकल कर दर्शनीय हो गई है, देखिए —

"सुतल छयहू हम धरवा रे गरवा मोति हार।
राति जखन भिनु सरवा रे पिया आयल हमार॥
कर कौशल कर कपइत रे हरवा उर हार।
कर पकज उर थपइत रे मुख चन्द निहार॥"

प्रियतम के सयोग-गीत जितने मधुर है वियोग-गीत उतने ही करुण। मार्मिकता तो उनकी अपूर्व है, देखिए .—

"लोचन धाए फेधायल हरि नहि आयल रे।
सिव सिव जिवओ न जाए, आसे अरुझायल रे॥'

आशा मे प्राणो का उलझना प्रियतम मे आन्तरिक रति का सूचक है किन्तु निराशा के कारण 'दौड मे फेन आना' प्राणो के टूटकर गिरने का कदाचित् द्योतक है।

सूरदास जी के गीत तो सुन कर 'रह रह धुनत शरीर' की उक्ति की सार्थकता मालूम पडती है। देखिए —

निशि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे।
गोपियो की विरह-जन्य मार्मिकता किस पाषाण को स्पर्श नही करेगी।

मध्य कालीन सत कवियो के गीतो मे श्रृगार और अध्यात्म का अपूर्व मेल है। इस मेल के कारण गीत रहस्यमय माधुर्य से आप्लावित दिखाई पडते है। वर्तमान काल मे गीतो की रचना विशेष रूप से हो रही है। इन गीतो के तार श्रृगार, राष्ट्र-प्रेम, दर्शन आदि से बने है जिनकी झकार में कोमलता के साथ कमी

रहस्यमय कुतूहलता भी मिलती है। एक तरफ बच्चन के गीतो मे शृगार की छाया है तो दूसरी तरफ 'नवीन' के गीतो मे क्रान्ति की पुकार। दिनकर के गीतो में अभाव के प्रति विद्रोह की भावना है तो महादेवी के गीतो मे अभाव के प्रति ममत्व। तात्पर्य कि वर्तमान युग के गीतो मे दार्शनिकता के साथ जीवन के सरस पहलुओं के गीत भी है। देखिए 'बच्चन' कहते है —

हो शात जगत के कोलाहल ! रुक जा रे जीवन की हलचल !
मै दूर पडा सुन लू दो पल, सदेश नया जो लाई है
यह चाल किसी की मस्तानी।
वह पग ध्वनि मेरी पहचानी !
ध्वनि पास चली मेरे आती ! सब अग शिथिल पुलकित छाती !
लो, गिरती पलकें मदमाती ! पग को परिरभण करने की
पर इन भुजपाशो ने ठानी।
वह पग ध्वनि मेरी पहचानी !
रव गूँजा भू पर, अम्बर मे, सर मे, सरिता मे, सागर में,
प्रत्येक श्वास मे, प्रति स्वर में, किस किस का आश्रय ले फैले
मेरे हाथो की हैरानी।
वह पग ध्वनि मेरी पहचानी !

तो 'महादेवी' की जिज्ञासा है :—

कौन तुम मेरे हृदय मे ?
एक करुण अभाव मे चिर तृप्ति का ससार सचित;
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में।

कौन तुम मेरे हृदय मे ? यह कुतूहलता बढती जाती है और कवयित्री एक अज्ञात पीडा से छटपटाने लगती है। देखिए—'स्मृति' मे कितनी अधीरता है, और है पीडा का कितना व्यापक स्वरूप :—

कसक कसक उठती सुधि किसकी,
रुकती-सी गति क्यो जीवन की,
क्यो अभाव छाये लेता विस्मृति सरिता के कूल।

अग्रेजी काव्य-साहित्य से प्रभावित पर हिन्दी कविता मे भी गीतो की कई शैलियो का प्रचलन है। गीति-काव्य की मुख्यत: पाँच शैलियो का विधान

इतिहासकारो ने किया है। ये पाच शैलिया है चतुर्दशपदी (Sonnet), सम्बोधि-गीति (Ode), शोक-गीति (Elegy), व्यग-गीति (Satire) तथा पत्र-गीति (Epistle)।

चतुर्दशपदी पद्धति के जन्मदाता इटली के निवासी कवि पेट्रार्क है। अंग्रेजी साहित्य में सॉनेट पद्धति पर गीत लिखने वाले अनेक कवि हुए है। जिनमें स्पेसर (Spensor), शेक्सपियर (Shakespeare), वर्डस्वर्थ तथा कीट्स (Wordsworth and Keats) के नाम प्रमुख है किन्तु हिन्दी में चतुर्दशपदी शैली के गीत लिखने वाले कवि बहुत कम है और प्रसिद्धि तो कदाचित् ही किसी को मिली हो। बगला साहित्य मे अनेक कवि हुए है जिन्होने चतुर्दशपदी गीति-शैली पर पुस्तक रचना कर प्रसिद्धि पाई है किन्तु हिन्दी मे कोई प्रख्यात नही हो सका। इसका मुख्य कारण सभवत यह है कि चतुर्दशपदी के रचना विधान में स्वच्छन्दता नही है। शायद इसी कारण छायावाद के स्वतन्त्र छन्द विधान के विपरीत सॉनेट पद्धति पर किसी कवि ने नही लिखा परन्तु बगला मे वैसी परिस्थिति नही थी। इस कारण बगला मे मधुसूदन दत्त की चतुर्दशपदी 'कवितावली', देवेन्द्रनाथ सेन की 'अशोक गुच्छ', रवीन्द्रनाथ की 'नैवेद्य', मोहित लाल मजूमदार और चौधरी साने आदि के अनेक सग्रह प्रकाशित हुए। हिन्दी में यद्यपि इस ढग की अलग कोई पुस्तक नही किन्तु पत्र, पत्रिकाओ मे कभी कभी सुन्दर चतुर्दशपदी देखने को मिल जाती है। इस शैली के लेखक हिन्दी मे प्रभाकर माचवे जी है और उनकी इस पद्धति का एक उदाहरण देखिए —

"मैंने जितना नारी, तुमको याद किया है, प्यार किया है,
तुमने भी क्या कभी भूल से सोचा था कैसा है यह मनु?
मैंने क्या अपराध किया जो तुमने यो इसरार किया है
जाने कैसे विद्युत्कर्षण से परसित है तन-मन-अणु-अणु।
तुम मेरे मानस की सगिनि, चपल विहगिनि, नीड कि शाखा ?
तुम मेरे मन की राका की एकमात्र नक्षत्र-विशाखा;
तुम हो मृगा या कि आर्द्रा हो ? नही, रोहिणी, तुम अनुराधा
तुम छाया पथ ज्योति-शिखा तुम, तुम उल्का, आलोक शलाका,
सशय के सघनान्धकार मे विद्युत्माला अयि अचुम्बिते
तुम हरिणी, मालिनी, शिखारिणी, बसन्ततिलका द्रुत बिलम्बिते!
तुम छन्दो की आदि प्रेरणा, तुम श्लोक की पृथुल वेदना,
तुम स्रग्धरा या कि मन्दाक्राता, ओ आर्या गीति स्तम्भिते!
मै गतिहारा यति साग्रह से, शून्य प्रभाकर, मै बै नायक
तुम रागिनी और मै गायक तुम हो प्रत्यचा मै सायक!"

सम्बोधि शैली के गीत हिन्दी में सर्वत्र दिखाई पड़ेंगे। 'प्रसाद" जी की 'किरण' 'दीप', 'निराला' के 'खण्डहर के प्रति' 'यमुना के प्रति', 'सन्ध्या सुन्दरी', 'पंत' के 'आसू', 'छाया', 'बापू के प्रति' तथा सोहनलाल द्विवेदी का 'बापू के प्रति' सम्बोधि-गीति के सुन्दर उदाहरण है। 'सन्ध्या सुन्दरी' मे इस पद्धति के स्वरूप को देखिए —

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चचलता का कही नही आभास,
मधुर मधुर है दोनो उसके अधर,
किन्तु गम्भीर, नही है उनमें हास-विलास।

'बापू के प्रति मे द्विवेदी जी रचित सम्बोधि-गीति की शैली दिखाई पड़ती है –

तुम नव जीवन के नव विधान!
युग युग बन्धन के मुक्ति गान!
तुम आशा के स्वर्णिम प्रकाश!
मानव-मन के मधुमय विकाश!
तुम हो अतीत के अमर गीत,
भावी की मधुछाया पुनीत,
तुम वर्तमान के कर्म गान!
तुम नव जीवन के नव विधान!
दुर्बल दलितो के क्रान्ति घोष,
तुम पद दलितो के शक्ति कोश।

हिन्दी में शोक-गीत की अत्यन्त कमी है। मेरी दृष्टि में इसका कारण यह है कि मरण पर यहां शोक मनाने का रिवाज नही। प्राचीन जर्जरित वस्त्र को परित्याग कर आत्मा नवीन वस्त्र धारण करती है। पुनर्जन्म के इस विश्वास तथा परम्परा द्वारा पोषित होने के कारण मृत्यु भी आनन्द का कारण माना है। फिर भी हिन्दी साहित्य विशेषत: कविता मे कुछेक शोक-गीत लिखे गये। ये शोक-गीत प्रसिद्ध नही। अंग्रेजी काव्य मे 'ग्रे' 'Grey' की Elegy शोक-गीत की प्रसिद्धि काफी है उसके जैसे विख्यात शोक-गीत हिन्दी में नही। फिर भी दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवियों ने बापू के निधन पर

बापू के प्रति[1] जो कुछ लिखा है वह शोक-गीत मे अवश्य परिगणित होगा। मित्र बन्धुओ ने श्री काशी प्रसाद जायसवाल की मृत्यु पर 'हा! काशी प्रसाद' लिख कर इसी पद्धति की पुष्टि की है। 'बापू की अर्थी' शीर्षक कविता मे दिनकर के शोकोद्‌गार देखिए —

"कैसा अभाग्य! अपने हाथो ही
हाय! स्वय हम छले गये,
यह भी पूछे किस भाति, पिता!
क्यो हमे छोड तुम चले गये?
पापी! तूने क्या किया? हाय!
किसका दारुण सहार किया?
वह देख फटी किसकी छाती?
पहचान कौन बेहोश गिरा?
किसकी किस्मत मे आग लगी?
किसका उगता सौभाग्य फिरा?
यह लाश मनुज की नही,
मनुजता के सौभाग्य विधाता की
बापू की अरथी नही, चली
अरथी यह भारत माता की।

व्यड्ग्य-गीत का हिन्दी कविता मे अभाव है फिर भी इसके उदाहरण अवश्य मिल जायेगे। व्यड्ग्य-गीत शैली के कवियो मे सूर, भारतेन्दु, शकर, 'काक' तथा 'बेढब बनारसी' के नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी का 'चना जोर गरम' व्यड्ग्य-गीति का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'अन्धेर नगरी' मे बाजार मे चूरन वाला गा रहा है। कितना मार्मिक व्यङ्ग है देखिए :—

चूरन अमल वेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी।
चूरन खाते एडीटर जात, जिसके पेट पचे नही बात।
चूरन खाते लोग बगाली, जिनकी धोती ढीली ढाली।
हिन्द चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।

आधुनिक कवियो मे भारत भूषण अग्रवाल का नाम भी व्यड्ग्य-गीति-लेखको में लिया जा सकता है। 'अहिंसा' पर आपका जो व्यड्ग्य है, वह अत्यन्त सुन्दर बन पडा है, देखिए :—

"खाना खाकर कमरे मे विस्तर पर लेटा,
सोच रहा था मै मन ही मन : हिटलर बेटा।
बडा मूर्ख है, जो लडता है तुच्छ-क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षणभङ्गुर होता है रे ! यह सब वैभव धन !
अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला !
लिखू एक खत, हो जा गाधी जी का चेला !
वे तुझको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता !
होगी प्रगट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता !
कुछ भी है तो नही धरा दुनिया के अन्दर।
छत पर से पत्नी चिल्लाई, 'दौडो बन्दर' ॥

पत्र-गीति-शली के उदाहरण तो अत्यन्त अल्प है फिर भी कुछेक उच्च पद्धति के गीत भी मिलते है जिनमे 'गुप्त' जी की पत्रावली और दिनकर के पत्र-गीति दर्शनीय है। 'नई धारा' मासिक पत्रिका मे भी इस पद्धति के गीत प्रकाशित हुए है।

गीतो की पद्धति का यह वर्गीकरण यद्यपि प्राचीन है और मान्यता प्राप्त कर चुका है फिर भी विषय की दृष्टि से भी गीतो का वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रेम-गीत, स्वदेश-गीत, धर्म-गीत, व्यड्ग्य-गीत, स्तवन-गीत, प्रकृति-गीत, शोक-गीत आदि। तात्पर्य कि गीतो का विषय विस्तृत और आत्मा महान् है। गीत गेय होने के कारण सारी सृष्टि के लय मे एक नया स्वर जोड देने मे समर्थ है और कदाचित् इसी कारण सगीत की स्वर-लहरी मे मानव अपने मन के चिर-आनन्द से सन्निध्य प्रा्त कर लेता है। हिन्दी कविता धारा में सभी तरह के गीत उपलब्ध है। ऐसे गीत भी है जिनको पढ कर शराब का उन्मद उन्माद छा जायगा और ऐसे गीत भी है जिन्हे सुनकर आत्मा रस मे निमग्न हो सब कुछ भूल जायगी। 'बच्चन' के मधु गीतो मे जहा उन्माद है, वहा 'दिनकर' और 'नवीन' के गीतो मे स्वतन्त्रता प्राप्ति का उन्मेष। जहा सूर, मीरा, महादेवी के गीतो में सरस मीठे अगूर के गुच्छे है, वहाँ निराला, कबीर के गीतो मे शुष्क दर्शन का सरस राग है। वास्तव मे गीत जीवन की सम्पूर्ण कहानी के जीते जागते स्रोत है।

'बीती विभावरी जाग री' से कवि प्रसाद ने जिसे जगाया, 'जगमग जगमग, हम जग का मग, ज्योतित प्रतिपल करते जगमग' से पत ने जिसे जगमगाया एव 'चन्द्र किरण, वसना, सीखा केवल हसना, केवल हसना, से निराला ने जिसमे जीवन दिया, उस 'गीत-सुन्दरी' को महादेवी ने भी 'किस सुधि-वसन्त का सुमन

तीर, कर गया मुग्ध मानस अधीर' कह कर रिझाया और बाद के कवि बच्चन ने भी अपने 'निशा-निमन्त्रण' तथा 'एकान्त सगीत' के 'दिन जल्दी जल्दी ढलता है'. जैसे पदो की रचना कर, उसी का शृङ्गार किया है। अथच आज तो यह अवस्था है कि दिशा दिशा से एक ही स्वर गुजित हो रहा है। चाहे चल चित्र हो या ग्रामोफोन रेकार्ड, रेडियो हो अथवा मासिक पत्र, कुज कुज से एक ही तान मचलती हुई आ रही है– "मन मधुवन आली, आली !" और उस तान मे करुणा है, लय है, प्रवाह है, माधुर्य है और क्या नही है ?

अध्याय १५

हिन्दी-काव्य का नया स्वर (प्रयोगवाद)

जीवन की जीविन जागृत ज्वाला मे जलता हुआ मानव, हृदय की सौन्दर्य-सुवास-मयी-कलियो को प्रस्फुटित करने के लिये नन्दन-कानन या नीले नभ-विस्तार मे कल्पित उडाने नही भरता, अपितु पेट की पीर को अभिव्यक्त करने के लिये अन्तर्जगत के मानवीय धरातल पर भाव-चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। देखने पर मालूम होता है कि उसके भाव सतह पर ही घूम रहे है किन्तु उसकी तह मे जो जिज्ञासा और नव-निर्माण का स्वप्न है जो निर्वैयक्तिक आदर्श निहित है, जो नया विकास और नवीन जागरण समन्वित है, उसके इतिहास का इस समय मूल्याकन करना आशिक सत्य की पुष्टि ही होगी। किन्तु फिर भी हिन्दी के नवीन काव्य मे इस प्रेरणा के गीत बँध चुके है, इस कारण इस "वाद" विशेष की चर्चा उपयुक्त ही है। इसके पूर्व कि मै काव्य के नये स्वर, जन-मन की नवीन तरगो के वैविध्यमय नाना रगपूर्ण चित्र प्रस्तुत करूँ यह आवश्यक जान पडता है कि मै भिन्न-भिन्न वादो का एक सक्षिप्त सम्यक् इतिहास सामने रखू।

प्रत्येक युग अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पूर्ण घोषणा के लिये व्यग्र रहता है। किसी देश के युग-विशेष की युग-चेतना का अपना स्वर, सगीत एव साज होता है, जिसकी वजह से युग-विशेष के काव्य, साहित्य, दर्शन एव अन्य सास्कृतिक अभिव्यक्तियाँ, परम्परागत साहित्य के सकुचित सीमित क्षेत्र से बाहर निकल कर उन्मुक्त आकाश के नवीन सौन्दर्य का शोध करना चाहती है। भारतेन्दु जी ने युगचेतना के अनुरूप साहित्य की परम्परागत रीतिकालीन जडता को दूर कर, कला की कलामय अर्चना के साथ जीवन के आदर्श और वास्तविक सघर्ष की सामूहिक अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य और काव्य के नवीन कलेवर को पुष्ट एव सज्जित करने का शुभ प्रयास किया है। काव्य को उस युग मे नये विषय मिले है, नई अभिव्यक्तिया हुई है, नया-

पन और जागृति को समवेत विस्तार मिला है । इसका मुख्य कारण कदाचित् यही है कि भारतेन्दु जी ने साहित्य एव काव्य को आकाश मे निवास करने वाली स्वर्णलता नही समझा बल्कि वे यह समझते रहे कि साहित्य की सृष्टि धरती पर धरती के लिये होती है और वह मिट्टी से ही रस-तत्व लेता है, मिट्टी के आतप, लू, गर्मी एवं त्रिविध समीर से हरा भरा होता है तथा झुलस जाता है। एक शब्द मे हम यही कह सकते है कि साहित्य जीवन से घुला-मिला है जल मे मिश्री की तरह, और उसकी कडिया मिली है सस्कृति से, जैसे गगा जल की लडिया मिली है ब्रह्मा के कमण्डलु से। साहित्य और सस्कृति जीवन के मान-मापक, मानवीय सघर्षो के इतिहास एव सतत् प्रेरणा निराशा, प्रम, साहचर्य आदि सहस्रो भावनाओ के मूक प्रतिचित्र है ।

भारतेन्दु युग के लेखको ने साहित्य को नवीन वैभव से युक्त किया किन्तु वे अतीत की सुखद जड परम्पराओ से सर्वथा मुक्त न हो सके । द्विवेदी जी ने भाषा का सस्कार तो किया किन्तु हृदय के कोमल भावो की सरसता, स्निग्धता एव हृदयहारिता की वे रक्षा न कर पाये । फलत सौन्दर्यान्वेषी मानव-मन विरसता की फीकी मुस्कान से घबडा उठा और अपनी अनुभूति की वास्तविक अभिव्यक्ति के लिये छटपटा उठा । वाणी, वीणा के सगीत-स्वर पर मुखरित हुई और काव्य के अग-प्रत्यग प्रेमरस मे भीग गये । हिन्दी मे एक नवीन चेतना, काव्य का एक नया स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ । काव्य के उस नवीन रूप को मै किसी युग-विशेष की प्रतिक्रिया नही मानता बल्कि उसके स्वाभाविक विकास की कडियो के रूप मे अथवा रुचि-परिवर्तन के छोर मे देखता हू । यह विकास बहुत कुछ राजनैतिक एव सामाजिक कुठाओ के फलस्वरूप सभव हुआ । उस नवीन काव्य-धारा ने साहित्य और काव्य के प्रागण में नक्षत्रो की ज्योति बिखेर दी और सारा काव्य-जगत अलौकिक ज्योति से परिपूर्ण हो गया । किन्तु यह ज्योति नक्षत्रो की तरह अपनी ज्योति न थी क्योकि उस कलापूर्ण अभिव्यक्ति मे समाज का वरदान न था । समाज को विस्मृत निरादृत कर कला के सुन्दर फूल खिलाये गये तथा एक ऐसे अनोखे ससार का निर्माण किया गया जहा न धूल की पीडा थी और न "क्षत के फूल" खिलते थे । उस काव्य-ससार मे तो सर्वत्र प्रेम-सौन्दर्य की मुस्कान प्रसारित हुई । जिसमे प्रेम, विरह, करुणा, उल्लास आदि भावो का एक मात्र चित्रण तो हुआ पर उनमे सामाजिकता का अभाव खटकता रहा । पत जी ने 'नक्षत्र' 'वीचि विलास' 'छाया' 'बादल' आदि कविताओ में कल्पना की केवल उन्मुक्त उडाने ही नही भरी अपितु वे 'भावी पत्नी के प्रति' भी काल्पनिक आनन्द की उपलब्धि करते रहे । उनके प्रेम-गीत उल्लसित तो होते रहे, परन्तु जन-मन की सर्वाङ्गीन आकाक्षाओ को परितृप्त करने मे वे असफल रहे । इस युग मे नीलाभ गगन के ऊ चे सुदीर्घ विस्तृत लोक मे छलागे तो गई, भाव और भाषा के रूखैडपन और कर्कशता को दूर तो किया गया, किन्तु वे सभी अतिशयता

की सीमा-भूमि को लाँघ गये, और जीवन की शाश्वत भाव-भूमि को निराछूत करते रहे। प्राचीन द्विवेदी-युग की काव्य-रूढि के प्रति विद्रोह अथवा परिवर्तित रुचि ने ऐसा बाना लिया कि एकबारगी ही हिन्दी-कविता-धारा सहारा की शुष्क मरूभूमि से मुड कर नन्दन कानन की अमराइयो मे पहुँच गई। इसे आप सामाजिकता के प्रति वैयक्तिकता का विद्रोह कहे अथवा स्थूलता के प्रति सूक्ष्मता का परन्तु यह तो मानना ही पडेगा कि हिन्दी भाव-धारा केवल शेफालिका अथवा मालती कुजादि मे आख-मिचौनी खेलती रही, जीवन की स्वस्थ सबल धारणाओ से अछूती ही रह गई। कविता का केवल छायावादी स्वरूप ही वास्तविक स्वरूप है, ऐसा नही कहा जा सकता। जीवन की गभीर से गभीरतम समस्याओ को छोड कर, आते हुए ववडर उल्कापात को विस्मृत कर कल्पना के सुन्दर राग गाकर 'विहग-बालिका' के मादक कण्ठ स्वर मे लीन होकर काव्य पगु बन गया। उसे तो हृदय का सबल बल और बुद्धि की स्वस्थ परम्पराए समन्वित रूप मे मिलनी चाहिए थी। मेरी दृष्टि में काव्य का सच्चा स्वरूप नही निखर सकता है जहाँ जीवन के सघर्षो के साथ आने वाले राग-विरागो का मनोवैज्ञानिक रसात्मक रूप प्रस्तुत न हो। काव्य जीवन के साथ गलबहिया डाल कर चले तभी जन-मन का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सफल हो सकेगा।

छायावाद की अतिशय भावुकता, कल्पनाशीलता एव आदर्शवादिता के धुधलेपट और कुहासे को चीर कर छायावादी कविता मे वैयक्तिकता की पूर्ण आकाँक्षा है, साहित्य का आदर्शवादी दृष्टिकोण है, परन्तु प्रगतिवाद मे समाज की सामूहिक आह और कराह के फलस्वरूप विध्वस और नव-निर्माण का वेग है। ये कविताएँ मानव को सच्ची वास्तविकता से परिचित कराती है। समाज की दुर्दशा, गरीबी, सडान्ध और दुर्गन्ध को छिपाने की प्रवृत्ति प्रगतिवाद में नही है। वह तो इन परिस्थितियो से प्रत्येक को परिचित और प्रभावित कर समाज की नवीन सृष्टि का विधायक बनना चाहता है। समाज के पददलित, शोषित, तिरस्कृत और उपेक्षित व्यक्तियो अथवा वर्गो का प्रतिबिम्ब प्रगतिवाद मे है।

"चादी के टुकडो को लेने प्रति दिन पिस कर भूखो मर कर,
भैसा गाडी पर लदा हुआ जा रहा चला मानव जर्जर ॥"

इस यर्थाथवादिता ने आँखो पर चढी हुई खुमारी को दूर कर मानव को होश मे ले आने की याचना की है। प्रगतिवाद की रवि-रश्मिया बिखरी है। प्रगति जीवन की सूचक है, लेकिन जिस अर्थ मे प्रगति वर्तमान युग की हिन्दी काव्य-धारा मे दिखाई पडती है, उमका सम्बन्ध भौतिकवाद और मार्क्सवाद से

अधिक है फिर भी उसमे कल्पना, भावुकता और सहृदयता की कमी नही है। प्रगति तो सभी युगो मे हुई है। कालिदास, शेक्सपियर और गेटे की कविताओ मे जो प्रगति है, उसकी झलक देख कर आज भी मानव अपना पथ प्रशस्त कर सकता है। यही प्रगति साहित्य की चिरन्तन-धारा और अमर निधि है। हिन्दी के कवियो ने मानव-जीवन की प्रगति के मर्म को पहचाना था और कबीर, सूर, तुलसी, भारतेन्दु, प्रसाद और गुप्त आदि कवियो मे प्रगतिशीलता ही लक्षित होती है। ये महाकवि प्रगति के वास्तविक अर्थ मे प्रगतिशील है।

प्रगतिवाद की अपनी मान्यताए है, अपना ससार है। वह अपनी दृष्टि से सारे ससार का मूल्याकन करना चाहता है। सत्य, शिव, सुन्दर के लिए उसका अपना माप-दण्ड है। उसके भाव अनूठे है, भाषा भी अनोखी है। तुलसी की भाषा में मन्दाकिनी की शीतलता है, सूर की भाषा मे ब्रज का लोच है, बिहारी की कविता मे ब्रज भाषा के सौन्दर्य की भरमार है, तो भूषण की कविता-भाषा मे ओज है। छायावादी कविताओ की भाषा मे कोमलता का स्वर है तो प्रगतिशील कविताओ मे जीवन की कर्कशता का उद्दाम वेग।

आज का प्रगतिवाद 'Forgive and Forget' 'क्षमा और विस्मरण' द्वारा हृदय परिवर्तन करना नही चाहता, वह आमूल क्राति का पुजारी बना है। वह प्राचीन रूढियो, अन्ध-विश्वासो, परम्पराओ तथा मान्यताओ को भस्मसात् कर जीवन को एक नये रूप मे, समाज को एक नये वेश मे देखना चाहता है। अतीत की सुखद नीलिमा को छोडकर वह वर्तमान की विभीषिका को मिटा कर एक नवीन सृष्टि के निर्माण की कल्पना कर रहा है। इसीलिए प्रगतिवादी कविताओ मे महाप्रलय की ज्वाला, विस्फोट और विध्वस की चिनगारिया तथा विनाश की ताडव लीला की मादक-नाशक स्वर-लहरी लहरा रही है क्योकि इस विध्वस के ही मार्ग पर बसी है एक नगरी जिसमे मनुष्य है और वे मनुष्य मानवीय सवेदनाओ मे सयुक्त है। इसलिए सच्ची प्रगतिशील कविताए ध्वस के आधार पर निर्माण चाहती है। पतजी ने 'युगान्त' मे "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र" और

गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।"

कहकर नवल मानवपन के पल्लवित होने का नूतन स्वप्न-सदेश सुनाया है। नैराश्य के तिमिर मे 'अचल' ने भी ऐसे ही गीत प्रज्ज्वलित किए है —

'उर मे आग नयन मे पानी, होठो मे मुस्कान सजा।
हम हसते इठलाते चलते, इतरा इतरा बल साखा।

अपनी तरणी फेंक प्रलय की लहरो मे खुल खेले हम ।
आज भाग्य के उल्कापातो को हँस हँस कर झेले हम ।'

विगत महायुद्ध की लपटो ने हमारे देश के राजनीतिक और आर्थिक जीवन मे उथल पुथल मचा दी है। इस व्यापक हलचल के प्रभाव से हमारा साहित्य भी अछूता नही रहा। रूस की लाल चिनगारी ने साहित्य की धारा को अगारे की तरह लाल कर दिया जिसमे जीवन के काल्पनिक उल्लासमय बहुरगी चित्र जल गए है। प्रयोग और प्रगतिशील कविताओ का दार्शनिक आधार साम्यवाद और समाजवाद की पीठिका पर मानवता का विकास है। इसलिए आज की कविताओ का दृष्टिकोण और दर्शन मार्क्सवादी है। मार्क्स का दर्शन हीगेल के दार्शनिक विचारो पर आधारित है जिसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की संज्ञा दी गई है। इस सिद्धान्त के अनुसार जड प्रकृति मे ही क्षोभ होता है और उसमे चेतना जन्म लेती है। इस विचार-धारा के मूल मे ससार और समाज मे क्राति की कामना है, परिवर्तन की लालसा है नियन्ता बन कर। हमारे प्राचीन दर्शन और इस मानव-दर्शन मे बडा अन्तर है। हमारे प्राचीन दर्शन अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि दार्शनिक सिद्धान्त जीवन की कठिनाइयो को देख कर मोक्ष का उपाय बतलाते है किन्तु मार्क्स का दर्शन मोक्ष का दर्शन नही, ससार के आर्थिक वैषम्य का दर्शन है जो साम्यवाद रूपी सुख-शाति के पीयूष जल से मानव-समाज को परितृप्त करना चाहता है। इस विचार-धारा ने ज्ञान-विज्ञान की उन्नत अवस्था का बल पाकर ईश्वर की सत्ता का, विश्वास या धर्म की आस्था का मूलोच्छेदन किया है। चार्वाक की तरह "यावत जीवेत् सुखम जीवेत् ऋण कृत्वा धृत पिवेत्" की दुन्दुभी बजा कर भौतिकवाद की रक्षा की है और आदर्श को तिरोहित किया है। भारत की महिमामय गौरवपूर्ण सस्कृति के मूल मे जो त्याग और साधना का अन्तस्रोत है, वह इस विचार-धारा द्वारा तिरस्कृत कर दिया गया है। कवि निरकुश हो गए है। ऐसे प्रगतिशील कवियो ने 'कविता के लिए कविता', सौन्दर्य की रूप-आभा के लिए कविता नही की, अपितु एक विचार-धारा के लिए की है। ऐसी कविताओ मे मानवीय राग को उचित स्थान नही मिला। क्योकि ऐसे कवियो का न तो पुनर्जन्म पर विश्वास है, न साहित्य की शाश्वत चिरन्तनता पर। परिणाम यह हुआ है कि ऐसे प्रगतिशील कवि सभी को क्षणिक और नश्वर मान कर कविता के क्षेत्र मे नैराश्य लेकर उतर पडे है और स्वच्छन्दतापूर्वक जब जैसी भावना हुई उसी के अनुरूप कविता की रचना करते है। काव्य-निर्माण मे ऐसी प्रवृत्ति प्रशसनीय अवश्य है परन्तु उसे यदि सुन्दर दर्शन की परम्परा मे बिठा कर रचना करे तो ऐसी कृतियो का महत्व अनूठा और मूल्याकन करना कठिन होगा। परन्तु ऐसी प्रवृत्ति तो इस विचार-बिन्दु के कम्यूनिष्ट कवियो मे नही

है। हमारी प्राचीन आदर्श प्रेम-परम्पराए भी आज के युग मे हास्यास्पद हो उठी हैं। आज का कवि प्रेम की नग्न सौदर्य-माधुरी के पान मे किसी का व्यवधान नही चाहता। वह उन्मुक्त बन्धन-विहीन हो प्रेम, रूप-रस-स्पर्श का रसपान करना चाहता है। कालिदास और भवभूति ने कलात्मक साहित्य की अभिवृद्धि कर जीवन को सुरुचिपूर्ण और उल्लसित करने की चेष्टा म अपनी सस्कृति का पोषण किया, किन्तु उत्कठित कवि-समाज गन्दगी के अश्लील गीत रचकर यथार्थ की पुष्टि कर रहा है। चाहे इसमे कलात्मक अभिव्यक्ति हो अथवा न हो, चाहे सास्कृतिक सुरक्षा काव्य द्वारा हो वा नही। इन कविताओ में सेक्स (Sex) की भी एक समस्या है। हमारी भारतीय काव्य-धारा मे प्रेम को उच्चासन दिया गया है। मा बेटे के प्रेम में जो माधुर्य है, पति पत्नी के प्रेम मे जो दिव्यता है, भाई बहन के प्रेम मे जो त्याग और ममता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रगतिशील काव्य-धारा मे भाई बहन के कलुषित प्रेम की झाकी चित्रित करने में सकोच नही। ये चीजे समाज की होती हुई भी क्या समाज को उठा सकती है ? साहित्य और काव्य का मुख्य उद्देश्य तो सुधार और परिमार्जन है, परन्तु क्या वर्तमान काव्य-धारा में इसका विरोध नही दीख पडता ?

जीवन का पूर्ण चित्रण भी आज के कवि नही चाहते। क्या यह Revengeful attitude नही ? समाज मे तो सभी तरह के व्यक्ति रहते है, पर प्रगतिशील कवि गायेगे तो कृषक के गीत ही, चित्रित करेगे तो मजदूरनी के फटे चिथडे मे लिपटे लाल को ही। कविता तो जीवन मे उल्लास का सृजन करती है। पर आज की कविता उल्लास का ध्वस कर सघर्ष की याचना करती है। यह मौखिक कोरी सहानुभूति जीवन के विशाल प्रागण में बवडर नही पैदा कर सकती, हा, एक हलचल जरूर उत्पन्न कर सकती है।

प्रयोगवादी साहित्य का जन्म और विकास :—

प्रगतिशील साहित्य की ओट में प्रयोगवादी साहित्य का विधान हिन्दी के आधुनिकतम काव्य मे हुआ है। इसका श्रेय श्री स० ही० वात्स्यायन जी को है जिन्होने 'तार सप्तक" और "दूसरा सप्तक" नामक कविताओ का सग्रह हिन्दी पाठको के सम्मुख रखा है। भारतवर्ष मे इसके उत्थान की कहानी को लगभग १० वर्ष ही हुए है, परन्तु यूरोप में उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे यह विकसित हुआ और अब अमेरिका को छोडकर अन्य यूरोपीय देशो में इसकी जडे हिल गई हैं। यूरोप मे इसके जन्म का कारण यह था कि सन् १८५० के लगभग ज्ञान-विज्ञान की सीमा मे आमूल परिवर्तन हुए और इङ्गलैण्ड की औद्योगिक क्राति ने जीवन की प्राचीन मान्यताओ को एक दम उखाड कर फेंक दिया। कार्ल मार्क्स, डारविन और

फ्रायड आदि ने पुरानी आस्थाओ को प्रकम्पित कर जीवन का एक नया दृष्टिकोण रखा। भौतिक विज्ञान की उन्नति ने सारे यूरोप के धर्मान्धकार को दूर कर विज्ञान की मशाल मे प्राचीन वस्तुओ, मान्यताओ, परम्पराओ के असली रूप का दिग्दर्शन कराया। इन सब बातो का प्रभाव वहा के काव्य जगत् पर पडा। जो बात योरोप मे १९वी शताब्दी मे घटी वही बात भारतवर्ष मे युद्ध-कालीन समय में दिखाई पडी। एक तरफ विज्ञान का आलोक फैला तो दूसरी तरफ प्राचीन सामाजिक मान्यताये, परम्पराये दम तोडती हुई दिखलाई पडी। यूरोप मे उस समय काव्य जगत् के वस्तु सत्य तथा अभिव्यञ्जना प्रणाली मे जो व्यक्तिक्रम हुआ वैसा ही आजकल की प्रयोग-वादी कविताओ मे दृष्टिगोचर हो रहा है। पुरानी हिन्दी भावधारा एव अभिव्यञ्जना प्रणाली के प्रति आज के कुछेक तरुण कवियो की विद्रोही-भावना स्पष्ट हो रही है। ऐसे काव्यो मे विचारो का तीव्र सघर्ष, भावो की उलझन तथा वैयक्तिक-दृष्टिकोण की प्रधानता स्पष्टत लक्षित होती है। शमशेर बहादुर सिंह जी ने लिखा है कि "उर्दू मे भी यह चीज आई थी मगर मजाज, सरदार, साहिर, मखमूद कैफी और जोश की कविताओ ने उसे बिल्कुल दबा दिया। इस रुझान में 'सिम्बोलिज्म' (प्रतीकवाद) और 'फार्मेलिज्म' (रूप-प्रकार-वाद) के नाना रूप और छायाएँ है। दुनिया के साहित्य (विशेषकर काव्य) और कला पर इसका जबरदस्त असर हुआ है ··· ··यूरोप मे ये आन्दोलन अपना काम पूरा कर चुके। हिन्दी इसका युग बाकी था, सो आया।"

प्रयोगवाद क्या है :—

तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय जी ने लिखा है कि इस सग्रह मे आये : "कवि सभी ऐसे होगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते है। जो यह दावा नही करते कि काव्य का सत्य उन्होने पा लिया है केवल अन्वेषी ही अपनेको मानते है। इस आधार को ध्यान मे रखकर प्रयोगवाद की परिभाषा यही बन सकती है कि प्रयोगवाद वह वाद है जिसमें कवि सत्य का अन्वेषण करता है। इस दृष्टि से भारतवर्ष के प्राचीनतम साहित्य को नवीनतम साहित्य की कडियो से मिला देने की भावना दिखाई पडती है। सत्य का अन्वेषण, आत्म-सत्य का दर्शन तो कालिदास, वाल्मीकि, तुलसी और सूर आदि कवियो ने किया। आज का कवि भी अन्तर्जगत् के सत्य और बहिर्जगत् के अतिशय सत्य को अपनी काव्य-सीमा मे समेटकर चलता है। इस अर्थ मे काव्य मे प्रयोग, आत्म-सत्यान्वेषण के प्रयोग सदा से होते रहे है। किन्तु जिस माने मे प्रयोगवाद मे प्रयोग व्यवहृत है उसमें कुछ अन्तर है। आदिम काल से लेकर आज तक के मानव-जीवन के इतिहास को देखे तो आपको विदित होगा कि

मानव अपने जीवन मे प्रयोग करता आया है और उसका जीवन प्रयोगो का इतिहास है। ऐसी अवस्था मे साहित्य पर प्रभाव तो पडेगा ही। तुलसी की सत्य-पिपासा ने मानस को हिन्दी मे जन्म दिया। उनका अन्वेषण एक प्रयोग था और वह प्रयोग सफल रहा। ससार के बहुतेरे कवियो ने व्यक्तिगत प्रयोग किए और सफल रहे। कभी-कभी ऐसे प्रयोगो से ही नवीन चेतना उद्भूत होती है। इस चेतना के प्रकाश मे पिछली युग-चेतना का समस्त अन्वेषण, वस्तु-सत्य और रूप-सत्य, समस्त मान्यताओ को तोडकर नव स्थापनाये करना है। प्राचीन मान्यताओ की विध्वस-भूमि पर नवीनतम कवियो ने वस्तु और रूप की नूतन मान्यताओ को नवीन परम्परा देने की चेष्टा की है। जीवन और जगत् के प्रति एक नया विचार एक नई मुक्ति का अनुसधान किया है। साफ तौर पर जाहिर है कि प्रत्येक युग मे कवि आत्मा का सत्य ढूढता है और क्षण क्षण परिवर्तित विचार बिन्दुओ के साथ एक नवीन चेतना का व्यापक निदर्शन करना चाहता है। सत्य की नवीन अभिव्यक्ति मे प्रभाव की तीव्रता और क्षमता है। यह प्रभाव जितना घनीभूत होगा कलाकार अपने प्रयोग मे उतना ही सफल होगा। इस सम्बन्ध मे यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या कवि सत्य.न्वेषण और उसकी अभिव्यक्ति एक ही प्रकार से करते है ? स्पष्टत आप कहेगे नही, कारण है परिवेश, वातावरण, परिस्थितिया वर्ग-सघर्ष, आर्थिक विषमताये तथा सामाजिक रूढिया। तात्पर्य कि कवियो के दृष्टिकोण मे युग-चेतना के अनुपात से भेद होता जाता है और वे अपने समय के सघर्षो के कारण नवीन चेतना को जन्म देते है।

हिन्दी साहित्य-परम्परा अथवा विकास क्रम पर जब मै एक विहङ्गम दृष्टि डालता हू तो मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होना है कि हिन्दी के कवियो ने आदि-काल से प्रयोग किये है। महाकवि जायसी, सूर, तुलसी आदि कविगण सत्य के अन्वेषण मे सदा ईमानदार रहे है। उन लोगो ने जिस सत्साहित्य की रचना की, उसमे जीवन की नूतन आस्थाओ और मार्मिक अवस्थाओ का चित्रण हुआ है। युग के अनुरूप सत्य का प्रकाश उन्हे मिला और उन कवियो ने जिन समस्याओ को उठाया है वे समस्याए सामयिक होते हुए भी मानव के लिए चिरन्तन है। उन लोगो ने समस्याओ के समाधान के लिए जो प्रयोग किए, जिस सत्य का अन्वेषण किया उसका एक सामयिक प्रयोजन था, उसकी एक परिस्थिति थी परन्तु आज मानव की परिस्थितिया परिवर्तित हो गई है और इस बदली हुई परिस्थिति का प्रभाव व्यक्ति और समाज दोनो पर पड रहा है। इन्ही परिस्थितियो के कारण नई समस्याए उत्पन्न हुई है, नये नवीन विचार बन-बिगड रहे है। जीवन की जटिलताए उग्रतर हो रही है और जीवन तथा वस्तु की व्यापक भूमि मे क्राति-उत्क्राति दिखलाई पड रही है। ऐसे

गत्यावरोध के समय मे साहित्य मे सत्य का अन्वेषण और प्रयोग हो रहे है। विकम्पित भूमि के हलचल भरे आवेगो से व्यक्ति और समष्टि को बचाने के लिए साध्य सत्य का अन्वेषण अनेक साधन-पथ पर हो रहा है। आज का कवि चतुर्दिक वातावरण को देखकर घबडा उठा है उसके सामने उन्नति का या परिस्थितियो को पलटने की समस्या है पर पलट डालने का कोई स्पष्ट साधन नही। इस कारण वह समाज से अलग एक व्यक्ति के रूप मे आत्म-केन्द्रित होकर प्रयोग, सत्य की खोज, कर रहा है।' सामाजिक विफलता से ध्वस्त और पराभूत व्यक्ति निराधार होकर एकान्त रूप से अपनी भाव-चेतना मे पलायन कर रहा है, और वही अपने अस्तित्व के लिए अवलम्ब खोज रहा है। अभिव्यक्ति और सर्जन के बिना चूकि अस्तित्व कायम नही रह सकता इसलिए अपनी सृष्टि के लिए भी वह अपनी विशृंखल और गुमराह अवचेतना के भीतर से ही आवश्यक उपादान जुटा रहा है। आज के विश्व साहित्य की सारी व्यक्तिवादी और प्रयोगवादी प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में यही सामाजिक गतिरोध काम कर रहा है।

''प्रयोगवादी' कविगण प्रतिभावना और कला के प्रति जागरूक एव ईमानदार है। उनमें तन्मयता और रचना का उल्लास है। वह प्रयोग केवल छन्दो के नवीन प्रयोग के लिए ही नही करते अपितु जन-जीवन की कठिनाइयो और उलझनो का समाधान निकालकर स्वस्थ मानव-जीवन की पुष्टि करना चाहते है। उनमे भावुकता और कल्पना की कमी नही, सवेदनीयता भी अधिक है, इसी कारण 'गुनाह के गीत' और 'चुम्बन' जैसे यथार्थवादी गीत को सत्य-सुन्दर मे लपेटकर दिखा सके है। यह ठीक है कि इन कवियो में परम्परा अथवा अतीत की स्वर्णिम आभा को लेकर अपने को आभूषित करने की प्रवृत्ति नही किन्तु वर्तमान और भविष्य की सुखद कल्पना का दृष्टिकोण अवश्य है। ये छायावादी भावुक कवियो के समान पलायनवादी होकर कायर बनकर सघर्षो से कतराते नही, बल्कि यर्थाथवादी विश्लेषण अथच वैज्ञानिक तर्क-वितर्को द्वारा अपनी मूल-समस्याओ का समाधान करने का प्रयास करते है। प्राचीन कवियो की तरह इनके साहित्य का स्थायी महत्व है या नही, इसकी इन्हे जरा भी परवाह नही। सामयिक समस्याओ की यदि पूर्ति भर हो जाती है तो प्रयोग सफल कहा जा सकता है। स्थयित्व का महत्व भी तो सापेक्ष्य ही है। मध्यकालीन साहित्य व्यष्टि के विपरीत समष्टि का महत्व स्वीकार करता है, पर आज की काव्य-धारा मे दोनो के समन्वय की भावना है। प्राचीन कवियो ने अपने प्रयोग को समष्टि की सत्ता में विलीन कर निर्वेयक्तिक होने की घोषणा की है, परन्तु आज के कवि वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक दोनो के बीच में न्यस्त है।'

पिछले युग की छायवादी कविताओ ने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की। अपने काव्य सौष्ठव मे वे इतने अन्तर्मुक्षी हो गए कि तम भरी रात मे तारो की स्वप्न-कहानी बुनते रहे, वस्तु पर उनकी दृष्टि टिक नही पाई। इस कारण छायावादी कविता मे सौदर्य की परख तो अपरिसीम है किन्तु शक्ति और शील का अभाव है। इस सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए जो शैलीगत प्रयोग किये गए वे पूर्णत सफल हुए है। पत ने वस्तु की ओर ध्यान देकर वस्तु मे एक नया चमत्कार समाविष्ट किया और निराला जी ने मुक्त छन्दो का प्रयोग कर रचना टेकनीक की एक विशेषता प्रतिपादित की। किन्तु फिर भी छायावादी कविता व्यक्ति सत्य और वस्तु-परकता से अत्यन्त दूर जा पडी थी और जीवन का समीप्य उसे प्राप्त न था। प्रयोगवादी कवियो ने इन प्रगतिशील रचनाओ की त्रुटियो को भ्मिसात् कर काव्य मे शक्ति और सौन्दर्य को स्थापित किया है तथा शील की अपनी मान्यताओ के अनुरूप प्रतिष्ठा दी है। छायावादी कवियो का भी अपना जीवन-दर्शन था, अपना सौन्दर्य-बोध था, अपना रचना-विधान था किन्तु सभी वैभव को अपने कलेवर मे रखते हुए भी वे वस्तु से अनभिज्ञ रहे। वस्तु की चाट इतनी करारी बैठी" जिसे प्रगतिशील साहित्य का प्रथम उत्थान छायावाद नही सह मका और नवीनता को आत्म-सर्पमरण कर बैठा। इसी ऐतिहासिक भूमि पर प्रयोगशीलता का विकास होता है जिसमें कविता एक नये मोड पर, एक नये राह पर आ खडी होती है। वस्तुत इस धारा की प्राण-भूमि मे निराला और पत है।

आज के सक्राति युग मे जमाना करवटे बदल रहा है। ज्ञान-विज्ञान उन्नताकाश पर आरुढ है किन्तु ज्ञान की सामूहिकता आज भग हो गई है। ज्ञान की सामूहिकता विज्ञान के प्रकाश मे खण्डित हो गई है। जीवन के सघर्ष भी अत्यन्त कटु हो गए है और इस विषम विषमता का शिकार हुआ है समाज का मध्यम वर्ग विशेपत निम्न मध्यम वर्ग। प्रयोगशील कविताओ के जन्म देने वाले अधिकाश कवि इस श्रेणी के है। डा० रघुवश ने लिखा है "मध्यम वर्ग की आज की अस्थिर मानसिक स्थिति, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का सघर्ष इस काव्य मे प्रत्यक्ष है। आधुनिक कवि अपने को एकाएक 'विरोधी सघर्षो की परिस्थिति मे पाता है और अपना मार्ग निश्चित नही कर पा रहा है ....परिणाम स्पष्ट है कि एक ओर उसकी सवेदनाए अधिक वैयक्तिक होती जाती है और दूसरी ओर वह अपनेको अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओ से अलग नही कर पाता है।"

आधुनिक काल के विकास क्रम की तीन रूपरेखाए प्रस्तुत की जा मकती है। प्रथम छायावादी अतिशय काल्पनिक कविताए, दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रीय रचनाए

तथा तीसरे प्रगतिशील प्रयोगवादी कविताए। इन कविताओ के मूल मे जीवन के परिवर्तित दृष्टिकोण तथा सघर्ष सन्निहित है।' विशेषत प्रयोगवादी कविताओ मे वस्तु और शिल्प के नये प्रयोग हुए है, जिसमे वस्तु मे साम्यवाद और शिल्प मे वैयक्तिक रुचि को प्रधानता मिली है। ये नवीन प्रयोग हिन्दी में एक नई दीप्ति, एक नई चेतना दे रहे है।

काव्य के दो पक्ष होते है अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष के अन्तर्गत विषयगत सत्य का अन्वेषण होता है, तथा अभिव्यक्ति पक्ष मे भाषा, अलकार छन्द, काकु, ध्वनि का अनुसरण। प्रयोगवादी कविताओ के भी यही दो क्षेत्र हो सकते है। पहला 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के अनन्तर यह स्पष्ट हो चला है कि नवीन कविगण सामयिक 'वाद' कम्यूनिज्म को अनुभूति का विषय मानकर चले है जिसमे उनकी कल्पना मानसिक सतुलन का योग लेकर अग्रसर हुई है। इस व्यक्ति सत्य की अभिव्यक्ति कही प्रतीकात्मक रूप में, कही प्रत्यक्ष रूप मे स्वच्छन्दता पूर्वक हुई है। इन नवीन प्रयोगा के अन्तराल मे मानव की सुख शान्ति की मूल प्रवृत्ति सन्निहित है।

जैसा मैंने ऊपर कहा है, हिन्दी के आदिम युग से होते आए है। हिन्दी के प्राचीन कवियो ने जिस सत्य का अन्वेषण किया था, वे पुराने तो पड गए है किन्तु उनकी दृष्टि नवीन थी। उनकी कविताओ मे व्यापक सत्य का प्रसार है और एक पथ पर चल कर वे सत्य की खोज मे सफल हुए, परन्तु हमारे आधुनिक प्रयोगशील कलाकार अपनी जटिल उलझनो के साथ सत्य की खोज मे, मार्ग प्राप्ति के लिए, विभिन्न पथ पर अग्रसर हो रहे है। उनके सामने सत्य की कोई स्पष्ट आभा नही किन्तु उनके हृदय मे लगन और उत्साह अवश्य है। वे जीवन के धुधले पट पर सत्य की खोज में सलग्न है। परिणामत एक में परम्परा की मान्यता है, दूसरे में सारी मान्यताओ का ध्वस-स्तूप। एक उलझनो का अन्त दर्शन मे देखता है, दूसरा सारे सघर्षों का विराम सत्यान्वेषण मे समझता है। एक मे अतीत जीवन की वैभव-सुषमा है तो दूसरे में वर्तमान, भविष्य की नीलिमा। आज का कवि सत्य की खोज मे निकल पडा है स्वच्छन्द होकर। प्राचीन मान्यताओ के अनुसार यह दुस्साहस है किन्तु आज एक मार्ग पर चलकर कवि उस मार्ग की निस्सारता जान पाता है तो दूसरे पथ पर अग्रसर हो सत्य की खोज करता है और इसी क्रम का वह निरन्तर अनुगमन करता है। वह किसी प्रकार का व्यवधान या बन्धन सहन नही कर सकता। वह बन्धन-विहीन होकर, हृदय मे भावो की कलिया खिलाए, हिचकिचाहट और सशय रहित होकर अपने भावो को छन्दो के बन्धन, अलकारो की सजावट और

शब्दो के झकार से छुडा कर यथार्थ रूप देता है। अत प्रयोग की साधना अन्तराल की लहर है। वह कविता के लिए ही केवल कविता नही लिखता, बल्कि नवीन सत्यो की स्थापना द्वारा मानसिक परितृप्ति भी चाहता है। 'दूसरा सप्तक' के कवियो की रचनाए आप देखे। सब कविताए एक दूसरे से भिन्न। न विषय में एकता है न छन्दो मे स्थिरता। यह तो उन्मुक्त हृदय की उडान मे 'वाद' का विस्तार है। (भवानी प्रसाद मिश्र) कमल के फूल, सतपुडा के जगल, सन्नाटा, टूटने का सुख प्रलय, स्नेह-शपथ, गीत-फरोश (शकुन्तला माथुर) दोपहरी, सुनसान गाडी, इतनी रात गए, जान बूझकर नही जानती, पूर्णमासी रात भर, जिन्दगी का बोझ, ताजा पानी (हरिनारायण व्यास) उठे बादल झुके बादल, मुक्ति का आभास, वर्षा के बाद (शमशेर बहादुरसिंह) बात बोलेगी, मै सुहाग दू शरीर स्वप्न, रूबाई, बाले दीप, एक स्वप्न (नरेश कुमार मेहत्ता) समय देवता, थके गगन मे (रघुवीर सहाय) एकोऽह बहुस्याम, वसन्त, पहला पानी, सशय, सायकाल, याचना धर्मवीर भारती) कवि और कल्पना, तुम्हारे पाव मेरी गोद मे, चुम्बन, जाडे की शाम, कविता की मौत आदि।

•

विषय की दृष्टि से यदि विचार करे तो दो प्रकार के कवि इन कविताओ मे परिलक्षित होते है। एक वे जो हृदय की भावना को रजित करते है जैसे धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर दूसरे वे जो 'वाद' से प्रभावित है जैसे शमशेर बहादुरसिह, नरेश कुमार मेहत्ता।

कविता के शीर्षक से विदित होता है कि आज का कवि सत्य की खोज मे निकला है। प्रयास है सत्य पाने का, इसलिए उसकी कल्पना का सत्य से कोई विरोध नही। यर्थाथवादी चित्रण में भी सत्य की झलक होती है। अज्ञेय जी ने 'चिन्ता' की भूमिका मे लिखा है "काव्य रचना मूलत अपने को अपनी अनुभूति से पृथक करने का प्रयत्न है—अपनी ही भावो के निर्व्यक्तिकरण (depersonalisation) की चेष्टा। बिना इसके काव्य आत्म–निवेदन है········ · ·······सर्वजनीनता की कसौटी पर खरा नही उतरता।" Tradition and Talent नामक निबन्ध में Elliot ने लिखा है "काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यञ्जना नही, वरन् व्यक्तित्व से पलायन है" परन्तु क्या यह सर्वथा सत्य और सर्वमान्य हो सकता है? पालायनवाद और निर्वैयिकता की गाठ मे वैयक्तिकता और यथार्थवादी छन्द बिन्दु है। 'साहित्य-दर्शन' मे अज्ञेय और इलियट के सम्बन्ध मे लिखते हुए शची शनी गुर्टू ने लिखा है "इसमे सन्देह नही कि श्रेष्ठ कला, स्रष्टा की बौद्धिक शक्तियो मे उद्भूत होकर उसके चिर-परिचित जगत् के लिए अपरिचित सी बन जाती है,

तथापि मनोवैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करने पर यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक कला के निर्माण मे कुछ ऐसे तत्व सन्निहित रहते है, *जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कलाकार के चिर सहचर मनोवेगों से संघटित होते हैं* और जिनके फलस्वरूप किसी भी कला मे उसके स्रष्टा के व्यक्तित्व एव अन्तर्नुभूतियो की वाणात्मक *अभिव्यक्ति अवश्यम्भाव है।* कलाकार के मूल भाव और उसकी अरूप सवेदनाए अनजाने ही रचना-तन्तुओ मे आ रमती है और वह अपनी प्रतिभा से उन्हे ऐसे साचे मे ढाल देता है कि उनमे पृथकत्व होते हुए भी अज्ञात रूप से उसके व्यक्तित्व का सस्पर्श तो बना ही रहता है।" धर्मवीर भारती ने तो स्पष्ट लिखा है "मेरी कविता खोखली है उसमे सामाजिकता भी कम है और जिन्दगी की कशमकश भी कम है। मेरी कविता एक अजीब तरह से व्यक्तिगत कविता है। वह जन साधारण से दूर हैं, उसमे केवल अपने मन की निराशा और व्यथा का ही क्रन्दन और सोच है।" किन्तु इस निराशा का मूल कारण यदि ढूँढा जाय तो आज का विषम सामाजिक जीवन उसके तह मे मिलेगा। मन की सुन्दर महत्वाकाक्षाए और कोमल रगीन सपनो को निराशा की झझा मे झकझोर डालनेवाली तो वर्तमान समस्याए है और उनको दूर करने का प्रयास भी इनके अन्तर्गत है। हा, इस सघर्ष और व्यथा की अभिव्यक्ति ऐसे प्रतीको के माध्यम से हुई है जिसको समझने के लिए माथापच्ची करनी पडती है। धर्मवीर भारती की एक कविता देखिए :—

"धार है कटार मे
तीखी और तेज
मेरी छाती पर बरसो टिकी रही है जिसकी नोक
और मै जीता चला आया हू
प्रतिपल सत्रस्त, भयभीत, निस्सहाय
और आज ओ कटार
तेरी इस धार को है मेरा यह आभार
कि अब इन्तजार की घडिया सब बीत चुकी
हो गया प्रमाणित यह आखिरकार
हृत्कम्प चाहे जितना भी बलवान हो,
कवच नही है वह।

इस कविता मे न छन्द है न अलकार, न सगीत है न स्वर पर निराश प्रेम की अभिव्यञ्जना कटार के प्रतीक से हुई है।

'दूसरा सप्तक' अथवा 'तारान्तर सप्तक' मे नवीनतम सात प्रतिभा सम्पन्न कवियो की रचनाए सग्रहीत है। भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, नरेश कुमार मेहत्ता, शमशेर बहादुरसिह, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय, और धर्मवीर भारती। इन कवियो की अलग-अलग कोई काव्य-पुस्तक प्रकाशित नही हुई है परन्तु फिर भी इन कवियो की मौलिक कल्पनाए तथा नवीन मान्यताए जीवन की स्वस्थ-धारा की सूचना दे रही है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी कविताओ मे दैनिक जीवन के सुख-दुख की कहानी कही है, परन्तु ये सुख-दुख उसके अपने सुख-दुख सुविधा असुविधा, आशा निराशा के नही बल्कि जन-जीवन के है। इन्होने वक्तव्य मे लिखा है "दर्शन मे अद्वैत, वाद मे गाधी का और टेकनीक मे सहज—लक्ष्य ही मेरे बन जाये, ऐसी कोशिश है।"

इनकी कविताओ की प्रमुख विशेषता कल्पना की सुन्दर धारा मे, अनुभूति की विशदता मे तथा वस्तु को नवीन ढग से प्रस्तुत करने मे है। मिश्र जी मे केवल भाव की सादगी ही नही अपितु भाषा का सारल्य और अभिव्यक्ति की सफलता भी लक्षित है। 'कमल के फूल' शीर्षक कविता मे हृदय का सार कितनी सफाई के साथ प्रतीक रूप मे चित्रित किया गया है, देखिए —

फूल लाया हू कमल के।
क्या करू इनका ?
पसारे आप आचल,
छोड दू,
हो जाय जी हल्का !
....

ये कमल के फूल
लेकिन मान सर के है,
इन्हे हू बीच से लाया,
न समझो तीर पर के है।

भूल भी यदि है
अछूती भूल है
मान सर वाले
कमल के फूल है।

हृदय के निश्छल निर्व्याज प्रेम को किसी के आचल मे डालकर समर्पित कर कवि जीवन को हल्का कर लेना चाहता है। ससार चाहे इस प्रेम को अग्राहस्य समझे,

परन्तु कवि अपने सच्चे प्रेम पर विश्वास कर इसे मूल रूप मे स्वीकार नही करता, वरन काम की नैर्सगिक आभा की ओर इ गित करता है।

सुन्दर कल्पना की सरलाभिव्यक्ति यदि आप देखना चाहे तो 'बूद टपकी एक नभ से' मे देख सकते है। यद्यपि इसमें रुमानी ढग और छायावादी ढग है फिर भी उसमे एक नवीन अभिव्यक्ति को स्वरूप मिला है। वर्षा की प्रतीकात्मक पद्धति अभिनन्दनीय है जहा कल्पना के साथ प्रेम का ईमानदारी के साथ वर्णन किया गया है। देखिए —

बूंद टपकी एक नभ से,
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,
ठगा सा कोई किसी की आँख
देखे रह गया हो,
उस बहुत से रूप को,
रोमॉच रोके सह गया हो।

भावो के लच्छे पर लच्छे चले आ रहे है परन्तु कही दुरूहता का नाम नही। सर्वत्र एक सौकर्य और माधुर्य है।

ये कि जैसे आँख मिलते ही
झरोखा बन्द हो ले,
और नूपुर ध्वनि, झमककर,
जिस तरह द्रुत छन्द हो ले,
उस तरह बादल सिमट कर
चन्द्र पर छाये अचानक,
और पानी के हजारो बूंद
तब आये अचानक।

मिश्र जी की अभिव्यक्ति शैली अत्यन्त स्वस्थ और सराहनीय है। 'वाद' का सर्वथा अभाव है।

काव्यानन्द को आलोचको ने रोमहर्षण (Thrill) माना है। यदि आप उसका अनुभव करना चाहते हो तो 'सन्नाटा' कविता देखिए, जहा वर्णन शैली की विशेषता और रोचकता के साथ प्रेम की महत्ता का निदर्शन है।

लो पहले अपना नाम बतादूं तुमको,
फिर चुपके धाम बतादूं तुमको—
तुम चौंक नही पडना यदि धीमे धीमे
मैं अपना कोई काम बतादूं तुमको।

और कवि सचमुच मे सन्नाटे के अन्तराल मे घुसकर यह खोज लेता है कि खण्डहर का प्रत्यक्ष सन्नाटा कभी रजित चरण-नूपुरो की ध्वनि से मुखारित था।

यहाँ बहुत दिन हुए एक थी रानी
इतिहास बताता उसकी नही कहानी
वह किसी एक पागल पर जान दिये थी
थी उसकी केवल एक यही नादानी।
यह धार नदी का अब जो टूट गया है
वह यहा बैठकर रोज रोज गाता था,
अब यहा बैठना उसका छूट गया है।
जब साँझ हुए रानी खिडकी पर आती
थी पागल के गीतो को दुहराती
पर किसी एक दिन राजा ने यह देखा
खिच गई हृदय पर उसके दुख की रेखा,
वह भरा क्रोध में आया औ रानी से
उसने मागा इन साँझो का लेखा—

और हम दम साधे चुपचाप सास रोके यह सोचने को बाध्य होते हैं कि आगे क्या हुआ ? क्या रानी पागल के गीतो को सुनने के कारण दुखित की गई ? क्या हुआ प्रश्न बराबर मस्तिष्क मे घूमता रहता है। इन कविताओ मे भारतीय सस्कृति की मानवता की अक्षुण्ण धारा कवि देखता है किन्तु वह धारा आज टूटी है और कवि पुन: उस धारा को प्रवाहित देखना चाहता है।

लोक-गीत की अन्तर्ध्वनि यदि सुननी हो तो आप 'मगल वर्षा' शीर्षक कविता देखे, जहा 'अनमोले री' 'लजीली, रगीली, सरग नसेनी' आदि लोक गीत प्रचलित शब्दो द्वारा कवि ने लोक गीत का रूप दिया है। प्राचीन नीति के पदो का अर्वाचीन सस्करण या रूप देखना चाहे तो 'असाधारण' शीर्षक कविता देखिए '—

लगडे को पाव और
लूले को हाथ दे
सत की सभार में
मरने तक साथ दे

बोले तो हमेशा सच
सच से हटे नही
झूठ के डराये से
हरगिज डरे नही।
सचमुच वही सच्चा है।

यदि गाधीवादी दृष्टिकोण आप देखना चाहे तो 'प्रलय' और 'स्नेह-शपथ' कविता देखे —

इस दुखी ससार मे जितना, बने हम सुख लुटा दे
बन सके तो निष्कपट मृदुहास के,
दो कण जुटा दे,
दर्द की ज्वाला जगाये, नेह
भीगे गीत गाये,
चाहते है गीत गाते ही रहे
फिर रीत जाये,
यह कि तब पछतायगी अपनी
विवशता पर प्रलय भी।
मत रहे तब झोपडी
मिट जाय फिर नीलम निलय भी।

चित्य प्रयोग :—

इसमे जीवन का विषाद और हर्ष का यथार्थ चित्रण मिलता है। गाधी का आदर्श क्राइस्ट से मिलता था। यदि कोई एक गाल पर थप्पड मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर दो। यह उस धारणा पर आधारित है जिसकी तह मे है कि बुराई, बुराई से दूर नही होती, बुराई को भलाई से दूर कर सकते है। इस गाधीवादी विचार धारा को 'स्नेह-शपथ' कविता मे देखिए :—

हो दोस्त या कि वह दुश्मन हो,
हो परिचित या परिचय विहीन,
तुम जिसे समझते रहे बडा
या जिसे मानते रहे दीन,
यदि कभी किसी कारण से
उसके यश पर उड़ती दिखे धूल,
तो सख्त बात कह उठने की—
रे, तेरे हाथो हो न भूल।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओ मे भाव और भाषा की सरलता, स्पष्टता सराहनीय है। इन्होने अपना विश्लेषण जो कुछ अपने वक्तव्य में दिया है वह सार पूर्ण है। इस गीत मे मानववाद लक्षित है। मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना चाहिए।

शकुन्तला माथुर की कविता मे रागात्मक अभिव्यक्ति अधिक है। कतिपय रचनाओ में सामाजिक चेतना की झलक स्पष्ट है। इन्होने स्वय वक्तव्य मे लिखा है 'बचपन से तुकबन्दी और गाने का शौक था, जिनकी सार्थकता परिवारिक समारोहो तक ही रही' परन्तु मन मे सदा इसके प्रति एक आकर्षण विद्यमान था। इसी आकर्षण के कारण वे कवितायें स्वान्त सुखाय लिखती रही। इसीलिये इनकी कविताओ मे स्वच्छन्द मन के उद्गार है। लेकिन पीछे चलकर इन्होने "अनुभव किया कि स्वान्त सुखाय काव्य की सार्थकता तभी है जब वह प्रत्येक को स्वान्त — सुखाय लगे। वह एक ही के आनन्द की परिधि मे न रहे, वह व्यक्ति के सकुचित दायरे से ऊपर उठकर वायु की तरह फैल सके और सबको छू सके। इस प्रकार वह स्वय ही बहुजन हिताय हो जाय।" मेरे ख्याल से उनकी कविता जीवन की वास्तविक अनुभूति को लेकर चली है और इसमे किसी वाद-विशेष की पुष्टि नही अपितु अपना विचार-वैभव, अपनी गति और अपना माधुर्य है। किसी विशेष विचार-धारा के प्रचार का, इनकी कविताओ मे अभाव है, जो दूसरे सप्तक मे सगृहीत है। इन कविताओ की कुल सख्या ११ है।

उष्मा की भयानक गर्मी का कितना यथार्थ चित्र 'दोपहरी' मे है देखिये —

बडे घरो के श्वान पालतू
बाथरूम मे पानी की हल्की ठडक मे
नैन मूद कर लेट गये थे
कोई बाहर नही निकलता
साझ समय तक—
थप्पड खाने गर्म हवा के.........
गर्मी के मौसम मे।

'हरे वृक्ष' कविता मे कवयित्री का जीवन के प्रति कितना आशावादी दृष्टि कोण है देखिये —

ये उपकारी हरे वृक्ष
यह नयी लता
खुली—कोपल

खुलने पर, खिलने पर, पकने पर
झुक जायेगी स्वय धरा पर
फिर से उगने को कल
नये रूप मे ।

अवसान और पुनर्जन्म ने जीवन को आशावादी दृष्टि दी है। अनुभूति और भाव का प्रतिबिम्ब पाना हो तो 'सुनसान गाडी' और 'इतनी रात गये' कविता देखिये। जिसमे कवयित्री ने अपनी अनुभूति के भीतर सारे जगत् की वस्तु को ले लिया है और सभी से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है विषम सामाजिक परिस्थितियो मे ।

उन गरीबो के घरो मे
मन्द दीपक बुझ चले थे
घाट भी सूना पडा था
पछियो के स्वर समेटे
नीद मे थे पेड
केवल वायु की कुछ सरसराहट
भय से जगा देती थी कुछ गाडीवान को,
और गाडी जा रही थी
धीरे - धीरे
चीरती सुनसान को

गरीबो के घर के दीप बुझने वाले थे पर किसी को फिक्र नही, केवल एक-दो समझते है और ससार की गाडी बढी चली जा रही है।

'जान बूझ कर नही जानती' कविता सचमुच मे बडी सुन्दर है। इसकी उपमाये भी रोजमर्रा के जीवन से ली गई है और इसमे एक अनूठा नयापन और राग है—

जान बूझ कर नही जानती
आज मुझे लगता ससार खुशी मे डूबा—
मा ने पाया—अपना धन ज्यो
बहुत दिनो का खोया,
बहुत बडी क्वारी लडकी को सुघर मिला
हो दूल्हा,
मैल भरी दीवारो पर राजो ने फेरा चूना
किसी भिखारिन के घर मे, बहुत दिनो के
पीछे, मन्द जला हो चूल्हा ।

कवयित्री ने 'लीडर का निर्माता' मे जो व्यग्य रखा है वह कितना सजीव और मार्मिक है। कवयित्री की सजग विशेषता देखिये —

सजा है
रेशम के पर्दों से ड्राइग रूम
सोडे से, फिनील से
और गरम पानी से
धुल रहे बाथरूम। ....

कूडे से भरी गाडी—
खडी है गली के बीच
भगी का इन्तजार
गन्दगी का ससार

जिसमे है बोल रहा
मौत के सिगनल सा
भोपू दूर मील का
भूखा ही कौन जा रहा?
लीडर का निर्माता !

वास्तव मे इस व्यग्य में जीवन की जो यथार्थता है वह बहुत कष्ट देने वाली है।

हरिनारायण व्यास लिखते है "कविता एक सपनो का ससार है और यह ससार यदि नये जीवन के क्रीडा-स्थल, नये जगत् की रगीनी से सिक्त हो तो कवि का कर्म और उसका सामाजिक दायित्व सार्थक हो जाता है।" यह तो सच ही है कि कविता जीवन के समीप हो और उसकी अभिव्यक्ति नवीन अर्थ से विभूषित हो। गोपाल कृष्ण कौल ने लिखा है "इनकी कविताओ मे नई जिन्दगी के स्वप्न देखने की चेष्टा है। इस स्वप्न को 'नया विश्वास' 'नया आकाश' 'नव सृजन' आदि शब्दो द्वारा बार बार अभिव्यक्त किया गया है, किन्तु जिन्दगी का नयापन अपने स्पष्ट रूप मे कवि के सामने नही है। केवल एक धुधली आशा उसे आगे की ओर खीचती है।" इस आलोचना मे तथ्य तो अवश्य है किन्तु बल नही। प्रयोगशील कवि की मान्यताए ही स्थिर कहा है? उसका नया जीवन भी अभी अस्थिर है अत उसकी काव्य रचना मे सत्यान्वेषण का प्रयास है। उन्होने तो स्वय 'एक भावना' शीर्षक कविता मे लिखा है —

रुग्न जन-जन
युद्ध-पथ पर लडखडाता हाफता
हर चरण पर भीति से बिजली सरीखा कापता
तोडने आतुर हुआ यह क्षुद्र बन्धन
आज कर पीले नयन मे ज्योति धुधला सपना

नयन मे ज्योति धुधला स्वप्न है और ज्योति के सहारे कवि उसी धुधले स्वप्न को साफ करना चाहता है।

'उठे बादल झुके बादल' शीर्षक कविता अत्यन्त सुन्दर है। इस कविता की व्यञ्जना कितनी सुन्दर है ? देखिए .—

उधर उस नीम की कलगी पकडने को
झुके बादल।
नयी रगत सुहानी चढ रही है
सबके माथे पर। ....
बरस जा रे, बरस जा ओ नयी दुनिया के
सुख सम्बल।
पडे है खेत छाती चीर कर
नाले नदी सूने।
बिलखते दादुरो के साथ सूखे झाड
रूखे झाड।
हवा बेजान होकर सिर पटकती
रो रही सरसर।
जभी की धूलि है बदहोश
भूली आज अपना घर।
जहा की बादशाही भी जहा पर
सिर झुकाती है।
उन्ही कोमल किशोरी का
दुखा कर दिल।
कभी रस ले सकोगे क्या अरे बेदिल !
उठे बादल झुके बादल।

कवि की भावना कितनी सुन्दर है और वह अपने भावो को बडी सरलता से कह सका है। जीवन के प्रेम और सुख पर सघर्ष और वेदना की जो छाया है उसका प्रतिचित्र उतारने में कवि अत्यन्त सफल हुआ है। पूजीवाद की बेडियो में बधी हुई मानवता के उद्बोधन-गीत के रूप मे यह कविता सुग्राह्य है। प्रतीक-प्रयोग आपकी कविताओ मे अधिक हुए है। 'वर्षा के बाद' शीर्षक कविता की सौन्दर्य-माधुरी का रग फीका न होगा। देखिए:—

पुलकाकुल धरती नमित नयन,
नयनो में बाधे स्वप्न नये।
हर पत्त पर है बूद नई

हर बूद लिए प्रतिबिम्ब नया
प्रतिबिम्ब तुम्हारे अन्तर का
अकुर के उर मे उतर गया
भर गई स्नेह की मधु गगरी,
गगरी के बादल बिखर गये ।

कवि शमशेर बहादुर सिह की कविताओ मे आधुनिकता की छाया विशिष्ट है । अपने वक्तव्य मे नई कविता के प्रति अपना दृष्टिकोण देते हुए वे कहते है "इसका सीधा सादा मतलब हुआ अपने चारो तरफ की जिन्दगी मे दिलचस्पी लेना, उसको ठीक ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर । मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है । समझना, अनुभूति और अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझा कर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना । यह आधार इस युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है ।" तात्पर्य कि वे कला को जीवन की झाकी मानते है और उनका विचार स्पष्ट है । जीवन की झाकी तो समाज का प्रतिबिम्ब ही है परन्तु यह भाव इनकी कविता मे स्पष्टत नही आ पाया है । दृष्टिकोण तो इन्होने अपना स्पष्ट कर दिया है परन्तु कविता मे जनवादी दृष्टिकोण पूर्णरूपेण स्पष्ट नही हो सका है और यदि कुछ हो सका है तो जनता के प्रति रागात्मक अभिव्यक्ति नही, एक कृत्रिम बौद्धिक सहानुभूति मात्र है ।

इनकी कविता पर निराला और पत का प्रभाव परिलक्षित होता है और इन्होने भी इसे मुक्तकठ से स्वीकार किया है । इनके गीत प्रायः छोटे होते है परन्तु बात बडी । बडी बात को जहा इन्होने साफ तौर से कहा है वहा तो प्रयास अत्यन्त प्रशसनीय है वहा कविता अस्पष्ट और दुरुह हो गई है । फिर भी शमशेर सिंह की कविताए प्रयोगशीलता के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है । गोपाल कृष्ण कौल ने आलोचना करते हुए लिखा है कि "शमशेर की कविताओ मे जनवादी रागात्मकता नही है, कृत्रिमता है सहजता नही । छन्द, ताल, लय के नये नये प्रयोग है, स्वरो की साधना है, अर्थ का हृदय-स्पर्शी चमत्कार नही ।"

बात बोलेगी हम नही
भेद खोलेगी बात ही ।
सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या — देखे !

अर्थ—गाम्भीर्य शायद इन कविताओ मे कम है पर कवि में कला की चेतनता सर्वाधिक है। 'मै सुहाग दू' शीर्षक कविता अत्यन्त सुन्दर है और उसमे एक नवीन व्यञ्जना है। देखिए —

धरो शिर	विकल मुकल सम
हृदय पर	प्राणमयि
वक्ष बहिन से—तुम्हे	यौवनमयि
मै सुहाग दू —	चिर वसन्त स्वप्नमय
चिर सुहाग दू—	मै सुहाग दू।
प्रेम अग्नि से—तुम्हे	विरह आग से—तुम्हे
मै सुहाग दू—	मै सुहाग दू—

कवि हृदय और मस्तिष्क के सामञ्जस्य से एक नई लालिमा देखना चाहता है।

नरेश कुमार मेहता की कविताएँ साम्यवादी आर्य-सभ्यता की विराटता से प्रभावित है 'आपने इस विराट को कल्पना से समन्वित कर एक नया रूप दिया है। प्राचीन वैदिक कविताओ का नवीन सस्करण सुन्दर है। 'उषस' शीर्षक कविता के अन्तर्गत जो चार कविताए है 'नीलम वशी', 'हिमालय के तव आँगन में', 'थके गगन' तथा 'किरणमयी' इन कविताओ का विषय वेदो से लेकर कवि ने प्राकृतिक विभूति के बीच जीवन के कटु यथार्थ का समावेश पूर्णतः किया है। कविता को युगानुरूप ढालने का यह प्रयास अत्यन्त प्रशसनीय है। देखिए 'नीलम वशी' कविता —

"नीलम वशी मे से कुकुम के स्वर गूँज रहे !
अभी महल का चाँद
किसी आलिगन मे ही डूबा होगा
कही नीद का फूल मृदुल
बाहो मे ही मुस्काता होगा
नीद भरे पथ मे वैतालिक के स्वर मुखर रहे।"
भिनसारे में चक्की के सग
फैल रही गीतो की किरणे
पास हृदय छाया लेटी है,
देख रही मोती के सपने
गीत न टूटे जीवन का यह कगन बोल रहे।

अलौकिक प्राकृति जीवन की विभूति मे आज की वेदना साकार बन प्रतिध्वनित हो रही है। ऐसा मालूम होता है जैसे कवि ने प्रकृति और मानव जीवन की व्याथाओ को नया पथ अवश्य दिया है। प्रात काल का सुन्दर रूपक देखना हो तो 'किरण धेनुए' कविता देखिए।

मेहता जी की कविताओ मे रोमान्टिक कवियो के रगीन हृदय की मचल भी स्पष्ट है। इस प्रवृत्ति का यद्यपि उन्होने अपने वक्तव्य मे लिखकर विरोध किया है कि रहस्यवादी और छायावादी कविताओ को मै कविता नही मानता, परन्तु उनकी 'चाहता मन' शीर्षक कविता देखिए —

"गोमती तट
दूर पेसिल रेख-सा वह बास झुरमुट
शरद दुपहर के कपोलो पर उडी वह धूप की लटु
जल के नग्न ठडे बदन पर कुहरा झुका
लहर पीना चाहता है।
चाहता मन
तुम यहा बैठी रहो
उडता रहे चिडियो सरीख वह तुम्हारा श्वेत आचल,
किन्तु अब तो ग्रीष्म,
तुम भी दूर, औ ये 'लू'

इस कविता की मासलता प्रकृति के कलेवर मे दर्शनीय है।

'समय देवता' इनकी सबसे बडी कविता है। इसका विषय बडा व्यापक और विराट् है। इसमे कवि ने चीन, जापान, रूस, तिब्बत, मिश्र आदि देशो की मानसिक यात्रा की है और समय का भविष्य कैसा होगा इसकी ओर सकेत भी किया है। देखिए :—

"नये मनुज के हाथो मे श्रम की रेखाए
आल्पस रचेगा नये रूप मे
राईन, वोल्गा, गगा के वह इस धरती पर आज नये जल छन्द
लिखेगा।
उसके श्रम के नवल क्षितिज की ओर दौडते सूरज घोडे आलोको की
उल्काए ले।
समय देवता!

किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में मिट्टी का विश्वास बाँधकर
भेज रहा हूँ।
मेरी धरती प्रस्ववती है।
और मनुष्य की पेशानी के चरागाह पर दौड़ रही है तूफानों की
नयी हवाएँ।

इस कविता में कवि की नई आशाएँ नया उल्लास और नई आकांक्षाएं और विश्वास अंकित है। मिट्टी को कवि ने नई मशाल देकर रोशन कर दिया है। कवि समय के नए रुख और विराट रूप से परिचित है।

श्री रघुवीर सहाय जी की कविता भी छायावादी कल्पना से अछूती नहीं, प्रगतिशीलता भी कम नहीं। कविता के प्रति इनका दृष्टिकोण स्पष्ट है। ये 'सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहना' चाहते हैं। उनका विचार है कि जीवन को स्वस्थ रखने के लिए अवधानता अपेक्षित है। बौद्धिक चेतना को जागरूक रखकर सामाजिक, समाजवादी और वास्तविक हलचलों को काव्य में पिरोकर जीवन और साहित्य को सबल और सजग बना सकते हैं, परन्तु खेद है कि इनकी कविताओं में यह हलचलें बहुत कम अभिव्यक्त हो पाई हैं। रोमान्टिक, विचार-धारा, रहस्यवादी कल्पना की बाकी झांकी 'समझौता' शीर्षक कविता में देखिए —

प्राण ! मत गाओ प्रणय के गान,
पथ लगता अधिक सुनसान,
तेरे गीत गाने से।

कवि की विराट मानवता का दर्शन करना हो तो 'एकोऽहं बहुस्याम' कविता को देखें जिसमें आत्मा की तात्विक एकरूपता पर विचार व्यक्त हुए हैं —

"मैं तुम यह वह
मन के चारों कोने—
और व्यक्ति की ये सीमाएं—
कब टूटेंगी ?—
जब तुम होगी मुझसे दूर—
यह भी अपना
वह भी अपना
होगा—
मैं अपने वश में होऊंगा—
तब—
तथास्तु"

मानव की एकता का उद्‌घोष और माया का मिथ्यात्व बडी सफलता तथा नूतनता से किया है।

कवि धर्मवीर भारती की कविताओ मे उर्दू का रूमानी रग सिर पर चढकर बोल रहा है। प्रयोगशील अन्य कवियो से आप अधिक रूमानी है। उनका विचार है कि "कविता का मुख्य कार्य आज के युग मे रूढ अर्थो मे रसोद्रेक मात्र न रह कर 'प्रभाव डालना' हो गया है।" परन्तु धर्मवीर जी की कविताओ मे आपको रस की न्यूनता नही मिलेगी। रस से सराबोर कर आप पर वे अपना अमिट प्रभाव छोड ही जाते है क्योकि इनकी कविताओ मे स्थूल मासलता के साथ जीवन की सघर्षमयी लालिमा भी व्याप्त है। इस कार्य मे उर्दू वालो की अभिव्यक्ति वक्रता सोने मे सुगन्ध का काम करती है, देखिए —

इन फिरोजी ओठो पर बरबाद मेरी जिन्दगी !
तुम्हारे स्पर्श की बादल-धुली कचनार नरमाई !
तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मदहोश गरमाई !
तुम्हारी चितवनो मे नरगिसो की पात शरमाई !
किसी भी मोल पर मै आज अपने को लुटा सकता
सिखाने को कहा मुझसे प्रणय के देवताओ ने
तुम्हे, आदिम गुनाहो का अजब-सा इद्रधनुषी स्वाद !
मेरी जिन्दगी बरबाद

फ्रायड के अनुसार इन पक्तियो मे दमित वासना का विस्फोट ध्वनित है किन्तु कवि 'गुनाहो के गीत' गाने की सामर्थ्य रखता है। ससार से अपने गुनाह छिपा कर साधु बनने की प्रपचपूर्ण लालसा उसकी नही है। इसका दूसरा उदाहरण "तुम्हारे पाव मेरी गोद" मे देखिए —

ये शरद के चाँद से उजले धुले से पाँव, मेरी गोद मे !
ये लहर पर नाचते ताजे कमल की छाँव, मेरी गोद मे !
दो बडे मासूम बादल, देवताओ से लगाते दाँव, मेरी गोद मे !
× × × × ×
सोन जूही की पखुडियो पर पले ये दो गान, मेरी गोद मे !
हो गये बेहोश दो नाजुक तूफान मृदुल, मेरी गोद मे !

उपरोक्त पक्तियो मे रसोद्रेक की नई शक्ति तथा प्रभाव डालने की नूतन योजना है। सचमुच मे धर्मवीर भारती के पास एक सरस हृदय है और वे कवि है। उनकी प्रतिभा भी रचनात्मक है। यदि दमित वासनाओ के कुचक्र से निकल कर,

अज्ञेय जी के प्रभाव से बच कर वे कविता लिखे तो निस्सन्देह वे हिन्दी काव्य को अपनी अमर ज्योति दे सकते है। ऐसा आप न समझे कि जो कुछ उनमें है बस यही है अपितु थके हुए कलाकार से' और "कविता की मौत" मे जो कुछ उन्होने प्रस्तुत किया है वे जीवन की वर्तमान गति से विलग नही, ओत प्रोत है।

"सृजन की थकन भूल जा देवता।
अभी तो पडी है धरा अध बनी, ...
अधूरी धरा पर नही है कही
अभी स्वर्ग की नीव का भी पता। (थके हुए कलाकार से)

कवि अपनी सृष्टि से जीवन मे स्वर्ग निर्माण की कल्पना करता है वर्तमान की विभीषिका को मिटाकर। वर्ग-गत सघर्ष की नवीन चेतना द्वारा वह कवियो को नव-निर्माण के लिए ललकारता है। कविता की शक्ति पर उसका विश्वास है। वह मानव-मन को बदल कर मानव मानव मे एकता स्थापित कर सकता है। देखिए 'कविता की मौत" —

कौन कहता है कि कविता मर गई ?
हा, वही कविता की जिसकी आग से
सूरज बना, धरती जमी बरसात लहराई
और जिसकी गोद मे बेहोश पुरवाई
पँखुरियो पर जमी वही कविता
विष्णु पद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमण्डल से उबल
बादलो की तहो को झकझोरती
चाँदनी के रजत फूल बटोरती
शम्भु के कैलाश पर्वत को हिला
उतर आई आदमी की जमी पर
चल पडी फिर मुस्कराती
शस्य श्यामल फूल फल फस्ले खिलाती
पर न आखिर एक दिन वह भी रही
मर गई कविता वही
एक तुलसी पत्र औ दो बूद गाजल बिना
मर गई कविता नही तुमने सुना ?

किन्तु इस नैराश्यमय भावना को फटकार कवि चिल्लाकर ससार को आश्वस्त कर देता है और कहता है —

फिर उभर कर कहेगी कविता
क्या हुआ दुनियाँ अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी हेवानियत की इन्तिहा
आदमियत की अभी आवाज बाकी है
लो तुम्हे मै फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ
कौन कहता है कि कविता मर गई ?

कवि ने आज की दानवता पर मानवता की विजय का सांकेतिक रूप प्रकट किया है। पूँजीवाद की भयानक ज्वाला को साम्यवाद के जल से सींच कर कवि आदमी आदमी के बीच की खाई को पार कर नवीन सामाजिक निर्माण का स्वप्न-सँदेश सुना रहा है।

तात्पर्य कि इन नवीन कवियो की भावना हिन्दी काव्य-प्रवाह मे उथल पुथल पैदा करती है। ये भावनाएँ उसके भीतर से उठने वाली तरँगे है, बाहर के समीर की हलचल नही। यद्यपि इनमे छन्दो का ध्यान नही, भाषा की सफाई और अलँकार की सजावट नही परन्तु इनकी भावना सच्ची है। यह 'वाद' का घेरा नही, अपितु जीवन की हलचल है जो इन कवियो की वाणी वीणा द्वारा स्पन्दित है। अत अज्ञेय जी के शब्दो मे मै यही कह सकता हूँ "प्रयोगवाद का कोई 'वाद' नही है, हम वादी नही रहे, नही है।"

अध्याय १६

हिन्दी काव्य में प्रतीक

हिन्दी काव्य साहित्य मे प्रतीको का प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है। प्रतीक हमारे विचारो और भावो को मूर्त और स्पष्ट बनाने मे सहायक होते है। प्रतीक का अर्थ भी होता है प्रतिरूप या प्रतिमा अथवा वह वस्तु या भाव जो अश होकर भी समग्र के लिए व्यवहृत हो। अभिव्यक्ति मे मानसिक प्रक्रियाए मुख्य होती है और जहा सूक्ष्म मानसिक और आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति का प्रश्न होता है, वहा प्रतीको का विधान आवश्यक सा हो जाता है। सच तो यह है कि मानव की अनुभूति जब सरल शब्दो द्वारा स्पष्ट नही हो पाती, तब वह प्रतीकों का आश्रय लेती है। मानव हर समय अपने भावो को लिख नही पाता और जीवन मे बहुत से ऐसे भाव आते है जिन्हे वह प्रकट करना चाहता है जिससे उसके भावो को सभी समझ सकें। इस प्रयत्न मे प्रतीको का प्रयोग और विधान निश्चित ही है, वास्तु, नृत्य और चित्र आदि ललित कलाए भी मानव की सूक्ष्म मानसिक चेतनाओ की अभिव्यक्ति कर एक भावनात्मक ससार की सृष्टि करती है जो मूल रूप मे प्रतीकात्मक है।

भारत के प्राचीनतम साहित्य मे तथा मिश्र देश की चित्रलिपियो (Hieroglyphics) मे प्रतीको का विधान और प्रयोग है। चीनी भाषा भी इससे मुक्त नही। चीनी भाषा एक वर्ण-विशिष्ट भाषा है और उसकी लिपि चित्रलिपि है। चीनी भाषा मे सूर्य, चन्द्र, पर्वत, वन, चावल, मुख आदि शब्दो को लिखने के लिए अक्षरो के चित्र बनाये जाते है और ये चित्र मूलत भावो के प्रतीक ही होते है। चीन के क्लासिकल (classical) और जन-नाट्यो मे भी प्रतीको का विधान है। 'रग मच पर कुछ ऐसे प्रतीको का प्रयोग होता है जो साधारण दर्शक के लिए अद्भुत और कौतूहल पूर्ण होता है। रगमच पर कलाबाजी करना एक टाग पर चलना, पखे से

हवा करना, चीखना, चिल्लाना आदि ऐसे ही प्रतीकात्मक प्रयोग है, जिसे समझ कर ही दर्शक नाटक का आनन्द पा सकते है।'[1]

प्राचीन सस्कृत साहित्य वेद, उपनिषद और पुराणो मे प्रतीको की योजना प्रचुरता के साथ उपलब्ध होती है। वेदो मे उल्लिखित 'ॐकार' अपर ब्रह्म और परब्रह्म का वाचक एव अक्षर ब्रह्म का प्रतीक है। उपनिषदो मे तो प्रतीक और स्पष्टता के साथ आये है। परब्रह्म परमात्मा का सामीप्य लाभ कौन कर सकता है, यह बात रथ और रथी के रूपक द्वारा बताई गई है।

आत्मानँ रथिन विद्धि शरीरँ रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रगहमेव च ॥[2]

इस मन्त्र मे आये हुए रथ, रथी, सारथी और लगाम शब्द क्रमश शरीर, आत्मा, बुद्धि और मन के प्रतीक है। इस तरह के कई मन्त्र कठोपनिषद मे आये है जिनमे शब्दो का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। उपनिषद का एक बहुत ही विश्रुत श्लोक है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष पारस्व जाते।
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वन्यश्नन्नन्यो अभिचाक शीति ॥[3]

इस मन्त्र मे सदा साथ रहने वाले और परस्पर सख्य भाव रखने वाले दो पक्षियो की चर्चा है, जो एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते है। इन दो पक्षियो मे से एक स्वाद लेकर वृक्ष के फलो को खाता है किन्तु दूसरा वृक्ष के फलो का उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। इस श्लोक मे वर्णित वृक्ष के फलो का उपभोग करने वाला पक्षी कर्मफल मे बधा जीवात्मा का प्रतीक हे और वृक्ष के फलो का उपेक्षा भाव से देखने वाला पक्षी परमात्मा का प्रतीक है। उपनिषद का एक दूसरा मन्त्र है :—

ऋत पिवन्तौ मुक्तम्य लोके गुहा प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छाया-तपौ ब्रह्म-विदो वदन्ति पचाङनयो ये च त्रिणाचिकेता ॥[4]

---

१ चीनी जनता के बीच—डा० जगदीश चन्द्र जैन
२ कठोपनिषद—प्रथम अध्याय—तृतीय वल्ली—३
३ मुण्डकोपनिषद—प्रथम खड १
४ कठोपनिषद—प्रथम अध्याय-तृतीय वल्ली १

इस मन्त्र मे जीवात्मा और परमात्मा की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए 'छाया-तपौ' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो प्रतीकात्मक है। शुभ कर्मों के फल स्वरूप मनुष्य शरीर मे परब्रह्म के उत्तम निवास स्थान मे बुद्धि रूपी गुफा मे छिपे हुए सत्य का पान करने वाले दो है, वे छाया और धूप की भाति परस्पर भिन्न' है। वास्तव मे छाया और धूप जीवात्मा और परमात्मा का द्योतक प्रतीक है।

बृहदारण्यक उपनिषद के पचम अध्याय मे एक प्रतीकात्मक कथा की अभिव्यजना उपलब्ध होती है।[1] इस कथा मे 'द' वर्ण की प्रतीकात्मकता स्पष्ट है। 'द' वास्तव मे दमन, दान और दया का बोधक प्रतीकात्मक वर्ण है। तात्पर्य कि प्रतीको का प्रयोग उपनिषद काल मे रहा है और उसकी प्रचुरता का प्रभाव इतर साहित्य पर पूर्ण रूप से पडा है। फल स्वरूप पुराणो मे कथात्मक प्रतीको की भरमार है। पुराण-साहित्य की इस विशिष्टता को न समझने वाले कुछ पाश्चात्य और प्राच्य आलोचको की यह धारणा है कि पुराण साहित्य कपोल कल्पित, मन-गढन्त और झूठी कहानियो का सग्रह ग्रन्थ है किन्तु मेरा विश्वास है कि पुराणो में भारत की आदर्श धार्मिक कहानियाँ है जिनमे उच्च कोटि की अनुभूतियो का प्रतीकात्मक विवरण है। इस धारणा की पुष्टि स्वय पुराणकार के एक श्लोक से हो जाती है। महाकवि व्यास ने लिखा है —

सर्गश्च प्रति सर्गश्च बशोमन्वन्तराणि च।
वशानुचरित चैव पुराण पचलक्षणम् ॥

इस श्लोक के आलोक मे स्पष्टत पाच विषयो का उल्लेख पुराण मे है और ये विषय है सृष्टि, प्रलय, बश-परम्परा, मन्वन्तर और महापुरुषो का चरित्र। सच तो यह है कि पुराण-साहित्य मे भारत की विराट आध्यात्मिक चेतना को अभिव्यक्ति

---

१ बृहदारण्यक मे एक कथा आई है। प्रजापति के तीन पुत्र, देवता, दानव और मानव प्रजापति के पास उपदेश ग्रहण करने गये। प्रजापति ने तीनो के लिए समान 'द' उपदेश दिया। प्रजापति ने पूछा कि 'द' का अभिप्राय आप लोगों ने समझा? देवताओ ने उत्तर दिया— 'दाम्यत इति न आत्थ इति' दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन करो। प्रजापति ने उत्तर दिया— ठीक है, तुम समझ गये। पुन प्रजापति ने मानव से पूछा। मानव ने उत्तर दिया—'दत इति न आत्थ इति' अर्थात् दान करो। प्रजापति ने कहा—हा, तुम भी समझ गये। प्रजापति ने फिर दानवों से पूछा। दानवों ने उत्तर दिया—'दयध्वम् इति'। प्रजापति सबका उत्तर सुनकर सतुष्ट हुए और उन्होंने कहा कि आप लोगों ने हमारे उपदेश को पूर्ण रूप से समझा है।

मिली है। पुराणकार व्यास ने भारत की आध्यात्मिक चेतना और मानसिक चेष्टाओ को रूपकात्मक कहानियो का स्वरूप देकर रोचकता प्रदान की है। समष्टि और व्यष्टि के सूक्ष्म तत्व एव अव्यक्त घटनाएँ कहानियो के रूप मे पुराण साहित्य में सुलभ कर दी गई है।

पुराणो मे वर्णित प्रतीको का कुछ उदाहरण देकर उपरलिखित तथ्यो की पुष्टि करना आवश्यक है। पुराण मे शेषशायी भगवान् विष्णु का एक चित्र वर्णित है। वह क्षीर सागर मे शेषनाग के ऊपर महानिद्रा मे शयन कर रहे है और उनकी नाभि के कमल पर तत्वज्ञानी ब्रह्मा विचार मग्न है। इस चित्र द्वारा साधारणजन को केवल एक पौराणिक भावना मिलेगी किन्तु विवेक पूर्वक विश्लेषण करने पर आध्यात्मिक सकेत की उपलब्धि होती है जिसमे एक दिव्यता के साथ रहस्यमयता है।

	चित्र में वर्णित वस्तुएँ	*प्रतीक*
१	अन्धकार	प्रलय का प्रतीक है।
२	जल	अनन्त देश का प्रतीक है।
३	शेषनाग	काल का प्रतीक है।
४	विष्णु	देश और काल के ऊपर सर्बव्यापकत्व का प्रतीक है।
५	ब्रह्मा	दृढ सकल्प का प्रतीक है।
६	कमलदण्ड	बच्चे की नाल का प्रतीक है।
७	कमल	सृष्टि का प्रतीक है।

यही नही, भारत के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य मे तीन देवताओ का नाम अवश्यमेव आता है। वे है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। यदि नाम को केवल नाम समझा जाय तो अर्थ की सगति बैठ जाती है (और नाम के मूल मे भी पृथकत्व की भावना के कारण प्रतीक ही है) परन्तु सहृदय यदि उन प्रतीको के आलोक मे अर्थ की सगति बैठाए तो एक नये आध्यात्मिक अर्थ का चमत्कार मिलेगा और स्वभावत व्यक्ति उन महर्षिओ की अद्भुत कल्पना शक्ति और गम्भीर ज्ञान पर अवाक् हो जायगा।

१.	विष्णु	व्यापकत्व के प्रतीक है।
२	ब्रह्मा	प्रचुर ज्ञान और चारो वेद के प्रतीक है।
३.	शिव	कल्याण और विनाश के प्रतीक है।

पुराणकारो ने न केवल विष्णुत्व की रक्षा के लिये प्रतीक पद्धति अपनाई बल्कि उन आध्यात्मिक रहस्यो को सामाजिकता प्रदान करने के लिये प्रतीकात्मक नामकरण किये । इन नामो के साथ आने वाली सभी चीजे प्रतीकात्मक है ।

१.	विष्णु का वाहन गरूड	गति का प्रतीक है । ससार मे सबसे तेज चलने वाला पक्षी गरूड है ।
२	ब्रह्मा का वाहन हस	विवेक का प्रतीक है। हम को सर्वदा ज्ञान रहता है कि मै कौन हूँ । सोऽह अह स हस = विवेक ।
३	शिव का वाहन नन्दी	कृपा का प्रतीक है ।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियाँ भी इन्ही कारणो से प्रतीकात्मक है ।

१	ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती ...	कला और ज्ञान की प्रतीक है ।
२	विष्णु की शक्ति लक्ष्मी	वैभव और विभूति की प्रतीक है ।
३.	शिव की शक्ति दुर्गा, पार्वती या काली	कोमलता और भयकरता की प्रतीक है ।

इसके अतिरिक्त इन शक्तियो के वाहन भी है और वे भी प्रतीकात्मक है । इन शक्तियो के रङ्ग भी निश्चित है, जो प्रतीकात्मक है और एक आध्यात्मिक अर्थ रखते है । यदि इन कहानियो को हम केवल कहानियाँ समझे तो मनोरजन हो जाता है परन्तु इन कहानियो के प्रतीको को समझ लेने पर एक आध्यात्मिक आनन्द का सकेत मिलता है । तात्पर्य कि पुराण की कहानियाँ प्रतीकात्मक है ।

पुराण मे चित्रित गणेश जी के स्वरूप को ही लीजिये । गणेश विषयक एक मत्र ऋगवेद मे आया है—'गणानात्वा गणपति हवामहे कवि कलीनामुपय श्रवस्तम्' । लगभग इसी प्रकार की भावना से ओत प्रोत एक मत्र यजुर्वेद मे भी आया है:—

'गणानात्वा गणपति हवामहे प्रियानात्वा प्रियपति हवामहे विधिनात्वा विधिपति हवामहे वसोमम... .. .. '

भारतीय वाङ्मय मे गणेश की उपासना का महत्व बहुत है । सभी हिन्दू गणेश की पूजा किसी न किसी रूप मे अवश्य करते है । तिब्बत, तुर्किस्तान,

पाकिस्तान, हिन्देशिया मे गणेश पूजा प्रचलित थी। भारत के योग-शास्त्र, तंत्र शास्त्र, धार्मिक ग्रथ, बौद्ध और जैन ग्रन्थों मे सर्वत्र गणेश की महिमा का वर्णन मिलता है। 'गणपत्युपनिषद' इसका दृढतर और सबल प्रमाण है।

गणेश जी का चित्र आपने देखा होगा। तत्सबंधी एक वर्णन गोस्वामी जी का उपलब्ध है जिससे अग्रगण्य भगवान् गणेश की मूर्ति साकार हो उठती है।

"गाईये गणपति जग वदन।
शकर सुवन भवानी के नदन।
सिद्धि सदन गज बदन विनायक।
कृपा सिधु सुन्दर सब लायक।
मोदक प्रिय मुद मगलदाता।
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता।
मागत तुलसीदास कर जोरे।
वसहु राम सिय मानस मोरे।"

इस मूर्ति को देखकर भला कौन ऐसा होगा जो इसे सुन्दर कह सके। यदि ऐसा बेढगा स्वरूप ही सुन्दर हे तो कुरूपता नाम की कोई चीज नही। किन्तु गणेश का वास्तविक रूप पुराणकार की दृष्टि मे यह नही है। गणेश परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान चित्र है, जिस प्रकार राजनीति और कविता मे कार्टून और हास्य-चित्रो का एक अपना महत्व होता है उसी तरह ध्यान-योग मे ध्यान-चित्रो का महत्व है। कार्टून को कोई प्रत्यक्ष चित्र नही मानता, इस कारण गणेश की इस मूर्ति के चित्र को प्रत्यक्ष समझना क्या मौलिक भूल नही। वास्तव मे ये चित्र प्रतीकात्मक है।

गणेश का चित्र	प्रतीक
१. लम्बी सूड	'ज्ञानिनाम् अग्रगण्यम्' का प्रतीक है। आप पूछ सकते है कैसे ? उत्तर होगा 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' कौऐ से दही की रक्षा करो। किन्तु काक शब्द यहा उपलक्षक है। ठीक उसी तरह लम्बी सूड ज्ञान साधन का उपलक्षक है।
२. लम्बोदर	पार्थिव तत्व की प्रधानता का

प्रतीक है अथवा शरीर बल का उपलक्षक है।

३ गणेश का वाहन मूषिक ...... विघ्न अथवा सकर्तन का प्रतीक है।

गणेश और उनका वाहन मूषिक कदाचित् इस बात को साफ साफ प्रकट कर रहा है कि भौतिक और आध्यात्मिक तत्व की प्रधानता और समन्वय से हर प्रकार विघ्न आधीन हो जाते है। गणेश का यह चित्र क्या प्रतीकात्मक नही ? तात्पर्य कि सस्कृत साहित्य की सारी आध्यात्मिक चेतना ही प्रतीकात्मक है। एक एक वर्ण, एक एक नाम और एक एक पदार्थ जो कुछ भी चिन्तन के विषय बने या मनोरजन के साधन हुए उनकी अभिव्यक्ति मे प्रतीको का विधान हुआ है । उपनिषद का एक शब्द उद्गीथ है।

१ उत् ....स्वर्गलोक, आदित्य और सामवेद का प्रतीक है।
२ गी .... अन्तरिक्षलोक, वायु और यजुर्वेद का प्रतीक है।
३. थ .... भूलोक, अग्नि और ऋगवेद का प्रतीक है।

इस शब्द की व्यापकता पर जरा विचार कीजिए प्रकारान्तर से प्रतीक विधान देखिए —

१. उत् .... उत्थान का प्रतीक है।
२. गी .... वाणी का द्योतक प्रतीक है।
३. थ .... स्थिति का बोधक प्रतीक है।

तन्त्रो मे एक शब्द व्यवहृत हुआ है 'कली'। 'कली' का कोषगत और शाब्दिक अर्थ चाहे जो कुछ भी हो किन्तु उसमे प्रयुक्त वर्ण प्रतीकात्मक है।

१. क.................. जल का प्रतीक है।
२. ल...................... भूमि का प्रतीक है।
३ ई..................चन्द्रमा का प्रतीक है।

इतना ही नही, हमारे जितने अवतार है वे सभी प्रतीकात्मक है। इन अवतारो द्वारा सृष्टि के युगो की सभ्यता और सस्कृति के उत्थान पतन की कहानिया क्या उपलब्ध नही होती ? तात्पर्य कि हमारे अवतार भी सभ्यता और सस्कृति के विकास के प्रतीक है।

भारत के आध्यात्मिक और धार्मिक साहित्य मे व्यवहृत इन प्रतीको का वर्गीकरण भी किया जा सकता है। वर्गीकरण मे अनौचित्य या अपूर्णता का ध्यान पाठक

कर सकते है परन्तु विषय के स्पष्टी करण के लिए श्रेणी विभाजन आवश्यक है। श्री सुदर्शन सिंह ने लिखा है "सभी प्रतीक दो भागो मे विभक्त किये जा सकते है। कुछ नित्य प्रतीक है। वे अपने भाव या पदार्थ से नित्य सम्बन्ध रखते है। उस प्रकार के भाव को दूसरे प्रकार से सूचित नही किया जा सकता। जैसे आकाश का प्रतीक शून्य है। दूसरे प्रतीक कल्पित होते है। व्यक्तियो के नाम, राष्ट्रो की ध्वजाए तथा दूसरे चिन्ह कल्पित होते है। जैसे अमेरिका के राष्ट्र ध्वज मे तारक चिन्ह है।[1]

प्रतीक के दो भेद—(क) नित्य
(ख) कल्पित

नित्य प्रतीक के दस भेद हो सकते है।[2]

१ चिन्ह प्रतीक
२ रङ्ग प्रतीक
३ पदार्थ प्रतीक
४ प्राणी प्रतीक
५ पुष्प प्रतीक
६ शस्त्र प्रतीक
७ वाद्य प्रतीक
८. वृक्ष प्रतीक
९. वेश प्रतीक
१० सकेत प्रतीक (मुद्राए)

भारत के साहित्यकारो और शास्त्रकारो ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से प्रतीको को अपना कर सूक्ष्म मानसिक चेतनाओ की अभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष करने और कराने का सबल प्रयत्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीक की मान्यता के बिना भाषा निपङ्ग, निर्बल और अशक्त है। भाषा के ज्ञान के लिए जिस प्रकार व्याकरण और काष अपेक्षित है उसी तरह सूक्ष्म तत्वो के विश्लेषण और आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीको के ज्ञान की अपेक्षा है।

सस्कृत साहित्य के व्यापक प्रसार और प्रभाव के कारण तथा अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिये हिन्दी ही नही अपितु भारतीय अन्य भाषाओ मे भी प्रतीको का

---

१ कल्याण—भाग २८—पृ० १०४४
२ कल्याण—भाग २८—पृ० १०४६

विधान है। तामिल भाषा भारत की एक प्राचीन भाषा है और उसका इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन है। इस प्राचीन भाषा मे भी प्रतीको का प्रयोग उपलब्ध होता है।

१ वजि नाम का पुष्प (जो मुल्लै बन-प्रदेश का एक विशेष फूल है) ·· अभियान का प्रतीक माना गया है।

२. पालै (रेगिस्तान) का विशेष फूल है बाहै विजय का प्रतीक माना गया है।

३ पालै·· · · · काव्य मे विरह का प्रतीक है।[1]

तामिल भाषा के सघ-पूर्व-काल मे ये प्रतीक अपनाये गये थे और उस युग के सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ 'तोलकापिय्यम्' मे उसकी विस्तृत योजना उपलब्ध होती है। इसके पश्चात् इतर ग्रन्थो मे भी प्रतीको का अभाव नही।

सस्कृत साहित्य की इस प्रतीक परम्परा का पालन हिन्दी साहित्य मे भी हुआ। यही नही कि सस्कृत के ही प्रतीक हिन्दी मे ज्यो के त्यो चले आये वरन नये नये प्रतीको की भी उद्‌भावना की गई। यह नि सन्देह स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल मे सिद्ध सन्तो, नाथ योगियो तथा कबीर जैसे साधको ने सस्कृत-धार्मिक काव्य मे प्रयुक्त प्रतीको को ही अपनाया किन्तु उन प्रतीको का स्वाभाविक विकास भी होता गया। आध्यात्मिक विषय के लिये सस्कृत काव्य-साहित्य मे प्रतीक थे। इस कारण सरलता पूर्वक इन सन्तो ने सस्कृत के प्रतीक अपनाये और अपनी आध्यात्मिक अनुभूति व्यक्त की। इन सन्तो द्वारा अपनाये गये प्रतीको का वर्गीकरण किया जाय तो अनेक कोटियाँ निर्धारित की जा सकती है।

१ अक्षरात्मक प्रतीक
२ सकेतात्मक प्रतीक
३ रूपात्मक प्रतीक
४ कथात्मक प्रतीक
५ सख्यात्मक प्रतीक

यह विभाजन भी पूर्ण नही है क्योकि दृष्टि भेद से वर्गीकरण मे भेद हो सकते है। रस की दृष्टि से यदि वर्गीकरण किया जाय तो (साहित्य मे ऐसे प्रयोग भी मिलते है) प्रतीक के कई भेद हो सकते है :—

---

१ तामिल और उसका साहित्य—पृ०—१८-१९

१. वात्सल्य सम्बन्धी प्रतीक
२ दाम्पत्य सम्बन्धी प्रतीक
३ सख्या सम्बन्धी प्रतीक

काल की दृष्टि से भी प्रतीको का वर्गीकरण सम्भव है —

(1) हिन्दी के आदिकाल का पारिभाषिक प्रतीक
(11) हिन्दी के मध्यकाल का आदर्शवादी प्रतीक
(111) हिन्दी के रीति काल का अलकार प्रधान प्रतीक या उपमा मूलक प्रतीक
(1V) हिन्दी के आधुनिक काल का लाक्षणिक प्रतीक

डा० प्रेमनारायण शुक्ल[1] ने प्रतीक विभाजन किया है —

१ परम्परानुगत
२ देशगत
३ व्यक्तिगत
४ युगगत

हिन्दी काव्य धारा मे साकेतिक प्रतीको का प्रयोग पहले पहल सिद्ध और नाथ योगियो ने किया। कबीर ने परम्परा से प्राप्त इन प्रतीको को लगभग ज्यो का त्यो अपनाया। नाथ और सिद्ध योगियो के प्रतीक का आधार सस्कृत की वे पुस्तके थी जिनमे तन्त्र साधना का उल्लेख था। सस्कृत की हठयोग प्रदीपिका आदि ऐसे ही ग्रन्थ है जिनसे हिन्दी के सत प्रभावित होकर प्रतीक विधान मे सफल हुए।

चद-सूर दोई खभवा, बक नालि की डोरि।
झूलै पच पियरियाँ, तहँ सूलै पिय मोर॥
द्वादस गम के अन्तरा, तहँ अमृत को ग्रास।
जिनि यह अमृत चाखिया, सो ठाकुर हम दास॥[2]

यहाँ पर कबीरदास ने सिद्ध सतो और नाथ योगियो की हठ साधना से ईडा, पिगला, कुण्डलिनी, पाच ज्ञानेन्द्रिय और मन अर्थ लेकर अपनी आध्यात्मिक

१ हिन्दी साहित्य मे विविध वाद—पृ० ४९२
२ कबीर—वाणी—१ ५

अनुभूति प्रतीक द्वारा स्पष्ट की है । चिह्नित पदाश वाच्यार्थ के अतिरिक्त अन्य रहस्यमय अर्थ का विधान करते है जो प्रतीकात्मक है ।

पारिभाषिक प्रतीको मे भी प्राय सस्कृत की मुहर लगी है । सिद्ध और नाथ योगियो ने कदाचित् पारिभाषिक प्रतीको को योग-शास्त्र के ग्रन्थो से अपनाया था । हठयोग-प्रदीपिका मे एक श्लोक है—

इडा भगवती गगा पिङ्गला यमुना नदी ।
इडा पिगलयोर्मध्ये बाल रडा च कुण्डली ॥

कदाचित् इसी आधार पर सिद्धो ने इडा, पिगला और कुण्डलिनी की व्यापक चर्चा की और उसकी पारिभाषिकता को अक्षुण्ण रखा । सिद्ध और नाथ योगियो के शून्य, निरजन, नाद, विन्दु और सहज शब्द को देखिए ।[१] 'शून्य' शब्द ब्राह्मण दर्शन मे व्यापक सत्ता के अर्थ मे प्रयुक्त है । उपनिषद मे भी 'शून्य' का अर्थ व्यापक सत्ता ही है । ब्राह्मण दर्शन का विकास बौद्ध-दर्शन मे होता है और नागार्जुन तथा आर्य देव ने इसके पारिभाषिक स्वरूप मे थोडा परिवर्तन किया । शङ्कराचार्य जी ने इसकी व्याख्या की । हठ योग-प्रदीपिका मे 'शून्य' चार अर्थो मे प्रयुक्त है ।

१ ब्रह्मरध्र का वाचक ।
२ देश काल परिछिन्न ब्रह्म ।
३. सुषुम्ना नाडी का बोधक ।
४. अनाहत चक्र के अर्थ मे ।

कबीर का 'शून्य' प्रतीक है सुषुम्ना, ब्रह्मरन्ध्र, केवलावस्था और भाव रूप ब्रह्म का ।

१. गग जमुन उर अतरै, सहज सुनि ल्यौ घाट ।
तहाँ कबीरै मठ रचा, मुनि जन जावै वार ॥ (सुषुम्ना)

२ ऐसा कोई ना मिलै, सब विधि देई बताय ।
सुनि मडल मे पुरुष एक, ताहि रहै ल्यौ लाई ॥ (ब्रह्मरन्ध्र)

३ अवरन बरन धाम नहि छाम ।
अबरन पाइयै गुरू की साम ॥

---

१ कवीर—हजारी प्रसाद द्विवेदी

टारी न टरै आवै न जाई।
सुन्न सहज महि रह्यौ समाई ॥ (भाव रूप ब्रह्म)

'निरजन' शब्द भी प्रतीकात्मक है। वैष्णव और वैदिक साहित्य मे यह माया का प्रतीक था आगे चल कर यह नाथ पथी योगियो मे ब्रह्मरन्ध्र निवासी नाद स्वरूपी निर्गुण चैतन्य का वाचक प्रतीक बना। कबीर ने इसी रूप को अपने काव्य मे अपनाया है। सिद्ध सतो और नाथ पथी योगियो के साहित्य मे व्यवहृत इडा, पिगला, नाद, शून्य, सहस्त्रदल कमल आदि शब्द प्रतीकात्मक है।

महात्मा कबीर का वर्ण्य-विषय आध्यात्मिक था और उन्होने प्रतीको का प्रयोग कई रूपो मे किया है। कबीर दास के पदो मे सब से ज्यादा दाम्पत्य प्रतीको की भरमार है। दाम्पत्य मे सयोग और वियोग की मादक परिस्थितियाँ होती है। कबीर ने उन परिस्थितियो मे अपने को डाल कर प्रियतम की खोज की है। उनका प्रियतम से बिल्कुल तादात्म्य हो गया है और सारा भेद, द्वैत मिट गया है। उनका प्रेम प्रियतम के प्रकाश से जगमगा रहा है। देखिए —

वेद कहै सरगुन के आगे निरगुन का विसराम।
सरगुन निरगुन तजहु सोहागिन देख सबहि निजधाम।
सुख दुख वहा कुछ नहि व्यापै, दरसन आठो याम।
नूरै ओढन, नूरै डासन, नूरै का सिरहान।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नूर तमाम ॥

सबध स्थापित हो जाने पर भी मिलन नही। कबीर अपने आध्यात्मिक प्रणय की विकलता प्रकट करते है स्वाभाविक शब्दो मे और ये शब्द प्रण्यानुभूति की आध्यात्मिक रहस्यात्मक चेतना के प्रतीक बन जाते है। वे कहते है —

वे दिन कब आवेगे माय।
जा कारन हम देह धरी है मिलिवो अग लगाय।

कबीर की आत्मा परेशान है। आत्मा वधू परमात्मा प्रियतम से मिलने को व्याकुल है।

तलफै विन बालम मोर जिया।
दिन नहि चैन रात नहि निदिया,
तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोलै,

सून सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये पथ न सूझै,
साई बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर जिया।।

इस आध्यात्मिक पीर का परिणाम बडा भयानक होता है। आखो मे नीद नही, नीर का प्राचुर्य, मन मे शान्ति नही, अशान्ति का बीज। वह कराह कर कह उठता है —

आसिक होकर सोना क्या रे।
पाया है तो दे ले प्यारे,
पाय पाय भिर खोना क्या रे।
जब अखियन मे नीद घनेरी,
तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै कबीर प्रेम का मारग,
सिर देना तो रोना क्या रे॥

विरह वेदना से धूमिल नयनो के बीच प्रिय का आगमन होता है। आत्मा प्रफुल्लित हो जाती है "मोतिया बरसं दिन राति, जोति बहै दिन राति" के बीच आशङ्का होती है प्रिय के चले जाने की। आत्मा पुकार उठती है —

अब तोहि जान न दैहूँ राम पियारे,
ज्यू भावै त्यू होइ हमारे।।
बहुत दिनन के विछुरे हरि पाये,
भाग बडे घर बैठे आये।।
चरनन लागि करौ वरियाई,
प्रेम प्रीति राखौ उरझाई।।

कबीर ने घर बैठे ही अपने प्रियतम को पा लिया। घर मे ही उसे राम दीख पडे और उसने 'नयनो की कोठरी' मे उन्हे उलझा कर रख लिया और गा उठे —

"हरि मेरा पीव मै हरि की बहुरिया,
राम बडे मै छुटक लहुरिया।
धनि पिय एकै सग बसेरा,
सेज एक पै मिलन दुहेरा।

धन्न सोहागिन जो पिय भावै,
कहि कबीर फिर जनमि न आवै ।।

कबीर का यह सारा प्रणय कोई लौकिक प्रणय नही वरन् आध्यात्मिक प्रणय है और अपनी इन प्रण्यानुभूति को लौकिक प्रतीको के द्वारा रखने मे वे पूर्ण सफल हुए है ।

कबीर मे वात्सल्य सम्बन्धी प्रतीक भी मिलते है । इस पद मे काव्य का स्वारस्य चाहे जो कुछ हो परन्तु कबीर ने एक तरफ तो द्वैत भावना की अभिव्यक्ति मे अपना अद्वैत वादी दृष्टि कोण रखा दूसरी तरफ 'जननी' ओर 'बालक' की तात्विक एकता द्वारा आत्मा या जीवात्मा और परमात्मा की प्रतीक द्वारा अभिव्यक्ति की ।

हरि जननी मै बालक तेरा, काहे न औगुन बकसइ मेरा ।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते ।
कर गहि केस कहै जा धाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।

जननी········परमात्मा या ब्रह्म की प्रतीक है ।

बालक ···········जीवात्मा का प्रतीक है ।

अपराध ·········समस्त सस्कारो का प्रतीक है जिससे मानव पुनर्जन्म और आवागमन के चक्र मे पडा रहता है ।

कबीर की प्रतीक योजना विलक्षण है । दास्य भाव के समर्थक गोस्वामी तुलसीदास ने जहा परमात्मा के प्रतीक रूप मे राम और जीवात्मा के रूप मे अपने को 'राम का गुलाम' कह कर द्वैत भावना की पुष्टि की और जीवात्मा एव परमात्मा के पृथक अस्तित्व को कायम रखा वहा कबीरदास ने जीव और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये साई और गुलाम प्रतीक का प्रयोग कर अपनी अद्वैत भावना की पुष्टि की ।

कबीर के पदो मे प्रतीको के विविध प्रयोग है जो हिन्दी साहित्य के अन्य कवियो मे कदाचित् नही है । उनके द्वारा व्यवहृत प्रतीको को हम निम्न श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है —

१. साकेतिक प्रतीकः— चद सूर दोई खभवा, वकनालि की डोरि ।
भूलै पच पियरिया, तह भूलै पिय मोरि ॥

२ पारिभाविक प्रतीक — सूर्य समाना चद्र मे दुहु किया घर एक ।
मन कर चिन्ता तब भया कुछ पूर्वला लेस ।।

३ सख्यामूलक प्रतीक — (क) चौसठ दीया जोय के चौदह चदा माहि ।
(ख) द्वादस गम को अन्तरा, तह अमृत को ग्रास ।
(ग) एक विरष भीतर नदी चाली, कनक कलस समाई ।
पच सुवटा आइ बैठे, उदे भई बनराई ।।

एक वृक्ष (शरीर) है जिसमे नदी (कुण्डलिनी) बह रही है जो कनक कलस (सहस्र धार) मे गिरी है और पाच सुग्गे (प्राण)[1] उस पर बैठे है इनके कारण सारी वनराजि प्रसन्न है ।

वृक्ष = शरीर का प्रतीक
नदी = कुण्डलिनी की प्रतीक
कनक कलस = सहस्र धार का प्रतीक
पाँच सुग्गे = पाच प्राण

४ रूपक त्मक प्रतीक —

तन रति करि मै मन रति करि हू पच तत्व बराती ।
राम्मदेव मोहि व्याहन आये मै जोबन मदमाती ।।
सरीर सरोवर वेदि करि हू ब्रह्म वेद उचार ।
रामदेव सग भाँवरि लैहू धनि धनि भाग हमार ।।
सुर तेतीस कोटि आये मुनिया सहस्र अठासी ।
कहै कबीर हम व्याहि चले पुरुष एक अविनासी ।।

५ सम्बन्ध मूलक प्रतीक या मानवीय सम्बन्धो के प्रतीक —

मै बुनि करि सिराना हो राम, बालि करम नही ऊबरे ।……

६ उलटवासी मे प्रतीक —

कैसे नगरि करो कुर वारी, चचल पुरुष विचक्खन नारी ।
बैल वियाइ गाइ भइ बाझ, बछरा दूहै तीयू साझ ।
मकडी धरि माखी छछि हारी, मास पसारि चील रखवारी ।
मूसा खेवट नाव बिलैया, मीडक सोवै साप पहरिया ।
नित उठ स्याल सिंध सो जूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ।[2]

---

१ पाच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ।
२ कबीर वाणी ।

कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रतीक .—

१ हस =आत्मा का प्रतीक है।

२ ठगिनी=माया क प्रतीक है।

३ हाट =ससार का प्रतीक है।

४ नाद =ब्रह्म का प्रतीक है।

५ त्रिगुण फास—सत्, रज और तम का प्रतीक (माया का बधन)है

६ हस. मीन, दुल्हिन—जीव का प्रतीक है।

७ दरिया, सागर, रमैया प्रीतम – परमात्मा का प्रतीक है।

८ शब्द ······· ब्रह्म का प्रतीक है।

९. सर्प ·· ···· ससार का प्रतीक है।

१० अश्व ··· ·· इन्द्रियो का प्रतीक है।

बौद्ध तान्त्रिको द्वारा प्रयुक्त प्रतीक नाथ और सिद्ध सतो के माध्यम और सत्सग से कबीर को प्राप्त हुआ और कबीर ने प्रतीक विधान को चरम सीमा तक पहुचा दिया। कबीर की वाणी प्रतीकात्मक है और रहस्यमय आलोक प्रतीकात्मक शब्दो के प्रयोग से अत्यन्त आह्लादकारी हो गया है। मेरा अपना विश्वास है कि हिन्दी काव्य साहित्य मे प्रतीको का जितना प्रयोग कबीर ने अकेले किया उतना हिन्दी का कोई कवि न कर सका। दर्शन की सूक्ष्म गुत्थियो की अभिव्यक्ति तो हिन्दी के प्रमुख सत कवियो ने की, किन्तु कबीर की अभिव्यक्ति ने प्रतीको का विधान कर हिन्दी काव्य को एक नवीन दिशा दी। प्रतीक विधान की दृष्टि से कबीर अद्वितीय है।

महाकवि जायसो का 'पद्मावत' भी इस दिशा मे अपना एक महत्व रखता है। पद्मावत के अन्त मे एक काष कवि ने दिया है जिस से काव्य का प्रतीकात्मक अर्थ सकेतित होता है।

१ पद्मावती ·· · · बुद्धि की प्रतीक

२ रत्नसेन ··· ···· मन का प्रतीक

३ सिहल ······ हृदय का प्रतीक

४, चित्तौड ········ तन का प्रतीक

५ नागमती ·· ·· दुनिया के धधे की प्रतीक }

६ अलाउद्दीन ······ माया का प्रतीक } माया के प्रतीक

७. राधवचेतन ··· ····· शैतान का प्रतीक }

८. हीरामन ········ गुरू का प्रतीक

वास्तव मे सूफी आख्यानात्मक काव्य प्रतीकात्मक है। सूफी कवियो ने प्रतीको के आधार पर ही अपनी अनुभूति स्पष्ट की है। पाडेय जी ने लिखा है— "प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा है। उनकी अनुमति के बिना सूफियो के क्षेत्र मे पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीको के महत्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज है।[1]"

जायसी ने प्रतीको का प्रयोग दो रूपो मे किया है— (१) काव्य शैली के रूप मे (२) आध्यात्मिक अभिव्यजना के रूप मे। काव्यात्मक प्रतीक परम्परागत और रूढ है। सस्कृत साहित्य में नायक और नायिकाओ की उपमा के लिये जिन प्रतीको का विधान किया गया था वैसे ही प्रतीक जायसी ने अपनाए। ये घिसे पिटे मैले प्रतीक स्वच्छ काव्य कुसुमो की पक्ति मे बैठाये गये।

(क) आख का प्रतीक खजन

(ख) मुख का प्रतीक कमल

'भँवर छपान हसु प्रकटे' यहा

भँवर=अन्धकार और श्यामता का प्रतीक है।

हँस =श्वेतिमा और वीतराग का प्रतीक है।

(सकेत=नागमती की वृद्धावस्था)

आध्यात्मिक प्रतीक —

जायसी ने अपने सम्पूर्ण काव्य मे आध्यात्मिक रहस्यो का सकेत किया है। उस विराट की कल्पना लौकिक सकेतो द्वारा कितनी सुन्दर हुई है देखिए —

दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रग श्याम गभीरा ॥
जस भादो-निसि दामिनी दीसी। चमकि उठै तस बनी बतीसी ॥
वह सुजोति हीरा उपराही। हीरा जोति सो तेहि परिछाही ॥
जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओही भई ॥
रवि ससि नखत दिपहि ओही जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जहँ जहँ विहँसि सुभावहि हसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनी दमकि न सरवरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी ?॥
हँसत दसन अस चमके पाहन उठे छरक्कि।
दारिउँ सरिजो न कै सका, फाटेऊ हिया दरक्कि।[2]

इस उद्धरण मे नायिका के दातो की विशेषता का उल्लेख हुआ है परन्तु क्या कवि का यही उद्देश्य है ? कवि के सकेतो ने आभा की अलौकिकता घोषित की है

१ तसव्वुफ अथवा सूफी मत — चन्द्रवली पाडेय—पृ० ९७

२ जायसी ग्रन्थावली—नख शिख खण्ड—पृ० ४७

साधारण लौकिक माध्यम से। इस पद मे अनिवर्चनीयता का आनन्द सकेतमूलक प्रतीको के कारण ही है। एक उदाहरण लीजिए —

नवौ खण्ड नव पौरी, औ तहँ बज्र किवार।
चारि बसेरे सो चढे, सत सो उतरै पार॥

ये चार बसेरे सूफी सम्प्रदाय के अन्तर्गत चार पडाव है। १—शरीअत, २—तरीकत, ३—मारिफत, ४—हकीकत। ये चार बसेरे प्रतीकात्मक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार —

१. शरीअत ····· कर्मकाँड का प्रतीक है।
२. तरीकत ········· उपासनाकाँड का प्रतीक है।
३. मारिफत········ ज्ञानकाँड का प्रतीक है।
३. हकीकत ·········· सिद्धावस्था का प्रतीक है।

जायसी के समान सूर मे भी काव्यात्मक और आध्यात्मिक प्रतीक मिलते है। सूर ने जहाँ परम्परा का पालन किया है वहाँ प्रतीकों मे नवीनता नही परन्तु उनके काव्य मे स्वच्छ प्रतीको का भी अभाव नही है। सूर का काव्य (भ्रमर-गीत, मुरली-माधुरी) प्रतीकात्मक है। सूर की मुरली विद्या माया की प्रतीक है और भ्रमर गीत सगुण निर्गुण की विवेचना से युक्त प्रतीकात्मक वर्णन है। ये प्रतीक ही काव्य को साधारण से विशेष की ओर उन्मुख करते है।

(i) कृष्ण ····· परब्रह्म के प्रतीक है।
(ii) गोपियाँ ····· जीवात्मा की प्रतीक है।
(iii) राधा ······· प्रकृति या जीवात्मा की प्रतीक है।
(iv) मुरली ··········माया की प्रतीक है।
(v) रास ···········क्रीडा का प्रतीक है।

परब्रह्म की मायारूपिणी शक्ति मुरली है और उसका प्रभाव जड चेतन सभी पदार्थो पर परिव्याप्त है। सूर के शब्दो मे प्रभाव देखिए —

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर जल झरत पाहन, विफल वृक्षहुँ फले॥
पय स्रवत गोधननि थन ते, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अँकुरित पल्लव, विटप चचल पात।
सुनत खग मृग मौन साध्यो, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमगि न माति घर मै अती जोग विसारि॥

वास्तव मे मुरली केवल सगीत सौन्दर्य की धारा प्रवाहित करने वाली साधारण बाँसुरी नही, अपितु आध्यात्मिक शक्ति माया की प्रतीक है। माया के द्वारा जीव और परमात्मा के सँयोग का प्रतीकात्मक वर्णन मुरली के प्रतीक द्वारा हुआ है।

मुरली मधुर बजाई श्याम।
मन हरि लियो भवन नहि भावै व्याकुल ब्रज की बाम ॥
भोजन भूषन की सुधि नाही तनु की नही सँभार।
गुरु गृह लाज सूत सो तोरी डरी नही व्यवहार ॥

सचमुच इस मुरली की ध्वनि से कौन प्रभावित नही होगा। सूर की मुरली तो 'सप्त सुर सिंधु सुधा'[1] की खान है और सूर की आध्यात्मिक अभिव्यँजना की प्रतीक। शक्तिरूपी माया मुरली का प्रभाव जीव, जगत, जड, चेतन, स्थावर, जगम सब पर है और उससे स्वयँ परब्रह्म भी मुक्त नही है।

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।
अँचवति अधर सुधा बस कीन्हे अब हम कहा करै कहि भाई ॥

सूर की मुरली प्रतीक है आध्यात्मिक चेतना की। अन्तर्जगत के सूक्ष्म तत्वो का निदर्शन मुरली की विशेषता है। कबीर के काव्यात्मक प्रतीक भी बडे सुन्दर है।

अद्भुत एक अनुपम बाग।
युगल कमल पर गजवर क्रीडत तापर सिह करत अनुराग ॥ ......

इन उपमाओ से नारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा उभक-उभक कर झाँक रही है, और ये सब प्रतीक ही तो है! कमल चरण का प्रतीक है, सिह कटि प्रदेश का सूचक प्रतीक है।

सगुण भक्त कवियो मे गोस्वामी तुलसीदास जी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी था, फलत उन्होने जिन प्रतीको का प्रयोग किया है वे आदर्शवादी प्रतीक है। परम्परावादी प्रतीक घिसे पिटे है परन्तु ज्वलित उपमाओं के बीच वे इतने सुन्दर मालूम होते है कि उनकी मलिनता की ओर सहृदय की दृष्टि ही नही जाती। तुलसी के आदर्शवादी प्रतीको के उदाहरण निम्न है —

१. दशरथ — सत्य के प्रतीक है।
२ राम — सत् और रज के प्रतीक है।
३ रावण — तम या अहँकार का प्रतीक है।

---

१ सप्तसुर—स, रे, ग, म, प, ध, नी, सा। शास्त्रीय नाम सप्त सुर के स्थान है षडज, ऋषभ गधार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद।

४. सीता — पातिव्रत की प्रतीक है ।
५. पार्वती — पातिव्रत की प्रतीक है ।
६. भरत — भ्रातृ-प्रेम के प्रतीक है ।
७. लक्ष्मरण — भ्रातृ-प्रेम के प्रतीक है ।
८. हनुमान — सेवा के प्रतीक है ।
९. जनक — सत्यव्रत के प्रतीक है ।
१०. कोशिल्या — प्रेम और धर्म की प्रतीक है ।

ये प्रतीक जन-जीवन मे इतने घुल-मिल गए है कि इनके प्रतीकत्व की ओर सहसा ध्यान नही जाता । तुलसी के पात्र किसी न किसी आदर्श के प्रतीक ही है ।

हिन्दी साहित्य के वीर-काल और भक्ति-काल मे जिन प्रतीको का विधान दीख पडता है, वे प्रधानत सस्कृत काव्य पर आधृत है । इस अनुसरण मे काव्यात्मक प्रतीको की योजना अत्यधिक है । इसका प्रभाव सगुण धारा के कवियो पर पडा और उन कवियो ने प्रतीकानुकरण को औचित्य की सीमा मे रखा । उनका वर्ण्य-विषय काव्य के साथ धर्म था, इस कारण इन कवियो ने हल्के प्रतीको से भावाभिव्यक्ति की । परन्तु निर्गुण धारा के कवियो और सतो ने अपनी रहस्यमय अनुभूतियो, गूढ आध्यात्मिक और दार्शनिक सकेतो को प्रतीको के माध्यम से स्पष्ट किया है । उनके काव्य का आनन्द प्रतीको पर अवलम्बित है ।

रीति-युग अलकार का युग है । इस युग मे कविता नारी के चारो ओर चक्कर काट रही है । अप्रस्तुत मे प्रतीकत्व की योजना इस युग की विशेषता है। इस प्रयोग मे अन्योक्ति ने काफी सहायता पहुँचाई और कदाचित् इसी कारण सारा रीति-काव्य एक विलक्षण चमत्कार मे परिपूर्ण है । सँस्कृत काव्य मे नायिका वर्णन के लिए कवियो ने जैसी २ उपमाऐं ढूँढी थी प्राय वही उपमाएँ नए परिधानो के साथ चमक उठी । नायिका की आँखो के लिए नीलकमल, खजन, नासिका के लिए 'कीर' ओष्ठ के लिए बिम्बाफल और भौ के लिए धनुष की कल्पना प्रतीक विधान ही है। काव्यात्मक प्रतीक घिसे पिटे पुराने और परम्परा से प्राप्त है। ऐसे प्रतीको के उदाहरण रीति-काव्य मे सर्वत्र मिलेगे । बिहारी की 'अन्योक्ति मे प्रतीक विधान देखिए —

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार ।
अलि अब रही गुलाब मे अपत कटीली डार ।।

इस पद मे सँबोधन भ्रमर से है । हे भ्रमर ! वे बहार के दिन थे जब तुमने फूलो को देखा था, अब वे दिन बीत गए । अब तो गुलाब मे केवल काँटे ही रह गए

है। इसमे अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की व्यजना की गई है। प्रस्तुतार्थ है कि अब यौवन और समृद्धि के दिन गुजर गए, आकर्षण और सुन्दरता चली गई और शेष है सुखद स्मृतिओ का रोमाञ्च।

१ गुलाब—(क) यौवन, समृद्धि, राग, रग, रति और गन्ध का प्रतीक है।
(ख) रूप, रस, गन्ध का प्रतीक है।

२. कटीली डार—दुर्दिन का प्रतीक है।

३. भौरा—मस्ती का जाम पीने वाले नवयुवक का प्रतीक है।

आधुनिक काल मे प्रतीको का मान बदल गया है। युग-परिवर्तन के साथ-साथ प्रतीको के मान में परिवर्तन हो जाते है। आज का युग स्वच्छन्दता का युग है। नए विचार, नयी भावनाएँ, नए अरमान, नई आशाएँ नवीन मान्यताओ के साथ अकुरित हो रहे है, फलत: उनको अभिव्यक्त करने मे नवीन प्रतीको का सहारा लिया जा रहा है। मध्य युग के साथ यदि वर्तमान युग की तुलना की जाए तो एक व्यापक पार्थक्य का अनुभव होता है। मध्य युग के रहस्यवादी कवियो की भावना और आज के रहस्यवाद मे दृष्टिकोण का कितना भेद है। मध्य युग का कवि पार्थिवता को त्याग कर रहस्य का दर्शन करने की अभिलाषा और प्यास रखता था परन्तु आज का कवि घोर भौतिकता मे निमग्न होकर रहस्य को अनावृत करने का ढोग रचता है। आज पुराने परम्परागत प्रतीको के स्थान पर स्वच्छ नए प्रतीको का निर्माण हुआ है। छायावादी युग की सबसे बडी विशेषता लाक्षणिक प्रतीको के प्रयोग मे ही है। शुकल जी ने इसे 'नूतन प्रतीक विधान' की सँज्ञा दी है जो गुण, प्रभाव और शब्द-साम्यता पर आधारित है, प्रतीक पद्धति मे वाचक पद के स्थान पर लक्षक पदो का व्यवहार किया जाता है परन्तु अन्योक्ति मे अप्रस्तुत चित्रो का विधान कर प्रस्तुत की व्यजना की जाती है। अन्योक्ति पद्धति पर प्रतीक विधान भी नवीन युग मे विशेषता के साथ हुआ है। यदि आधुनिक युग के प्रतीको को ध्यान मे रख कर वर्गीकरण के लिए विश्लेषण करे, तो उनके कई भेद हो सकते है।

१. उपमा मूलक प्रतीक :—

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्व की विकल,
वेदना दूती-सी तुम कौन॥

इस पद मे 'विश्व की विकल वेदना दूती-सी' द्वारा कवि ने कविता का उल्लेख किया है।

२. *रूपक प्रधान प्रतीक :—*

समय विहग के कृष्ण-पक्ष मे,
रजत-चित्र-सी अङ्कित कौन ?
तुम हो सुन्दर तरल तारिके,
बोलो कुछ बैठो मत मौन ।। (पन्त)

इस पद मे वाच्यार्थ के चमत्कार के साथ ही रूपक का विधान कर नवीन अर्थ की प्रतीक द्वारा व्यञ्जना है।

३ *समासोक्ति प्रतीक :—*

बीति विभावरी जाग री !
अँबर—पनघट मे डुबो रही,
तारा—घट उषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अँचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल-नवल-रस-गागरी।
अधरो में राग अमन्द पिये,
अलको मे मलयज बन्द किये,
तू अब तक सोयी है आली,
आँखो मे भरे विहाग री।

'उषा' के आगमन का चित्र पनिहारिन के रूप मे व्यक्त कर प्रस्तुतार्थ की व्यञ्जना की गई है। यहाँ उषा पनिहारिन की प्रतीक है।

४. *लाक्षणिक प्रतीक :—*

उषा का उर मे आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास।
चाँदनी का स्वभाव मे भास
विचारो मे बच्चो की साँस ।।

(क) उषा — हर्षातिरेक का प्रतीक है।

(ख) मुकुल — स्मित हास का प्रतीक है।
(ग) चादनी — स्वभाव की निश्छलता का प्रतीक है।
(घ) बच्चो की साँस— विचारो की सरलता का प्रतीक है।

इस गीत में गुण का धर्म के आधार पर प्रतीक विधान किया गया है। एक दूसरा उदाहरण है—'नही हिमालय, यह तो शिव का अट्टहास है पुञ्जीभूत।' हास का रँग श्वेत, हिमालय का रँग श्वेत क्या ये लक्षणिक प्रतीकात्मक प्रयोग नही ?

आधुनिक काल के छायावादी-युग मे व्यवहृत प्रतीको का कुछ उदाहरण पर्याप्त होगा।

१ गीला गान—कविता का प्रतीक है।
२. विश्व अभिनय का नायक—अनँग का प्रतीक है।

३ (क) अतीत सुख का मृदुहास
(ख) निद्रा का अलसित वन
(ग) वन्य देवियो की
} ये स्वप्न के प्रतीक है।

४ (क) कवियो की गूढ कल्पना-सी
(ख) स्वप्न जाल-सी
(ग) तरुवर की छायानुवाद-सी
(घ) उपमा की भावुकता-सी
(च) चिर अतीत की विस्मृत-स्मृति
(छ) नीरवता की झकार
(ज) विहग बालिका
} ये छाया के प्रतीक है।

५ (क) स्तब्ध विश्व के अपलक विस्मय
(ख) अनन्त के अगम कल्पना
(ग) अज्ञात देश के नाविक
(घ) निद्रा के रहस्य कानन
(च) अनभ्र गगन के जलकण
} ये नक्षत्र के प्रतीक है।

६. मेघदूत की सजल कल्पना—बादल का प्रतीक है।
७. वासुकि, सहस्त्रफन—परिवर्तन का प्रतीक है।

प्रतीको के सम्बन्ध मे शुक्ल जी ने लिखा है "छायावाद बडी सहृदयता के

साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कही कही तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी अभ्यन्तर प्रभाव साम्य लेकर ही अप्रस्तुतो का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप मे या प्रतीकवत होते है।"[1]

१ उषा — सुख का प्रतीक
२. प्रभात — आनन्द का प्रतीक
३. मुकुल — प्रिया का प्रतीक
४. मधुप — प्रेमी का प्रतीक
५. कुद, रजत — श्वेत का प्रतीक
६. मधु — माधुर्य का प्रतीक
७. अन्धकार, सँध्या की छाया, पतझड, मानसिक आकुलता — विषाद के प्रतीक
८. झँझा तूफान — क्षोभ का प्रतीक
९. झकार — भाव तरँग का प्रतीक
१०. मुरली का स्वर, सँगीत — भाव का प्रतीक

छायावादी युग के पश्चात् प्रगतिवादी युग ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रतीको की अवतारणा की। नए नए भावो की नये प्रतीको द्वारा ही अभिव्यक्ति सम्भव थी और नवीन तरुण कवियो ने इस ओर सफलतापूर्वक कदम उठाए। दिनकर की कविता मे ऐसे प्रतीको की झाँकी मिलेगी।

प्रगतिवादी युग के प्रतीक स्वस्थ और नवीन है —

१. विपथगा — क्रान्ति का प्रतीक है।
२. क्रान्ति की ज्योति शिखा — मसाल का प्रतीक है।
३. महानाश की भीषण ज्वाला — प्रलय का प्रतीक है।
४ क्रान्ति की विराट क्रीडाएँ - ताण्डव का प्रतीक है।
५. रक्त — बलिदान का प्रतीक है।
६. जोक — शोषक और महाजन का प्रतीक है।

हिन्दी काव्य मे प्रतीको का विधान तो एक तरफ सँस्कृत काव्य की परम्परा मे है परन्तु युग की आवश्यकता के अनुसार नए नए प्रतीको का आविर्भाव भी होता रहा। इस स्वस्थ, सबल वेग ने प्रतीको की स्थापना के लिए नवीन धरातल का

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल—पृ० ८०८

अन्वेषण किया है और आज फ्रास की प्रतीक वादी कविता धारा के अनुरूप हिन्दी काव्य मे 'प्रतीकवाद' का नूतन स्वर सुनाई पडने लगा है।[1]

---

१. यह निबन्ध हमारे महानिबन्ध का अंश मात्र है।

नोट —हिन्दी गद्य काव्य मे भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण स्वरूप

(i) 'प्रसाद' का 'कामना' शीर्षक नाटक। इस नाटक के पात्र प्रतीकात्मक हैं। सास्कृतिक चेतना के उत्थान के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

(ii) 'पत' की 'ज्योत्सना' प्रतीकात्मक है।

(iii) 'नवरस' नामक नाटक प्रतीकात्मक है जिममें वर्तमान काल के सघर्ष का चित्रण प्रतीको द्वारा हुआ है। पात्रों के नाम रस के प्रतीक है।

१. वीर सिंह — वीर रस का प्रतीक है।
२. ग्लानिदत्त — वीभत्स रस का प्रतीक है।
३. रूद्रदेव — रौद्र रस का प्रतीक है।
४. भीम — भयानक रस का प्रतीक है।
५. लीला — हास्य रस की प्रतीक है।
६. करुणा — करुण रस की प्रतीक है।
७. शान्ता — शान्त रस को प्रतीक है।
८. मधु — वात्सल्य रस की प्रतीक है।
९. प्रेमलता — शृंगार रस की प्रतीक है।

(iv) 'अम्बा' की रचना भी प्रतीकात्मक है। भीष्म और अम्बा नाम भी प्रतीकात्मक है।

१. भीष्म — गौरव, पुरुषार्थ, तेज, ओज का प्रतीक है।
२. अम्बा — शोषित, दलित नारी की प्रतीक है।

इस तरह के अन्य प्रतीकात्मक गद्य साहित्य में उपलब्ध हैं।

शान्ति प्रसाद के प्रबन्ध से विन्डसर प्रेस, मेरठ मे मुद्रित।